UGC Care Listed

त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

ISSN-2321-1504 Nagfani
RNI No. UTTHIN/2010/34408

वर्ष-12, अंक-41, अपैल - जून 2022

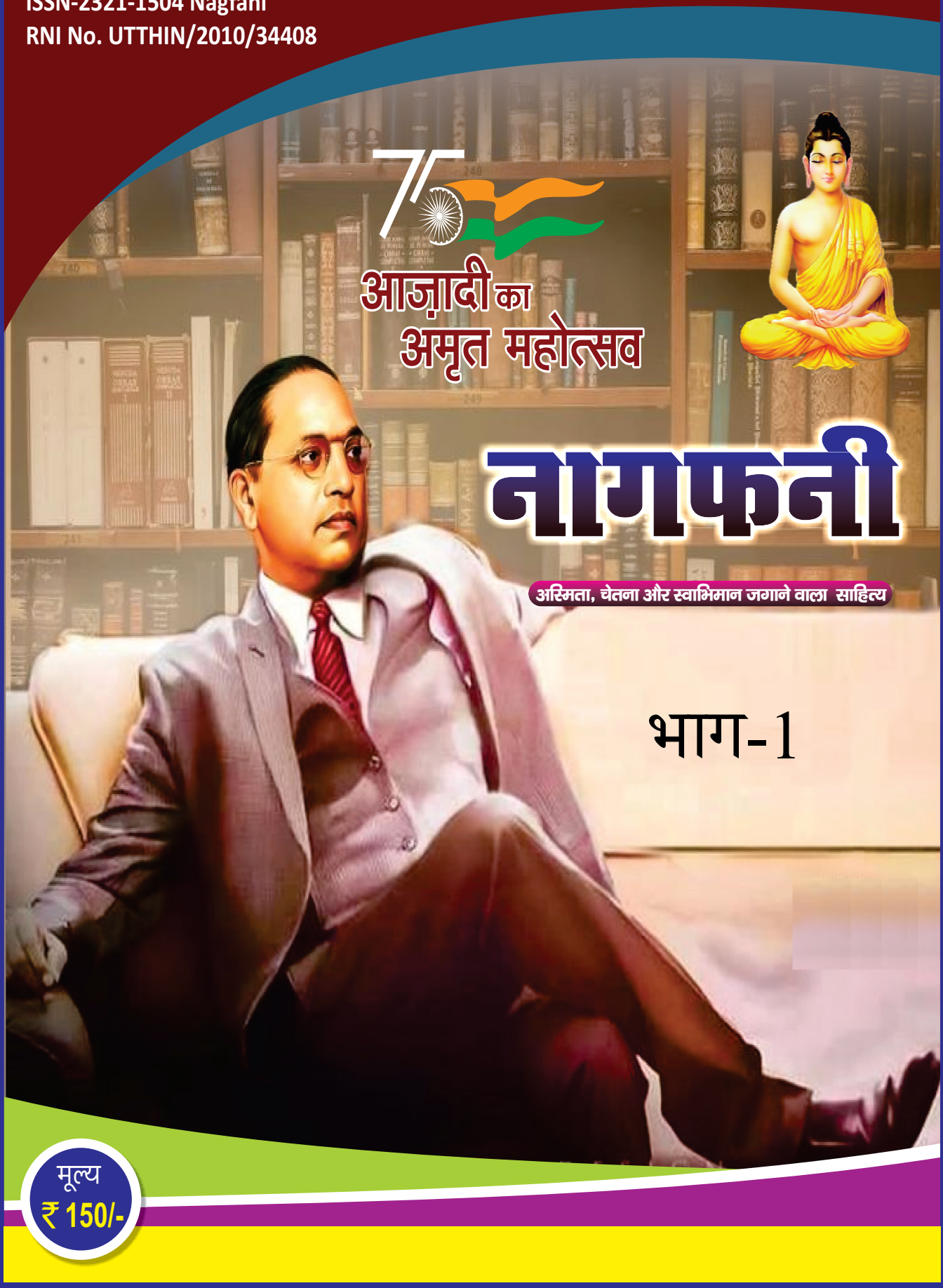

आज़ादी का अमृत महोत्सव

नागफनी

अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य

भाग-1

मूल्य
₹ 150/-

आगामी अंक की सूचना

जुलाई से सितंबर 2022 के लिए 30 जून तक ही लेख स्वीकार किये जायेंगे। 30 जून के बाद मेल पर प्राप्त शोधालेखों पर आगामी अंक में प्रकाशित करने पर विचार किया जाएगा। व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

"नागफनी" अस्मिता, चेतना, और स्वाभिमान जगाने वाली त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका है। इस पत्रिका को यूजीसी केयर लिस्ट मे शामिल किया गया है। पत्रिका का ISSN&2321&1504 nagfani और RNI No-UTTHIN/2010/34408 नम्बर है। साथ ही यह Peer Reviewed Referred journal है। आलेख –nagfani81@gmail-com पर भेजने का कष्ट करें। व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी।

आलेख भेजने संबंधी निर्देश–

- शोधालेख यूनिकोड kokila फॉन्ट 14 साइज में तथा एरियल युनिकोड में टाइप करके word और PDF दोनों में भेजना है।
- कलर पासपोर्ट फोटो।
- मौलिकता और प्लेगरिज्म संबंधी प्रमाण–पत्र।
- अन्य किसी टाइप फॉन्ट को स्वीकृत नहीं किया जाएगा।
- आलेख मेल पर भेजने के बाद आलेख स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना मेल पर ही दी जाएगी ।

धन्यवाद!

नागफनी

A Peer Reviewed Refereed Journal
(अस्मिता चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य)
UGC Care Listed त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका
ISSN-2321-1504NagfaniRNI No.UTTHIN/2010/34408

संपादक
सपना सोनकर

सह संपादक
रूपनारायण सोनकर

कार्यकारी संपादक
डॉ.एन.पी.प्रजापति
प्रोफेसर बलिराम धापसे

वर्ष-12 अंक 41,अप्रैल-जून -2022 भाग-1

सलाहकार मण्डल (Peer Review committee)

प्रोफेसर विष्णु सरवदे, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर आर. जयचंद्रन तिरुअनंतपुरम (केरल)
प्रोफेसर दिनेश कुशवाह,रीवा (मध्य प्रदेश)
डॉ.एन. एस. परमार, बड़ौदा (गुजरात)
प्रो. दिलीप कुमार मेहरा, बी.बी.नगर (गुजरात)
डॉ.उमाकांत हजारिका, शिवसागर(असम)
डॉ. आर. कनागसेल्वम, इरोड (तमिलनाडु)
प्रोफेसर संजय एल. मादार,धारवाड़ (कर्नाटक)
प्रोफेसर गोबिन्द बुरसे, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ.दादा साहेब सालुनके, महाराष्ट्र (औरंगाबाद)
प्रोफेसर अलका गड़करी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. साहिरा बानो बी. बोरगल, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ.बलबिंदर कौर, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ.ओमप्रकाश सैनी,कैथल (हरियाना)

प्रकाशन/मुद्रण

प्रकाशक रूपनारायण सोनकर की अनुमति से डॉ.एन.पि.प्रजापति एवंम प्रोफेसर बलिराम धापसे द्वारा नमन प्रकाशन–423/Aअंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 11002 में प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य।

मुख पृष्ठ– डॉ.आजम शेख मैत्री ग्राफिक्स,सावंगी (ह) औरंगाबाद

संपादकीय/व्यवस्थापकीय कार्यालय

दून व्यू कॉटेज स्प्रिंग रोड, मंसूरी -248179, उत्तराखण्ड, दूरभाष : 0135-6457809 मो.0941077718

शाखा कार्यालय

पी.डब्ल्यू.डी.आर-62 ए,ब्लाक कालोनी बैढन,जिला-सिंगरौली म.प्र.486886 मो. 09752998467

सहयोग राशि -150/-रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क (संस्था के लिए)-1000/-रुपये, पंच वार्षिक सदस्यता शुल्क (व्यक्ति के लिए)-2000/-रुपये, पंच वार्षिक संस्था और पुस्तकालयों के लिए –3000/-रुपये, विदेशों में$50 आजीवन व्यक्ति-6000/-रुपये,संस्था-10,000/-रुपये।

सदस्यता शुल्क एवं सहयोग राशि-इंडिया पोस्ट पेमेंट बैंक- **A/C** –8367100138282 **IFSC Code-IPOS**0000001

Branch-sidhi, NIRPAT PRASAD PRAJAPATI

नोट:-पत्रिका की किसी भी सामग्री का उपयोग करने से पहले संपादक की अनुमति आवश्यक है। संपादक-संचालक पूर्णतया अवैतनिक एवं अध्यवसायी हैं।'**नागफनी**'में प्रकाशित शोध-पत्र एवं लेख, लेखकों के विचार उनके स्वयं के हैं। जिनमेंसंपादक की सहमति अनिवार्य नहीं हैं।'**नागफनी**' से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल देहरादून न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। सारे भुगतान मनीऑर्डर, बैंक/चेक/बैंक ट्रांसफर/ई-पेमेंट आदि से किए जा सकते हैं। देहरादून से बाहर के चेक में बैंक कमीशन 50/-अतिरिक्त जोड़ें दें।

लेख भेजने के लिए –Mail-ID- nagfani81@gmail.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें Website:–http:naagfani.com

नागफनी
वर्ष-12 अंक41,अप्रैल-जून -2022 volume-I

अनुक्रम पृष्ठ क्रमांक

संपादकीय 3

साहित्यिक विमर्श

1)योग एवं भावातीत ध्यान के अभ्यास से मानवीय मूल्यों का संवर्धन -डॉ॰ सुनील कुमार मिश्र 4-8
2)श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित व्यावहारिक जीवन के सापेक्ष 'आत्म संयम योग' की भूमिका -रुखमणी साहू ,डॉ॰ सुनील कुमार मिश्र 9-11
3)वर्तमान परिप्रेक्ष्य में "कर्मयोग" की भूमिका: श्रीमद्भगवद्गीता के विशेष संदर्भ में -रुखमणी साहू ,डॉ॰ सुनील कुमार मिश्र 11-13
4)कृत्रिम बुद्धि बनाम मानवता-मनोजकुमार शर्मा 14-15
5)रूसी भविष्यवाद के घोषणापत्र का अनुवाद और टिप्पणी- डॉ संदीप यादव और डॉ सुदर्शन राजा 15-16
6)स्वतंत्रता के 76 साल और रंगभूमि का सूरदास-श्रद्धा सिंह 17-20
7)कप चाय और तुम : संवेदना और शिल्प -डॉ.राजकुमारी 21-24
8)हत्या कहानी में भारतीय किसान की दशा- डॉ. पुष्पा गोविंदराव गायकवाड 24-27
9)कीर्ति शर्मा की कहानियों में व्यक्त आधुनिक स्त्री जीवन और सामाजिक समस्याओं की विवेचना-सुनीता सेरावत 28-30
10)प्रवासी साहित्य की अवधारणा -डॉ. अन्सा ए 22-23
11)राष्ट्रीय एकीकरण: जनजातीय भाषा और संस्कृति के विशेष संदर्भ में-अजीत कुमार जोगी 30-31

आदिवासी विमर्श 32-35

1) समकालीन आदिवासी कविता(संदर्भः आंदोलन, इतिहास और पर्यावरणीय बोध)-एन.पी.प्रजापति 36-38

दलित विमर्श

1) सच का सामना' – दलित स्त्री आत्मकथा के विशेष संदर्भ में -डॉ. पार्वती गोसाई 39-40
2) सत्तरोत्तर हिंदी दलित कहानियां-डॉ.कुशावती आमनर 41-42

स्त्री विमर्श

1) इक्कीसवीं सदी के प्रमुख हिन्दी महिला रचनाकारों की आत्मकथा : एक विहंगम दृष्टि- सुमि शर्मा 43-46

साहित्य समीक्षा

1) डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा बुद्ध का महाआख्यान है-अनिल 47-50

English

1) A Theoretical Understanding of Community Organization: A Broader Perspective-Mr. MIGE KAMBU ,Dr. DAVID GAO 51-61
2)Enhancing Familiarity with The Phenomenon of 'Employee Skill Erosion': A Closer Examination of Various Dimensions and Perspectives-Benny Sebastian 62-66
3)Exploring the Visual and Psychological Depths of German Expressionist Film-Ashok Bairagi,Shri Prakash 67-71
4)The Effects Of Fitness Training On The Kinematical Variables Of Obese People During Running -Satish Kumar, Dr. Alok Kumar Singh 72-77
5)The return to fitness for athletes during COVID-19 pandemic-SEVEN DAS MANIKPURI 78-83
6)Effect of Yoga and Strength Training Intervention on body composition and physiological variable of sedentary population-Vidya Kumari1, Dr. Alok Kumar Singh 84-87
7)Opium addiction in Colonial Assam: A Preliminary Investigation-Kishor Goswami 88-91
8) C M OF THE VILLAGE-Sonkar 92-93
9) 75 Years of Independence: The Changing Landscape of India- Dr.Umadevi 94-97
10)Women Empowerment: Role of Government, Women Empowerment Schemes in India-Dr.Nanjundamurthy 97-100
11) The Influence of Patriarchal Society on the Reconstruction of Feminine Identity in the Selected Novels of R. K. Narayan and Mulk Raj Anand: A Comparative Study-Pradeep Kumar Singh , Dr. Anil Sirohi 101-105

Other

1) पौड़ी जनपद में माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन जनपद पौड़ी के दुगड्डा, जयहरीखाल, नैनीडांडा विकास खण्ड क्षेत्र के माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास में सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जानेवाली विभिन्न पदों में धनराशि का वर्षवार अध्ययन- नीरज कुमार कमल, डॉ. अनूप कुमार पोखरियाल 106-119
2) बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि पर अनुदेशनात्मक आव्यूह एवं निवास पृष्ठभूमि के प्रभाव अध्ययन-राजीव सांगवान,डॉ. लाजमीत कौर 120-126

संपादकीय .....

भारत देश मे कई तरह के आदमी निवास करते हैं । धनवान, मध्यम वर्ग, गरीब और अति गरीब । मालदार आदमी महलों मे रहता है । उसका खान पान, पहनावा, ओढ़ावा सभी उच्च क्लास का होता है । वह एक स्थान से दूसरे स्थान आने जाने के लिये लक्ज़री कार और एयरोप्लेन का प्रयोग करता है.. उसके बच्चे देश विदेश के बड़े बड़े स्कूल, कॉलेज और यूनिवर्सिटी मे पढ़ते हैं. राजनीती मे भाग लेते है । M LA और एमपी बनते है । मिनिस्टर बनना उनका जन्म सिद्ध अधिकार है । आईएएस बनना उनके लिये आसान होता है.. अब तो सरकार बिना आईएएस परीक्षा लिये कलेक्टर और सचिव बना रही है ।

माध्यम वर्ग के लोग पक्के मकानों मे रहते हैं। किसानी,छोटे छोटे व्यवसाय, सरकारी और प्राइवेट नौकरी करते हैं । इनके बच्चे सरकारी, प्राइवेट कॉलेज, विश्वविद्यालयों मे पढ़ने जाते हैं । इनका खान पान, रहन सहन समान्य होता है । इस वर्ग के कुच्छ ही बच्चे विश्वविद्यालयों तक पंहुच पाते हैं वही लोग छोटी बड़ी नौकारीयों मे आ पाते है । ऐसे लोग अपने बच्चों को शिक्षित कर लेते हैँ.. मध्यम वर्ग के बहुत सारे बच्चे हाई स्कूल पास या फैल होने के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैँ. ड्राइवर, मोटर मैकेनिक, बिजली से संवाधित छोटे छोटे कार्य करने लगते है । इनका जीवन किसी तरह गुजरने लगता है.ऐसे लोगों की शादी हो जाती है ।

तीसरा वर्ग मजदूर वर्ग की श्रेणी मे आता है. इनका जीवन बहुत ही कठिनाइयों से गुजरता है । इस वर्ग के बच्चे अधिकतर प्राइमरी व मिडिल क्लास तक शिक्षा पाने के बाद पैसे के आभाव मे पढना छोड़ देते है । ये बच्चे दलित वर्ग से आते हैँ. ये लोग खेतोँ मे मजदूरी करते है । बड़ी मुश्किल से मनरेगा ग्रामीण योजना मे काम मिल जाता है। लेकिन अब मनरेगा समाप्ति की ओर अग्रसर है । ये बेचारे मिट्टी के मकानों में रहते है । बहुत कम लोगों को सरकारी मकान बड़ी जद्दोजहद के बाद मिल पाते है । इन लोहों को साग सब्जी नहीं मिलती है तब ये लोग नमक रोटी खाकर जिन्दा रहते है । ये लोग शहरों में जाकर गगनचुम्बी इसरतों में लेबर का कार्य करते हैँ. इनका जीवन खतरे से भरा होता हैं गरीबों में भी एक बहुत गरीब वर्ग है । ये लोग झुग्गी झोपड़ी आदि में रहते है । जब इन लोगों के पास रहने के लिये कुछ नहीं होता है तब ऐसे लोग फुटपाथ पर रहने के लिये आ जाते है । पुलिस की मार सहते हुए भी किसी तरह वहीं टिके रहते हैं । ऐसे लोग अच्छा जीवन नहीं जी पाते है । ऐसे लोगों की तादात नब्बे करोड़ के लगभग है । सरकार द्वारा दिए जा रहे पांच किलो राशन पर जिन्दा रहते है । कुंढा से ग्रस्त होने के बाद इनमे से कुछ लोगों में आपराधिक कार्य करने की इच्छा पैदा हो जाती है. सरकार इनको राशन न देकर इनको कोई नौकरी देना चाहिए । ऐसा करने से इनमे अपने उत्तरदायित्व का बौद्ध होगा । ये देश के सक्षम नागरिक बनेगे..

ऐसे लोगों के बच्चों को सरकार अपने खर्चे पर शिक्षा अनिवार्य कर दे । उनके रहने के लिये हॉस्टल बनवाये । उनको कपडे और खाना उपलब्ध कराये । खेल कूद की व्यवस्था करवाये । तभी ऐसे लोग देश की मुख्य धारा में आ सकते है ।

ऐसे असहाय लोगों की जिंदगी के सम्बन्ध में मेरे उपन्यास डंक में चित्रित कविता सही तस्वीर प्रस्तुत करती है ।

मध्य प्रदेश के एक आदिवासी दसलित गाँव है
जहाँ दो औरतों के बीच एक साड़ी होती है
जब सास घर से बाहर जाती है
तब बहू हर में नंगी रहती है
ये! मेरे देश के महान कर्णधारों
इन अभागी माताओं बहिनों पर
तरस खाओ
इन्हें सजीव चलती फिरती
खजुराहो की मूर्तियां
मत बनाओ

रूप नारायण सोनकर
सह संपादक

योग एवं भावातीत ध्यान के अभ्यास से मानवीय मूल्यों का संवर्धन''

डॉ॰ सुनील कुमार मिश्र
सहायक प्राध्यापक
शारीरिक शिक्षा व योग विभाग
मैट्स विश्वविध्यालयए रायपुरए छ॰ ग॰

प्रस्तावना -

'योगं शरणं गच्छामि'

हम या मनुष्य योग की शरण क्यूँ ले? योग और भावातीत ध्यान के माध्यम से मानवीय मूल्यों को कैसे लाभ होगा? हम सभी मनुष्यों को पता है कि शारीरिक शांति, मानसिक शांति, सामाजिक शांति एवं आध्यात्मिक शांति इत्यादि मनुष्य के भीतर से मिलता है अर्थात् वर्तमान परिपे क्ष्य में मानव जाति भिन्न–भिन्न समस्याओं से ग्रसित है, जिसमें दैहिक समस्या एवं मानसिक समस्या सबसे ज्यादा है। यदि मनुष्य योग (आसन, प्राणायाम, मुद्रा एवं बंध) की प्रक्रिया को अपनाता है तो वह उपरोक्त समस्याओं से हद तक मुक्ति पा सकता है। मानसिक शांति या तनाव खत्म हो सकते है, शारीरिक समस्याएं खत्म हो सकती है तथा जब मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ्य रहेगा तभी आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो सकता है।

मानव का कल्याण उसके भीतर है और उन्ही भीतरी पहलुओं को संभालने और सुधारने की तकनीक है योग एवं भावातीत ध्यान।

योग एवं भावातीत ध्यान यही सिखाता है कि किसी इसांन की सेहत एवं कल्याण उस इसांन के ही हाथ में है, मनुष्य के स्वास्थ्य की देखभाल कोई अध्यात्मिक शक्ति, बाहरी दुनिया या अन्य ताकत आकर नहीं करेगी मनुष्य स्वयं करेगा। मानवीय जीवन का अनुभव मनुष्य के स्वयं के भीतर से उत्पन्न होता है, मनुष्य के जीवन की बागडोर स्वयं के हाथों में होती है, आपके जीवन का अनुभव किस तरह से हो और किस स्तर के हो, मनुष्य योग एवं भावातीत ध्यान के माध्यम से खुद तय कर सकता है।

कुंजी शब्द– योग, भावातीत ध्यान, आध्यात्मिक, मानवीय मूल्य।

भूमिका .

आजकल तनाव और तनाव से पैदा होने वाले रोगों की भरमार है, 60 या 70 की दशक से या इससे पहले के समय से तुलना करें तो हम पायेंगे कि आज हम पहले से कहीं ज्यादा सुख सुविधाओं से घिरे हुए है, तमाम सुख सुविधाओं के साथ अपना जीवन यापन कर रहे हैं, लेकिन फिर भी हम आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक समस्याओं से घिरे है, इन तमाम समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए हमें आपको एवं मानव समाज को अपने भीतर काम करना पड़ेगा, तभी मानव समाज अपने जीवन में मानवीय मूल्यों का लाभ प्राप्त कर सकता है एवं दूसरों को लाभ पहुंचा सकता है।

योग और भावातीत ध्यान -

भावातीत ध्यान -

भावातीत ध्यान की मन की ही एक अनुभूति है, विशेष रूप से ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मन और शरीर के बीच गहरा सह–सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो कि हमें उस स्तर तक ले जाता है, जहाँ पर हमारे मन का सीधा सम्पर्क विचारों के स्त्रोत से हो जाता है।

विचारों का स्त्रोत ही शुद्ध बुद्धि का क्षेत्र है, जिसे दूसरे शब्दों में भावातीत चेतना या तुरीय चेतना भी कहते हैं। हम सैकड़ों विचारों का अनुभव प्रतिदिन करते हैं। लेकिन ये विचार कहां से उत्पन्न होते है? ये हमारे अन्दर ही कहीं से उत्पन्न होते है। यह क्षेत्र या स्त्रोत हमारे अन्दर हैं जो इस सभी विचारों और उनकी क्रियाओं के लिये उत्तरदायी हैं। चूंकि हमारे सारे विचार बुद्धि, सृजनात्मकता और शक्ति के कुछ अंष से पोषित हैं, इसलिए अनंत बुद्धि, सृजनात्मकता और शक्ति विचारों के स्त्रोत में ही है। यही विचारों के स्त्रोत या भावातीत चेतना के विशिाष्ट गुण हैं।

हम कह सकते है कि भावातीत ध्यान एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम भावातीत चेतना के उस स्तर तक पहुंचते हैं, जहां पर हम अनंत क्रिया शक्ति, बुद्धि और सृजनात्मकता के स्त्रोत का अनुभव करते हैं। इस अनुभव के फलस्वरूप हम शक्ति, सृजनात्मकता और बुद्धिमत्ता के इस क्षेत्र को अपने अंदर पाने के योग्य हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप हम अपने दैनिक जीवन में अधिक बुद्धि मान, सृजनात्मक और शक्तिवान बन जाते हैं।

भावातीत ध्यान का अर्थ है परे जाना। यथार्थ में हम ध्यान में क्या करते हैं, हम एक विचार का अनुभव करते हैं। जैसे हम सब जानते हैं कि सोचना एक प्रयासहीन प्रक्रिया हैं। बचपन से ही हम विचारों को

सोचना आरम्भ करते हैं। मानवीय मस्तिष्क एक ऐसी अद्भुत स्वचालित मशीन है जिसे किसी ऊर्जा की आवश्यकता नहीं पड़ती और न ही विचार सोचने के लिए इसे किसी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है।

योग -

योगस्यचित्तवृत्तिनिरोधः ।। 1/2।।

व्याख्या– चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही 'योग' नाम से कहा गया है।

तदा द्रश्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।।1/3।।

व्याख्या– जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है, उस समय द्रष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है, अर्थात् वह कैवल्य–अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

वृशयः पश्चतय्यः किश्टाकिश्टाः।। 1/5।।

व्याख्या– ये चित्त की वृत्तियां आगे वर्णन किये जाने वाले लक्षणों के अनुसार पांच प्रकार की होती है। तथा हर प्रकार की वृत्ति के दो भेद होते है। एक तो क्लिष्ट यानी अविद्यादि के''ों को पुष्ट करने वाली और योगसाधन में विघ्नरूप होती है। तथा दूसरी अक्लिष्ट यानी के''ों को क्षय करने वाली और योगसाधन में सहायक होती है। साधन को चाहिए कि इस रहस्यों को भलीभांति समझकार पहले अक्लिष्ट वृत्तियों से क्लिष्ट वृत्तियों को हटावे, फिर उन अक्लिष्ट वृत्तियों का भी निरोध करके योग सिद्ध करें।

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ।। 1/6 ।।

व्याख्या– इन पांचों के स्परूप का वर्णन स्वयं सूत्रकार ने अगले सूत्रों में किया है, अतः यहां उनकी व्याख्या नहीं की गयी है।

प्रत्याक्षानुमानागमाः प्रमाणनि।। 1/7।।

व्याख्या– प्रमाणवृत्ति तीन प्रकार की होती है, उसको इस प्रकार समझना चाहिए।

प्रत्यक्ष–प्रमाण – बुद्धि, मन और इन्द्रियों के जानने में आने वाले जितने भी पदार्थ है, उनका अन्तःकरण और इन्द्रियों के साथ बिना किसी व्यावधान के सम्बन्ध होने से जो भ्रान्ति तथा सं''ाय रहित ज्ञान होता है, वह प्रत्यक्ष अनुभव से होनेवाली प्रमाणवृत्ति है। जिन प्रत्यक्ष दर्शनों से संसार के पदार्थों की क्षणभंगुरता का नि''चय होकर या सब प्रकार से उनमें दुःख की प्रतीति होकर मनुष्य का सांसारिक पदार्थों में वैराग्य हो जाता है, जो चित्त की वृत्तियों को रोकने में सहायक हैं, जिसे मनुष्य की योगसाधन में श्रद्धा और उत्साह बढ़ते हैं, उनसे होनेवाली प्रमाणवृत्ति तो अक्लिष्ट है तथा जिन प्रत्यक्ष दर्शनों से मुनष्य को सांसारिक पदार्थ नित्य और सुखरूप होते हैं, भोगों में आसक्ति हो जाती है, जो वैराग्य के विरोधी भावों को बढ़ाने वाले हैं, उनसे होने वाली प्रमाणवृत्ति क्लिष्ट है।

अनुमान–प्रमाण– किसी प्रत्यक्ष दर्शन के सहारे युक्तियों द्वारा जो अप्रत्यक्ष पदार्थ के रूपरूप का ज्ञान होता है, वह अनुमान से होनेवाली प्रमाणवृत्ति है। जैसे धूम को देखकर अग्निकी विद्यमानता का ज्ञान होना, नदी में बाढ़ आया देखकर दूर–देश में वृष्टि होने का ज्ञान होना–इत्यादि। इनमें भी जिन अनुमानों से मनुष्य को संसार के पदार्थों की अनित्यता, दुःखरूपता आदि दोषों का ज्ञान होकर उनमें वैराग्य होता है और योग के साधनों में श्रद्धा बढ़ती है, जो आत्मज्ञान में सहायक हैं, वे सब वृत्तियां तो अक्लिष्ट हैं और उनके विपरीत वृत्तियां क्लिष्ट हैं।

आगम–प्रमाण– वेद, शास्त्र और आप्त (यथार्थ वक्ता) पुरूषों के वचन को 'आगम' कहते हैं। जो पदार्थ मुनष्य के अन्तः करण और इन्द्रियों के प्रयत्क्ष नहीं है एवं जहां अनुमान की भी पहुंच नहीं है, उसके स्परूप का ज्ञान वेद, शास्त्र और महापुरूषों के वचनों से होता है, वह आगम से होने वाली प्रमाणवृत्ति है। जिस आगम–प्रमाण से भोगों में प्रवृत्ति और योग–साधनों में अरूचि हो, जैसे स्वर्गलोक के भोगों की बड़ाई सुनकर उनमें और उनके साधनरूप सकाम कर्मों में आसक्ति ओर प्रवृत्ति होती है, वह क्लिष्ट है।। 7।।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिश्ठम् ।। 1/8।।

व्याख्या– किसी भी वस्तु के असली स्वरूप को न समझकर उसे दूसरी ही वस्तु समझ लेना–यह विपरीत ज्ञान ही विपर्यवृत्तिा है– जैसे सीपमें चांदी की प्रतीति। यह वृति भी यदि भोगों में वैराग्य उत्पन्न करने वाली और योग मार्ग में श्रद्धा–उत्साह बढ़ाने वाली हो तो अक्लिष्ट है, अन्यथा क्लिष्ट है।

जिन इन्द्रिया आदि के द्वारा वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान होता है, उन्हीं से विपरीत ज्ञान भी होता है। यह मिथ्या ज्ञान भी कभी–कभी भोगों में वैराग्य करने वाला हो जाता है। जैसे भोग्य पदार्थों की क्षणभंगुरता को देखकर अनुमान करके या सुनकर उनको सर्वथा मिथ्या मान लेना योग–सिद्धान्त के अनुसार विपरीत वृत्ति है, क्योंकि वे परिवर्तनशील होने पर भी मिथ्या नहीं हैं तथापि यह मान्यता भोगी में वैराग्य उत्पन्न करने वाली होने से अक्लिष्ट है।

कुछ महानुभावों के मतानुसार विपर्ययवृत्ति और अविद्या–दोनों एक ही है, परंतु यह युक्तिसंगत नहीं मालूम होता क्योंकि अविद्या का नाश तो केवल असम्प्रज्ञातयोग से ही होता है जहां प्रमाणवृत्ति भी नहीं रहती। किंतु विपर्ययवृत्ति का नाश तो प्रमाण वृत्ति से ही हो जाता है। इसके सिवा योगशास्त्र के मतानुसार विपर्यय ज्ञान चित्त की वृत्ति है, किंतु अविद्या चित्तवृत्ति नहीं मानी गयी है, क्योंकि वह द्रष्टा और दृश्य के स्परूप की उपलब्धि में हेतुभूत संयोग की भी कारण है तथा अस्मिता और राग आदि केंशों की भी कारण है इसके अतिरिक्त प्रमाणवृत्ति में विपर्यवृत्ति और अविद्या की एकता नहीं हो सकती क्योंकि विपर्ययवृत्ति तो कभी होती है और कभी नहीं होती, किंतु अविद्या तो कैवल्य–अवस्था की प्राप्ति तक निरंतर विद्यमान रहती है। उसका नाश होने पर तो सभी वृत्तायों का धर्मी स्वयं चित्त भी अपने कारण में विलीन हो जाता है। परंतु प्रमाणवृत्ति के

समय विपर्यवृत्ति अभाव हो जाने पर भी न तो राग–द्वेषों का नाश होता है तथा न द्रष्टा और दृश्य के संयोग का ही इसके सिवा प्रमाणवृत्ति क्रिष्ट भी होती है, परंतु जिस यथार्थ ज्ञान से अविद्या का नाश होता है, वह क्रिष्ट नहीं होता। अतः यह मानना है ठीक है कि चित्त का धर्मरूप विपर्ययवृत्ति अन्य पदार्थ है तथा पुरूष और प्रकृति के संयोग की कारणरूपा अविद्या उससे सर्वथा भिन्न है। **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ।। 1/9।।**

व्याख्या– केवल शब्दों के आधार पर बिना हुए पदार्थ की कल्पना करने वाली जो चित्त की वृत्ति है, वह विकल पवृत्ति हैं यह भी यदि वैराग्य की वृद्धि हेतु, योग साधनों में श्रद्धा ओर उत्साह बढ़ाने वाली तथा आत्मज्ञान में सहयाक हो तो अक्रिष्ट है, अन्यथा क्रिष्ट है।

आगम–प्रमाणजनित वृत्ति होने वाले विशुद्ध संकल्पों के सिवा सुनी–सुनायी बातों के आधार पर मनुष्य जो नाना प्रकार के व्यर्थ संकल्प करता रहता है, उन सबको विकल्प वृत्ति के ही अन्तर्गत समझना चाहिए।

विपर्ययवृत्ति में तो विद्यमान वस्तु के स्वरूप का विपरीत ज्ञान होता है और विकल्पवृत्ति में विद्यमान वस्तु की शब्द ज्ञान के आधार पर कल्पना होती है, यही विपर्यय और विकल्प का भेद है।

जैसे कोई मुनष्य सुनी–सुनायी बातों के आधार पर अपनी मान्यता के अनुसार भगवान् के रूप की कल्पना करके भगवान् का ध्यान करता है, पर जिस स्परूप का वह ध्यान करता है उसे न तो उसके देखा है, न वेद–शास्त्रसम्मत है और न वैसा कोई भगवान् का स्वरूप वास्तव में है ही, केवल कल्पना मात्र ही है। यह विकल पवृत्ति मनुष्य को भगवान् के चिन्तन में लगाने वाली होने से अक्रिष्ट है, दूसरी जो भोगों में प्रवृत्त करने वाली विकल्पवृत्तियाँ है, वे क्रिष्ट हैं। इसी प्रकार सभी वृतियों में क्रिष्ट और अक्रिष्ट का भेद समझ लेना चाहिए।

अभावप्रत्ययालम्बना वृतिर्निद्रा ।। 1/10 ।।

व्याख्या– जिस समय मनुष्य को किसी भी विषय का ज्ञान नहीं रहता, केवल मात्र ज्ञान के अभाव की ही प्रतीत रहती है, वह ज्ञान के अभाव का ज्ञान जिस चित्तवृत्ति के आश्रित रहता है, वह निद्रा वृत्ति है। निद्रा भी चित्त की वृत्ति वि"ोष है, तभी तो मनुष्य गाढ़ निद्रा से उठकर कहता है कि मुझे आज ऐसी गाढ़ निद्रा आयी जिसमें किसी बात की कोई खबर नहीं रही। इस स्मृति वृŸा से ही यह सिद्ध होता है कि निद्रा भी एक वृŸा है, नही तो जगने पर उसकी स्मृति कैसी होती। निद्रा भी क्रिष्ट ओर अक्रिष्ट दो प्रकार की होती है। जिस निद्रा से जगने पर साधक के मन और इन्द्रियों में सात्विक भार जाता है, आलस्य का नाम–नि"ाान नहीं रहता तथा जो योगसाधन में उपयोगी और आव"यक मानी गयी है। वह अक्रिष्ट है, दूसरे प्रकार की निद्रा उस अवस्था में परिश्रम के अभाव का बोध कराकर विश्राम जनित सुख में आसक्ति उत्पन्न करने वाली होने से क्रिष्ट है।। 10।।

अनुभूतविशयासम्प्रमोशः स्मृतिः ।। 1/11 ।।

व्याख्या– प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और निद्रा– इन चार प्रकार की वृत्तियों द्वारा अनुभव में आये हुए विषयों के जो संस्कार चित्त में पड़े हैं, उनका पुनः किसी निमित्त को पाकर स्फुरित हो जाना ही स्मृति है। उपर्युक्त चार प्रकार की वृत्तियों के सिवा इस स्मृति वृत्ति से जो संस्कार चित्त पर पड़ते हैं उनमें भी पुनः स्मृति वृत्ति उत्पन्न होती है। स्मृतिवृत्ति भी क्रिष्ट और अक्रिष्ट दोनों ही प्रकार की होती है। जिस स्मरण से मनुष्य का भोगों में वैराग्य होता है तथा जो योग साधनों में श्रद्ध और उत्साह बढ़ाने वाला एवं आत्मज्ञान में सहायक है, वह तो अक्रिष्ट है और जिससे भोगों में राग–द्वेष बढ़ता है, वह क्रिष्ट है। स्वप्रको कोई–कोई स्मृति वृत्ति मानते हैं, परंतु स्वप्न में जाग्रत् की भांति सभी वृत्तियों का अविर्भाव देखा जाता है, अतः उसका किसी एक वृत्ति में अन्तर्भाव मानना उचित प्रतीत नहीं होता ।। 11 ।।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।। 1/12 ।।

व्याख्या– चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध करने के लिये अभ्यास और वैराग्य– ये दो उपाय हैं। चित्त वृत्तियों का प्रवाह परम्परागत संस्कारों के बल से सांसारिक भोगों की ओर चल रहा है। उस प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है और उसे कल्याण मार्ग में ले जाने का उपाय अभ्यास है।। 12 ।।

तत्र स्थितौ यत्नोऽयासः ।। 1/13 ।।

व्याख्या– चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध करने के लिए अभ्यास और वैराग्य–ये दो उपाय हैं। चित्त वृत्तियों का प्रवाह परम्परागत संस्कारों के बल से सांसारिक भोगों की ओर चल रहा है। उस प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है और उसे कल्याण मार्ग में ले जाने का उपाय अभ्यास है।। 13।।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।। 1/30

व्याख्या– योगसाधन में लगे हुए साधक के चित्त में विक्षेप उत्पन्न करके उसको साधन से विचलित करने वाले ये नौ योगमार्ग के विघ्न माने गये है।

शरीर, इन्द्रियसमुदाय और चित्त मे किसी प्रकार का रोग उत्पन्न हो जाना 'व्याधि' है।

अकर्मण्यता अर्थात् साधनों में प्रवृत्ति न होने का कारण स्वभाव 'स्त्यान' है।

अपनी शक्ति में या योग के फ लमे संदेह हो जाने का नाम 'संशय' है।

योगसाधनों के अनुष्ठान की अवहेलना (बे–परवाही) करते

रहना 'प्रमाद' है।

तमोगुण की अधिकता से चित्त और शरीर में भारीपन हो जाना और उसके कारण साधन में प्रवृत्तिका न होना 'आलस्य' है।

विषयों के साथ इन्द्रियों का संयोग होने से उनमें आसक्ति हो जाने के कारण जो चित्त मे वैराग्य का अभाव हो जाता है, उसे 'अविरति' कहते हैं।

योग के साधनों को किसी कारण से विपरीत समझना अर्थात् यह साधन ठीक नहीं, ऐसा मिथ्या ज्ञान हो जाना 'भ्रान्तिदर्शन' है।

साधन करने पर भी योग की भूमिकाओं का अर्थात् साधन की स्थिति का प्राप्त न होना–यह 'अलब्धभूमिकत्व' है, इससे साधक का उत्साह कम हो जाता है।

योग साधन से किसी भूमि में चित्त की स्थिति होने पर भी उसका न ठहरना 'अनवस्थितत्व' है।

इन नौ प्रकार के चित्त विक्षेपों को ही अन्तराय, विघ्न और योग के प्रतिपक्षी आदि नामों से कहा जाता है।

दुःखदौर्मनस्याCमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः।।1/31।।

व्याख्या– उपर्युक्त चित्त विक्षेपों के साथ–साथ होने वाले दूसरे पांच विघ्न इस प्रकार है।

दुःख–आध्यात्मिक, आधिभौतिक ओर आधिदैविक– इस तरह दुःख के प्रधानतया तीन भेद माने गये हैं। काम–क्रोधादि के कारण व्याधि आदि के कारण या इन्द्रियों में किसी प्रकार की विकलता होने के कारण जो मन, इन्द्रिय या शरीर ताप या पीड़ा होती है, उसको 'आध्यात्मिक दुःख कहते है। मनुष्य, पशु, पक्षी, सिंह, व्याघ्र मच्छर और अन्यान्य जीवों के कारण होने वाली पीड़ा का नाम 'आधिभौतिक दुख' है तथा सर्दी, गर्मी, वर्षा, भूकम्प आदि दैवी घटना से होने वाली पीड़ा का नाम 'आधिदैविक दुःख है।

अंग–मेजयत्व – शरीर के अंगों में कम्प होना, अंग–मेजयत्व' है।

श्वास– बिना इच्छा के बाहर की वायु भीतर प्रवेश कर जाना अर्थात् बाहरी कुम्भक में विघ्न हो जाना श्वास है।

प्रश्वास– बिना इच्छा के ही भीतर की वायु का बाहर निकल जाना अर्थात् भीतरी कुम्भक में विघ्न हो जाना 'प्रश्वास' है।

ये पांचों विक्षिप्त चित्त में ही होते हैं, समाहित चित्त में नहीं, इसलिये इनको विक्षेपसहभू कहते हैं।

तत्प्रतिशेधार्थमेकतत्वाभ्यासः।। 1/32 ।।

व्याख्या– उपर्युक्त दोनों प्रकार के विघ्नों का नाश ईश्वर–प्रणिधान से तो होता ही है, उसके सिवा यह दूसरा उपाय बतलाया गया है भाव यह कि किसी एक वस्तु में चित को स्थित करने का बार–बार प्रयत्न करने से भी एकाग्रता उत्पन्न होकर विघ्नों का नाश हो जाता है, अतः यह साधन भी किया जा सकता है।

मैत्रीकरूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुः खपुण्यापुण्यविशयाणांभावनातश्त्तिप्रसादनम्।। 1/33 ।।

व्याख्या– सुखी मनुष्यों में मित्रता की भावना करने से, दु खीः मनुष्यों में दया की भावना करने से, पुण्यात्मा पुरूषों में प्रसन्नता की भावना करने से और पापियों में उपेक्षा की भावना करने से चित के राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध आदि मलों का नाश होकर चित शुद्ध–निर्मल हो जाता है। अतः साधक को इसका अभ्यास करना चाहिये।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगाऽनिर्विण्णचेतसा।। BH.G. 6/23।।

व्याख्या– अर्थात् उस योग का अभ्यास बिना उकताये हुए चित्त से निष्ठापूर्वक करते रहना चाहिये।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। BH.G. 6/35।।

व्याख्या– हे कुन्ती पुत्र अर्जुन अभ्यास अर्थात् स्थिति के लिये बारम्बार प्रयत्न करने से और वैराग्य से मन वश में होता है, इसलिये इसको आवश्य वश में करना चाहिये।।

अविद्यास्मितारागद्वेशाीिनिवेशाः क्लेशः।। 2/3।।

व्याख्या– ये अविद्यादि पांचो ही जीवनमात्र को संसार चक्र में घुमाने वाले महादुःखदायक हैं। इस कारण सूत्रकार ने इनका नाम 'क्लेश' रखा है।

कितने ही टीकाकरों का तो कहना है कि ये पांचों क्लेश ही पांच प्रकार का विपर्ययज्ञान है। कुछ इनमें से केवल अविद्या और विपर्ययवृति की ही एकता करते हैं, किंतु ये दोनों ही बातें युक्तिसंगत नहीं मालूम होती, क्योंकि प्रमाणवृति का अभाव है, पर अविद्यादि पांचों क्लेश वहां भी विद्यमान रहते हैं। ऋतम्भरा प्रज्ञा में विपर्ययका लेश भी नहीं स्वीकार किया जा सकता, परंतु जिस अविद्यारूप क्लेश को द्रष्टा और दृश्य के संयोगका हेतु माना गया है, वह तो वहां भी रहता ही है, अन्यथा संयोग के अभाव से हेय का नाश होकर साधक को उसी क्षण कैवल्य–अवस्था की प्राप्ति हो जानी चाहिये थी। इसके सिवा एक बात और भी है। इस ग्रन्थ में कैवल्य–स्थिति को प्राप्त सिद्ध योगी के कर्म अशुक्ल और अकृष्ण अर्थात् पुण्य–पाप के संस्कारों से रहित माने गये हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि जीवन्मुक्त योगी द्वारा भी कर्म अव"य किये जाते हैं। तब यह भी मानना पड़ेगा कि व्युत्थान–अवस्था में जब वह कर्म करता है तो विपर्यय–वृति का प्रादुर्भाव भी स्वाभाविक होता है, क्योंकि पांचों ही वृत्तियां चित्त का धर्म हैं और व्युत्थान–अवस्था में चित्त विद्यमान रहता है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। किंतु जीवन्मुक्त योग में अविद्या भी रहती

है, यह नहीं माना जा सकता, क्योंकि यदि अविद्या वर्तमान है तो वह जीवन्मुक्त ही कैसा, इसी तरह और भी बहुत–से कारण हैं जिनसे विपर्यय और अविद्या की एकता मानने में सिद्धांत हानि होती है। अतः विद्वान् सज्जनों को इस पर विचार करना चाहिये।

निष्कर्ष – निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि योग व भावातीत ध्यान के अभ्यास से मानवीय मूल्यों का उत्थान संभव हो सकता है, जिस प्रकार से महर्षि महेश योगी ने भावातीत ध्यान के बारे में बताया है कि भावातीत ध्यान के माध्यम से मनुष्य अपने चित्त को संयमित कर सकता है और यदि मनुष्य का चित्त संयमित हो जाता है तो वह अपने मानव होने के लक्ष्य कि प्राप्ति कर सकता है | अर्थात व संयमित रहते हुये मानवता की प्राप्ति कर सकता है क्योंकि जब मनुष्य शारीरिक, मानसिक रूप से संयमित रहेगा तभी वह किसी प्रकार का गलत कार्य नहीं करेगा |

इसी प्रकार महर्षि पतंजलि ने भी योग दर्शन में चित्त पर नियंत्रण पाने की बात कही है, जब मनुष्य अपने चित्त पर नियंत्रण प जाता है तो वो सभी प्रकार के विघ्नों पर जीत हासिल कर लेता है | तब मनुष्य से मनुष्यता की ओर अग्रसर होने लगता है | उपरोक्त सूत्रों में महर्षि पतंजलि ने मनुष्य के जीवन को सुखमय कैसे बनाया जाय, उन पर चर्चा किया है | महर्षि पतंजलि ने चित्त को शुद्ध व निर्मल करने के लिए अभ्यास वैराग्य, अंतराय, यम-नियम इत्यादि के माध्यम से चित्त को शुद्ध व निर्मल बनाया जा सकता है तथा समाधि की ओर अग्रसर हो सकते है |

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. बर्ग, डब्ल्यू.पी. वैन डेन, और मुल्डर, बी. 1973. कई व्यक्तित्व चरों पर ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन तकनीक के प्रभावों पर मनोवैज्ञानिक शोध। ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन प्रोग्राम पर साइंटिफिक रिसर्च में: कलेक्टेड पेपर्स, वॉल्यूम। मैं, एड. डी. डब्ल्यू. ओरेम-जॉनसन और जे. टी. फैरो, पीपी. 428-433। राइनवीलर, डब्ल्यू. जर्मनी: मेरु प्रेस. (इसके बाद एकत्रित कागजात के रूप में उद्धृत किया गया।)
2. डेविस, जे। 1974। ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन प्रोग्राम और प्रगतिशील विश्राम: विशेषता चिंता और आत्म-बोध पर तुलनात्मक प्रभाव। कलेक्टेड पेपर्स में, वॉल्यूम। 1, पीपी। 449-452।
3. फैरो, जे.टी. 1975. अनुवांशिक चेतना से जुड़े शारीरिक परिवर्तन। कलेक्टेड पेपर्स में, वॉल्यूम। 1, पीपी। 108-133।
4. एफईएचआर, टी.; नेरस्टीमर, यू.; और TÖRBER, एस। 1972। ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन प्रोग्राम के परिणामस्वरूप व्यक्तित्व परिवर्तन का अध्ययन: फ्रीबर्ग पर्सनैलिटी इन्वेंटरी। कलेक्टेड पेपर्स में, वॉल्यूम। 1, पीपी। 420-424।
5. फर्ग्यूसन, पी.सी., और गोवन, जे.सी. 1976. टीएम कुछ प्रारंभिक मनोवैज्ञानिक निष्कर्ष। जर्नल ऑफ ह्यूमनिस्टिक साइकोलॉजी 16: 51-60। (इसके अलावा कलेक्टेड पेपर्स में, वॉल्यूम 1, पीपी। 484-488, "ट्रांसेंडैंटल मेडिटेशन पर मनोवैज्ञानिक निष्कर्ष" शीर्षक के तहत।)
6. HJELLE, L. A. 1974. TM और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य। अवधारणात्मक और मोटर कौशल 39: 623-628। (एकत्रित कागजात में भी, खंड 1, पीपी। 437-441।)
7. मैक्कलम, एम.जे. 1974. द ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन प्रोग्राम एंड क्रिएटिविटी। कलेक्टेड पेपर्स में, वॉल्यूम। 1, पीपी। 410-414।
8. निडिच, एस.; सीमैन, डब्ल्यू.; और ड्रेस्किन, टी। 1973। टीएम का प्रभाव: एक प्रतिकृति। जर्नल ऑफ काउंसलिंग साइकोलॉजी 20: 565-566। (एकत्रित कागजात में भी, खंड 1, पीपी। 442-443।)
9. निडिच, एस.; सीमैन, डब्ल्यू.; और SEIBERT, एम। 1973। राज्य की चिंता पर अनुवांशिक ध्यान कार्यक्रम का प्रभाव। कलेक्टेड पेपर्स में, वॉल्यूम। 1, पीपी. 434-436।
10. शिलिंग, पी. 1974. व्यवहार और व्यक्तित्व पर ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन तकनीक के नियमित अभ्यास का प्रभाव। कलेक्टेड पेपर्स में, वॉल्यूम। 1, पीपी। 453 -461।
11. जायसवाल, सीताराम (1987), भारतीय मनोविज्ञान, आर्य बूक डिपो, नयी दिल्ली।
12. भारद्वाज ईश्वर, मानव चेतना- सत्यम प्रकाषनहाउस दिल्ली 2011
13. शास्त्री गिरीजाशंकर - वषिष्ट संहिता, चौखंभा प्रकाशन वाराणसी
14. गीता प्रेस, गोरखपुर योग वाशिष्ट, गीता प्रेस, गोरखपुर 2016

★★★

'श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित व्यावहारिक जीवन के सापेक्ष 'आत्म संयम योग' की भूमिका'

डॉ. सुनील कुमार मिश्र,
सहायक प्राध्यापक, शारीरिक शिक्षा व योग विभाग, मैट्स यूनिवर्सिटी, रायपुर

रुखमणी साहू,
शोधार्थी, शारीरिक शिक्षा व योग विभाग, मैट्स यूनिवर्सिटी, रायपुर

सारांश – श्रीमदभगवद्गीता हमारे धर्मग्रंथों का एक अत्यंत तेजस्वी और निर्मल हीरा है। श्रीमदभगवद्गीता मानव को द्वंद से समाधान की ओर यात्रा कराता है। द्वंद ही संसार है और संसार ही द्वंद है। द्वंद मानव मन के संवेगात्मक पक्ष की सबसे बड़ी समस्या है। द्वंद मानव मन में उपजी वह व्याधि है जो उसे जीवन पथ में न आगे बढ़ने देती है, और न ही पीछे की समस्याओं से बाहर निकलने देती है। इस द्वंद से बाहर निकलने के लिए संतुलन की महती आवश्यकता है। भगवान श्री कृष्ण ने आत्म संतुलन जीवन में कितना जरूरी है, श्रीमदभगवद्गीता के छठे अध्याय "आत्म संयम योग" के माध्यम से बताया है। आत्म का अर्थ है "स्व" और संयम का अर्थ है "संतुलन"। स्व (अपने) के भीतर संतुलन ही जीवन की सुंदरता है और इसी के आधार पर जीवन टीका हुआ है। शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का संतुलन ही आत्म संयम है। संतुलन सर्व प्रथम शरीर के धरातल पर होता है, उसके पश्चात ही मन, बद्धि, चित्त, अहंकार,तक पहुंचा जाता है। श्रीमदभगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने संतुलन अर्थात समत्व को ही जीवन का सार बताया है, इसलिए सबसे पहले मनुष्य को तन का संतुलन भोजन के माध्यम से , मन का संतुलन अच्छे और सकारात्मक विचारो से करना चाहिए।

मूल शब्द –व्यवहारिक जीवन , श्रीमदभगवद्गीता, आत्म संयम योग

प्रस्तावना – वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानव जिस परिवेश में जीवन यापन कर रहे है, उस परिवेश को आधुनिकता कहा जाता है। अत्याधुनिकता की होड़ में मानव ने अपनी सुख सुविधाओं के लिए प्रकृति के साथ छेड़ खानी कर अनेको आविष्कार किया। माना आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है परंतु इन्ही आविष्कार किए वस्तुओं का उपयोग मनमाने ढंग से अर्थात आवश्यकता से अधिक करने लगे तो मनुष्य की समस्त इंद्रियां वस्तुओं पर आसक्त होने लगती है। आसक्ति का अर्थ "किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति विशेष रुचि होना या मोह होना। यदि मनुष्य की इंद्रियों को किसी भी व्यक्ति, वस्तु विशेष पर आसक्ति हो जाती है और वह वस्तु या व्यक्ति को अपने अनुकूल, सही समय पर नहीं पाने की स्थिति में उनका मन विचलित होने लगता है। आसक्ति मनुष्य के मन की शांति को छिन लेती है। मन को चंचल बना देती है। आसक्ति से प्रमाद की उत्पत्ति होती है, प्रमाद मद होता है , और मद अहंकार का स्रोत होता है, और अहंकार पूर्णतः क्षुब्धता में परिवर्ती हो जाता है। अर्थात मनुष्य की समस्त इंद्रियाँ बेलगाम घोड़े की भांति इधर-उधर भागने लगती है। अथवा मन इंद्रियों का दास बन जाता है। आज के मानव समाज में प्रत्येक व्यक्ति इसी आसक्ति से जकड़ा हुआ है, किसी को व्यक्ति विशेष से आसक्ति है, तो किसी को वस्तु विशेष से। और यही आसक्ति मनुष्य के दु:ख का मुख्य कारण है। जैसे द्वापर युग में अर्जुन को अपने अधर्मी भ्राताओं, गुरुओं और परिवार जनो से हो गया था। आसक्ति में डूबे हुए व्यक्ति का विवेक क्षीण हो जाता है, उसे सही-गलत, उचित-अनुचित, का ज्ञान नहीं रहता। उनकी इंद्रियाँ, मन, बुद्धि चित्त, अहंकार, असंयमित हो जाता है। आसक्ति में पड़ा मनुष्य न तो स्वयं का कुछ कर पता है और न ही समाज का। आसक्ति एक ऐसा दीमक है जो व्यक्ति को अंदर ही अंदर कब खोखला कर देता है पता ही नहीं चलता। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मनुष्य को सबसे अधिक आसक्ति धन संपत्ति से है। आज भाई-भाई एक-दूसरे के दुश्मन इसीलिए बन गए है, एक ही आँगन में दीवार खड़ी होने लगी है। भाई, भाई के खून के प्यासे बन चुके है। धन की आसक्ति में चूर मनुष्य जघन्य अपराध करने लगे है। वर्तमान में कई ऐसे खबर अखबार में पढ़ने को मिलता है कि स्त्री की आसक्ति में डूबे व्यक्ति ने संशय वश अपनी पत्नी, अपनी प्रियसी कि हत्या कर दी। केवल आज का मनुष्य ही आसक्ति में चूर नहीं है, बल्कि मन कि इस विकृति का शिकार हर युग में देवताओं के साथ मनुष्य भी हुए है। और अंत में उनका परिणाम भी दु:ख के रूप में मिला है।

श्रीमद्भगवदगीता का परिचय – श्रीमदभगवद्गीता की स्तुति करते हुए भगवान श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास जी कहते है- **गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।**
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

गीता एक ऐसा महाकाव्य है जिसका गायन श्रीभगवान ने स्वयं अपने मुखारविंद से गाया है। इस गीता का स्वाध्याय और मनन करने के बाद अन्य कोई और ग्रंथ या शास्त्र को पढ़ने कि जरूरत नहीं होती है। श्रीकृष्ण द्वैपयान व्यास जी स्वयं भगवान के 24 अवतारों मे से एक अवतार है, उन्होने ही महाभारत जैसे महाकाव्य कि रचना की है। महाकाव्य महाभारत में कुल 18 पर्व है जिसमें छटा पर्व भीष्म पर्व है, श्रीमदभगवद्गीता भीष्म पर्व का ही अंग है। महाभारत की तरह श्रीमदभगवद्गीता में भी 18 अध्याय और 700 श्लोक है। परंपरा से यह ज्ञान सबसे पहले सूर्य को मिला था, जिनके पुत्र वैवस्वत मनु थे। गीता की गणना उपनिषदों में की जाती है, इसलिए इसे गीतोपनिषद भी कहा जाता है। श्री वेदव्यास जी ने श्रीमदभगवद्गीता माहात्म्य में कहा है-

सर्वोपनिषदों गावो दोग्धा गोपालनंदन:।
पार्थो वत्स: सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत॥

अर्थात सभी उपनिषद गौ माता के समान है, उन गायों को दुहने वाले भगवान श्री कृष्ण गोपालनंदन है। भगवान के परम सखा पार्थ अर्जुन गीता के ज्ञानरूपी अमृत को पीने वाले है।

व्यवहारिक जीवन में "आत्मसंयमयोग" की भूमिका – इस पूरे ब्रह्मांड में अगर कोई श्रेष्ठ योनि है तो वो मानव योनि है। मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसके अंदर विवेक है। विवेक के माध्यम से मानव इतनी तरक्की के सीढ़िया चढ़ चुके है कि अब वह अपने स्वयं के द्वारा बनाए हुए वस्तु विशेष और संबंध में आसक्त हो गए है। आसक्ति ही समस्त दु:खो का कारण है, जिससे हमारी भावनाएं भी दूषित हो जाती है। भावना के विषय में वेद मूर्ति श्री राम शर्मा आचार्य कहते है – भावना जब उत्कृष्ट होती है तो भक्ति बनती है। श्रद्धा, प्रेम, उदारता, प्रफुल्लता, साहस, उत्साह, आशा आदि के रूप में यह उत्कृष्ट भावना ही दिखाई देती है। जब यह गिरती है तो वासना बनती है। भगवान कहते है-

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृत चेतसाम।
व्यवसायात्मीका बुद्धि: समाधौ न विधीयते॥ 2.44॥

भोग और एश्वर्य में आसक्त रहने वाले लोगो की बुद्धि मारी जाती है, उन्हे सही और गलत का भान नहीं होता, आसक्ति के कारण वह न करने योग्य कर्म भी कर डालते है। इनकी बुद्धि न तो निश्चय वाली होती है और न वह समाधि में स्थिर हो सकती है। आसक्ति के कारण मनुष्य किसी भी हद तक जा सकते है। आसक्ति के कारण तन और मन दोनों असंतुलित हो जाता है। असंयमित मन मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह, जैसे बुरी भावनाओं में फसा देती है जिसके कारण मन में पवित्र भावों का उद्भव नहीं हो पाता और निकृष्ट, नकारात्मक विचारो को जन्म देता है, बुद्धि भी ठीक से निर्णय नहीं ले पाती है। इसी प्रकार असंयमित तन से अनेकानेक रोग उत्पन्न होते है इसलिए भगवान श्री कृष्ण ने आसक्ति से छुटकारा पाने और जीवन में संतुलन, संयम बनाय रखने के लिए अर्जुन के माध्यम से सम्पूर्ण मानव समाज को आत्मसंयम योग का मार्ग बताया है। एक आदर्श परिवार और समाज की स्थापना के लिए प्रत्येक मनुष्य के व्यावहारिक जीवन मे संतुलन अति आवश्यक है। संतुलन ही जीवन की सुंदरता है। संतुलन का अर्थ संयम से है। व्यावहारिक जीवन मे संतुलन हेतु सबसे पहले मनुष्य को आसक्ति का त्याग करते हुए शरीर के अंग विशेष को संयमित करना चाहिए। जिव्हा स्वाद वश किसी भी विशेष प्रकार के भोजन में आसक्त होने के कारण अधिक मात्र में ग्रहण कर लेता है जिसके कारण शरीर में वात, पित्त, कफ का संतुलन बिगड़ जाता है और अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है । इसलिए शरीर को संतुलित करने हेतु जिव्हा पर संयम अति आवश्यक है। सही समय में, शुद्ध सात्विक तथा पौष्टिक आहार से शरीर में संतुलन बना रहता है। इसी प्रकार मन के असंयमित होने से विचारो का संक्रमण हो जाता है, बुरे विचार मन में लगातार उठते रहते है जिसकी वजह से मन में द्वेष, ईर्ष्या जैसे भाव उत्पन्न होने लगता है। मन कुंठित हो जाता है, आत्म विश्वास की कमी होने लगती। मन निरंतर चिंता, अवसाद जैसे विकारो से ग्रसित हो जाता है। तन और मन का संयम व्यावहारिक जीवन में अति आवश्यक है। मन में बीते हुए कल का शोक और आने वाले कल की चिंता इसी द्वंद से मुक्ति के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमदभगवद्गीता के छठे अध्याय आत्म संयम योग का मार्ग बताया है। आत्म संयम का अर्थ अपने आत्म अर्थात स्वयं का संतुलन है। अपनी चेतना को इंद्रियों से अलग करके ही आत्म संतुलन किया जा सकता है। आत्म संतुलन हेतु भगवान श्री कृष्ण ने सबसे पहले उपाय निष्काम कर्म योग बताया है, फल की इक्षा का त्याग करके ही व्यक्ति योग की ओर आगे बढ़ सकता है। भगवान कहते है कि-

आरूरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढ़स्य तस्यैव शम: कारणमुच्यते॥ 6.3॥

निष्काम कर्म योग से मन के अनावश्यक संकल्प समाप्त हो जाता है। इसलिए योग में आरूढ़ होने वाले व्यक्तियों के लिए संकल्पों का अभाव होना अति आवश्यक है। जब मनुष्य इंद्रियों के विषयों में या कर्म में आसक्त न हो और मन की सारी तरंगो को छोड़ दे, तब कहना चाहिए कि उसने योग साधा है । मनुष्य अपने जीवन में कर्म करने के लिए स्वतंत्र है ,वो जो चाहे जैसा चाहे कर सकता है और उसी के अनुरूप वह कर्म फल भी भोगता है। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। भगवान भी उन्हे कर्म करने के लिए बाध्य नहीं करते है। लेकिन फिर भी मनुष्य अज्ञानता वश भगवान को ही दोष देते है,कि भगवाने तूने मेरे साथ गलत कर दिया, जबकि वह कर्म करने के लिए स्वतंत्र है। लेकिन तन और मन में संयम न होने के कारण वह न करने योग्य कार्य भी कर देता है जिसके कारण वह व्यथित हो जाता है। इसलिए भगवान ने कहा है कि मनुष्य स्वयं अपना मित्र और शत्रु दोनों है। भगवान कहते है-

उद्धरेदात्मनात्मानं
नात्मानमवसादयेत।
आत्मैव ह्यात्मनों बंधुरात्मैव रिपुरात्मन:॥ 6.5॥

यदि मनुष्य अपने जीवन का उद्धार स्वयं कर लेता है तो वह अपना ही मित्र बन जाता है और कर्तव्य कर्म को छोडकर न करने योग्य कर्म करता है तो वह स्वयं का शत्रु बन जाता है। मन की गति वायु से भी तेज है, पल-पल में स्थान परिवर्तित करने वाला तथा सकारात्मक एवं नकारात्मक विचारों का सृजन करने वाला मन ही स्वयं आत्मा का उद्धार कर सकता है। यदि मन ईश्वर के चरणों का ध्यान करने लगे और स्वार्थ, आसक्ति का त्याग कर दे तो वह स्वयं का मित्र बन जाएगा और जीवन को उत्कृष्ट मार्ग पर ले चलेगा लेकिन यदि यही मन नकारात्मक भावनाओं के संपर्क में आ करके निकृष्ट कार्य करने लगे तो वह स्वयं का शत्रु भी बन जाता है और जीवन को अधोगति प्रदान कर देता है इसलिए मन को संयमित कर जीवन को संयमित किया जा सकता है। मन ही हमारे मित्र है और मन ही हमारी शत्रु है। वर्तमान मानव समाज में इसी असंयमित मन के कारण परिवार में क्लेश, कलह, द्वंद जैसी घटनाएँ प्रतिदिन घट रही है। घर में नकारात्मक व्यवहार के कारण वातावरण में भी नकारात्मक ऊर्जा का संचार होने लगा है। प्रत्येक मनुष्य स्वयं का शत्रु बन गया है यही कारण है कि आज हमारे समाज में आत्महत्या का मामला बहुत अधिक बढ़ गया है। इस असंयमित मन को विषयों से दूर आसक्ति से मुक्त करने के लिए भगवान् ने प्राणायाम का मार्ग बताया है। जिससे चित्त और इंद्रियाँ संयमित रहेंगी।

स्पर्शांकृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रूवों:।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ॥5.27॥

भगवान अर्जुन को निमित्त बनाकर समस्त मानव को प्राणायाम की यह विधि बताते जिससे मन संयमित, विषयों से मुक्त और नकारात्मक भावनाओं, क्रियाओं से दूर रहकर अंतर्मुखी हो जाते है। अपनी दृष्टि को दोनों भवों के मध्य भृकुटी में स्थिर रख कर अपनी चेतना स्वास-प्रस्वास पर रखे और धीरे-धीरे अपने स्वास की गति में चल रहे सोहम की ध्वनि में ध्यान केन्द्रित करे। ऐसा करने से मन की चंचलता स्थिर हो जाती है, इंद्रियाँ संयमित हो जाती है और बहिर्मुख मन अंतर्मुखी हो जाती है।

निष्कर्ष- इस अस्थायी जगत में हम अपनी यात्रा के दौरान हमारे अन्त: करण का स्वर सदैव हमारे साथ होता है। हम सभी ने अनुभव किया है कि हमारे अंदर सकारात्मक और नकारात्मक विचार सदैव उठते रहते है और यह सब अन्त:करण से होता है। अन्त: करण अर्थात मन। मन ही यादों और अनुभवो का गोदाम है। जो व्यक्ति को विभिन्न विकल्प देते रहता है। अनियंत्रित मन इस संसार में उद्विग्न, भ्रमित, बांधता है एवं हमे काम, क्रोध लोभ रूपी निम्न प्रवृतियों के सामने झुकने के लिए मजबूर करता है। दूसरी ओर नियंत्रित मन हमारी आध्यात्मिक यात्रा पर एक मित्र का कार्य करती है। वह उन्नतिशील एवं सकारात्मक विकल्प चुनने में साहयता करता है

जो हमें भगवान के निकट ले आते है। मन पर नियंत्रित करके तथा उसके साथ मित्रता करके व्यक्ति शांति तथा सुख- दःख के द्वंद से मुक्ति का अनुभव करता है। हम श्रीमदभगवद्गीता के छठे अध्याय आत्मसंयम योग के माध्यम से अपने व्यावहारिक जीवन में मन को संयमित और नियंत्रित करने का गुर सीखते है जिससे हमारे अंदर भावनाएं पवित्र और विचार सकारात्मक बने और जीवन में क्लेश, द्वंद जैसे निकृष्ट भावनाओं से निजात पाते है।

संदर्भ सूची-

1.महर्षि वेदव्यास, 2017, महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ 36

2. महर्षि वेदव्यास, 2015, श्रीमद्भगवद्गीता महात्म्य सहित, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ 8

3. डॉ प्रणव पण्ड्या, 2016, योग के वैज्ञानिक प्रयोग, श्री वेद माता गायत्री ट्रस्ट, पृ.53

4.जयदयाल गोयंदका, 55 वां संस्करण, श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 85

5. श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द , 2022, यथार्थ गीता, जॅक प्रिंटर्स, पृष्ठ 145

6. महात्मा गांधी, 2020, गीता माता, प्रभात पेपरबैक्स, पृष्ठ 38

7. जयदयाल गोयंदका, 55 वां संस्करण, श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 246

8. श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द , 2022, यथार्थ गीता, जॅक प्रिंटर्स, पृष्ठ 140

☆☆☆

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में "कर्मयोग" की भूमिका: श्रीमद्भगवद्गीता के विशेष संदर्भ में

रुखमणी साहू,
शोधार्थी, शारीरिक शिक्षा व योग विभाग, मैट्स यूनिवर्सिटी, रायपुर
डॉ॰ सुनील कुमार मिश्र,
सहायक प्राध्यापक, शारीरिक शिक्षा व योग विभाग, मैट्स यूनिवर्सिटी, रायपुर

सारांश- एक लाख श्लोको से सुसज्जित महाकाव्य महाभारत जिसकी रचना अक्षय तृतीया के दिन महर्षि वेदव्यास के निर्देशन में भगवान श्री गणेश जी के द्वारा की गयी थी, के भीष्म पर्व से विश्वविख्यात ग्रंथराज श्रीमदभगवद्गीता का उद्भव हुआ है। श्रीमदभगवद्गीता हमारे धर्मग्रंथों का एक अत्यंत तेजस्वी और निर्मल हीरा है। पिंड-ब्रह्मांड-ज्ञानसहित आत्मविद्या के गूढ और पवित्र तत्वों को थोड़े में और स्पष्ट रीति से समझा देने वाला, उन्ही तत्वों के आधार पर मनुष्य मात्र के पुरुषार्थ की, अर्थात आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देनेवाला, भक्ति और ज्ञान का मेल करा करके इन दोनों को शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करा देने वाला तथा इसके द्वारा संसार से त्रस्त मनुष्य को शांति देकर उसे निष्काम कर्तव्य के आचरण में लगाने वाला गीता के समान बालबोध ग्रंथ कोई दूजा हो ही नहीं सकता। किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र के मैदान में महाभारत युद्ध के पहले मार्गशीर्ष महीने के एकादशी तिथि, दिन रविवार को 18 अध्याय और 700 श्लोको के रूप में ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग का उपदेश दिया। योग के विविध आयाम ज्ञानयोग जिसे संख्यायोग भी कहा जाता है, में विवेक की प्रधानता होती है, भक्तियोग में श्रद्धा की प्रधानता होती है, और कर्मयोग में निश्चयात्मक बुद्धि की प्रधानता होती है, का विस्तृत वर्णन है, इसलिए इस ग्रंथ को योगशास्त्र भी कहा जाता है। योग स्व में स्थित होने का ज्ञान-विज्ञान है, इसलिए भगवान श्रीकृष्ण को योगेश्वर कहा जाता है। श्रीभगवान के मुखारविंद से गाया हुआ यह गीत उपनिषदों के अंतिम सार होने के कारण इसे "गीतोपनिषद" भी कहा जाता है। श्रीमदभगवद्गीता कोई साधारण किताब या ग्रंथ मात्र नहीं है अपितु यह मानव जीवन को कुपथ से सुपथ का मार्गदर्शन कराने वाली भारतीय संस्कृति की आधारशीला है। वर्तमान परिवेश को देखते हुए मैंने प्रस्तुत शोध-पत्र में फल आशा त्याग कर निष्काम कर्म को अपने व्यावहारिक जीवन में आत्मसात करने के उद्देश्य से श्रीमदभगवद्गीता में वर्णित कर्मयोग का समावेश किया है। अनासक्त कर्मयोग को अपने व्यावहारिक जीवन में उतार कर निश्चित रूप से कर्मबंधन(दु:ख) से छुटकारा पाया जा सकता है।

मूलशब्द – श्रीमदभगवद्गीता, कर्मयोग, व्यवहारिक जीवन में कर्मयोग की भूमिका

प्रस्तावना – धर्म और अधर्म की लड़ाई केवल आज का प्रसंग नहीं है, अपितु यह सनातन परंपरा है। भारत के इतिहास में कई ऐसे युद्ध हुए है जिसमें जीत हमेशा धर्म की ही हुई है। प्रकृती त्रिगुणात्मक है और उसी के अनुरूप प्रत्येक जीव अपने-अपने कर्म में प्रवृत रहते है। जब-जब मन में तमोगुण और रजोगुण की अधिकता हुई है तब-तब निषिद्ध कर्म का जन्म हुआ है और अधर्म की उत्पत्ति हुई है। निषिद्ध कर्म का मूल अज्ञान है। हमें किस प्रकार का कर्म करना चाहिए इस बात का विवेक अगर हो तो किसी भी प्रकार के कर्मबंधन(क्लेश,कलह) की उत्पत्ति नहीं होगी। हम पौराणिक युद्ध महाभारत की ओर दृष्टिपात करे तो पता चलता है कि दुर्योधन के निषिद्ध कर्म, काम्यकर्म के कारण ही समस्त कौरवों का नाश हुआ है। किसी भी कर्म को करने में कुशलता तभी संभव जब कर्मफल में आसक्ति न हो और वह कर्म ईश्वर के प्रति समर्पण भाव से किया गया हो। अर्जुन ईश्वर के भक्त होने के साथ-साथ उनके परम मित्र तथा विवेकी भी थे, इसलिए उन्होने श्री भगवान से पूछा कि मुझे किस प्रकार का कर्म करना चाहिए? श्री भगवान

ने अर्जुन को निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया और अर्जुन ने उसका अनुसरण किया तथा युद्ध में विजयी हुए। आज हम जिस युग में जीवन यापन कर रहे है, उस युग को आधुनिकयुग कहा जाता है। आधुनिकयुग का तात्पर्य संसाधनो का भरपूर उपयोग, नए-नए तकनिकों का निर्माण, आधुनिक जीवन शैली, चारो तरफ भागम-भाग, ऐसा ही परिलक्षित हो रहा है। हर मनुष्य नए-नए संसाधनो का सुख भोगना चाहता है, अनेकों कामनायेँ मन में लिए घूम रहा है। किन्तु कामनाओं की पूर्ति तभी संभव है जब मनुष्य कर्म करे, बिना कर्म किए तो भोजन भी मुख तक नहीं पहुँच सकता। व्यवहारिक जीवन में सुख सुविधाओ की पूर्ति के लिए मनुष्य को कर्म करने की नितांत आवश्यकता है। परंतु किस प्रकार का कर्म करना चाहिए, का ज्ञान नहीं होने के कारण कर्मबंधन में फंस रहते है। वर्तमान परिपेक्ष्य कि ओर दृष्टि कि जाए तो प्रत्येक मनुष्य कर्मबंधन में फसकर दु:ख रूपी परिणाम को भोग रहे है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य कर्मफल की आशा से कार्य करते है, जिसे सकाम कर्मयोग कहा जाता है। वास्तव में मनुष्य को कर्म नहीं बांधता कर्म से जुड़ी आशाए उसे बांधती है। जब तक आशाओ की पूर्ति नहीं होती जीव जन्म-मृत्यु के बंधन में बंधे रहते है। हमें अपने व्यवहारिक जीवन में किस प्रकार के कर्म करना चाहिए, इस बात का ज्ञान आज से 5500 वर्ष पहले भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमदभगवद्गीता के तीसरे अध्याय कर्मयोग में अर्जुन को बता चुके है, इसका अनुसरण करना अर्जुन की भांति हमारे लिए भी अत्यंत आवश्यक है। श्रीमदभगवद्गीता, ज्ञान का विशाल समुद्र है जितना गोता लगाएंगे उतना ही नित-नवीन ज्ञान की मोती प्राप्त करेंगे।

श्रीमदभगवद्गीता का परिचय - श्रीमदभगवद्गीता की महिमा अपार है यह किसी प्रकार के परिचय का मोहताज नहीं है या यूं कहे कि हममें इतना सामर्थ्य नहीं है कि हम इनका परिचय या बखान कर सके। श्रीमदभगवद्गीता भगवान श्रीकृष्ण के मुख से गाया हुआ वह गीत है जो आज भी उतनी ही प्रासंगिक और उपयोगी है जितना पौराणिक काल में था। यह ग्रंथ वैदिक धर्म के भिन्न-भिन्न संप्रदायों में वेद के समान करीब ढाई हजार वर्षो से सर्वमान्य तथा प्रमाणस्वरुप हो गया है, इसका कारण भी उक्त ग्रंथ का महत्व ही है। इसलिए गीता-ध्यान में इस स्मृतिकालीन ग्रंथ का अलंकारयुक्त, परंतु यथार्थ वर्णन इस प्रकार किया गया है-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदन:।
पार्थो वत्स: सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत॥

अर्थात जितने उपनिषद है, वे मानो गौएं है, श्रीकृष्ण स्वयं दूध दुहने वाले ग्वाला है, बुद्धिमान अर्जुन उन गौओ को पंहानेवाला, भोक्ता बछड़ा(वत्स) है और जो दूध दुहा गया, वही मधुर "**गीतामृत**" है। महाकाव्य महाभारत के भीष्म पर्व का हिस्सा श्रीमदभगवद्गीता 18 अध्याय और 700 श्लोको से सुसज्जित है। महाभारत युद्ध के पहले किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को सही दिशा दिखाने के लिए श्री भगवान ने मार्गशीर्ष महीने के एकादशी तिथि, दिन रविवार को कुरुक्षेत्र के मैदान में कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग का उपदेश दिया। श्रीमदभगवद्गीता का इतिहास बहुत ही मार्मिक है। इस ग्रंथ में सब उपनिषदों का सार है, इसलिए इसे "**गीतोपनिषद**" भी कहा जाता है। अर्जुन से पहले गीता का उपदेश भगवान श्रीकृष्ण ने सूर्यदेव विवस्वान को दिया और विवस्वान ने मनुष्यों के पिता मनु को उपदेश दिया और मनु ने इसका उपदेश इक्ष्वाकु को दिया। श्रीभगवानुवाच-

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययं।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेब्रवीत॥4.1॥

महाभारत में (शांतिपर्व ३४८.५१-५२) हमें गीता का इतिहास इस रूप में प्राप्त होता है-

त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान्मनवे ददौ।
मनुश्च लोकभृत्यर्थं सुतायेक्ष्वाक्वे ददौ।
इक्ष्वकुणा च कथितो व्याप्य लोकानवस्थित:॥

त्रेतायुग के आदि में विवस्वान ने परमेश्वर संबंधी इस विज्ञान का उपदेश मनु को दिया और मनुष्यों के जनक मनु ने इसे अपने पुत्र इक्ष्वाकु को दिया। इक्ष्वाकु इस पृथ्वी के शासक थे और उस रघुकुल के पूर्वज थे, जिसमें भगवान श्री राम ने अवतार लिया। इससे प्रमाणित होता है कि मानव समाज में महाराज इक्ष्वाकु के काल से ही भगवद्गीता विद्यमान थी।

कर्मयोग – श्रीमदभगवद्गीता के तीसरे अध्याय में कर्मयोग कि व्याख्या की गयी है। कर्म शब्द 'कृ' धातु में 'अन' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है क्रिया, व्यापार, हलचल, प्रारब्ध, तथा भाग्य आदि। महर्षि जैमिनी के मतानुसार अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म होता है। जिस कर्म में कर्ता की क्रिया का फल समाहित होता है, वही कर्म कहलाता है। दूसरे शब्दो में जिस क्रिया का अनुष्ठान सम्पन्न किया जाता है, वही कर्म है। सभी क्रियायेँ कर्म नहीं कहलाती है, जिसके साथ हमारा भाव और संकल्प, इच्छाएं और भवनाएं जुड़े हुये होते है, वे ही कर्म कहलाते है। श्रीमदभगवद्गीता के अनुसार कर्म के तीन प्रकार होते है – कर्म, अकर्म, विकर्म

कर्म – शास्त्रो में बताए गए कर्मो का अनुसरण कर योग मार्ग में आगे बढ़ना कर्म कहलाता है।

अकर्म- अनासक्त भाव से किए जाने वाले कर्मो को अकर्म कहते है।

विकर्म- गलत भाव से किया गया कर्म विकर्म कहलाता है।

चूंकि श्रीमदभगवद्गीता उपनिषदों का सार है इसलिए इसे गीतोपनिषद कहते है। उपनिषद में कर्म के तीन प्रकार बताए गए है- संचित कर्म, क्रियामाण कर्म, प्रारब्ध कर्म।

संचित कर्म- पूर्व जन्म में किए गए कर्मो का एकसाथ संचित रहना संचित कर्म कहलाता है।

क्रियामाण कर्म- वह कर्म जिसके द्वारा हम अपने जीवन क्रम को चलते रहते है।

प्रारब्ध कर्म – संचित कर्म का परिणाम प्रारब्ध कर्म है, प्रारब्ध यानि पिछले जन्म का संस्कार जो बलवान बन कर सामने आते है।

व्यवहारिक जीवन में कर्मयोग की भूमिका - सृष्टि के सृजन से लेकर अब तक जीतने भी प्राणियों का जन्म हुआ है, का जीवन क्रम कर्मो के माध्यम से चलता आ रहा है। पृथ्वी पर जन्मे कोई भी व्यक्ति क्षण मात्र के लिए भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता उन्हे व्यावहारिक जीवन में कुछ न कुछ कर्म करना ही पड़ता है। यदि कोई शरीर से कुछ भी नहीं करता तो उन्हे अकर्मण्य नहीं कह सकते क्योंकि उनके मन में निरंतर कुछ न कुछ चलते रहता है अत: मन, वचन, कर्म से व्यक्ति निवृत नहीं हो सकता, उन्हें किसी न किसी रूप में कर्म करना ही पड़ता है। श्रीमदभगवद्गीता के तीसरे अध्याय के पांचवे श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण कहते है-

न हि कश्चित क्षणमपि जातु निष्ठत्य कर्म कृत।
कार्यते हावश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुण: ॥3.5॥

कोई भी मनुष्य किसी भी काल में एक क्षण मात्र के लिए भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता। प्रत्येक मानव समुदाय को प्रकृति जनित गुणो के कारण कर्म करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। अर्थात कर्म करना प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक नियम है। जिस क्रिया में हमारा संकल्प और भाव जुड़े होंगे वही 'कर्म' है। मनुष्य का जीवन कर्म प्रधान है। श्रीरामचरित मानस में गोस्वामी तुलसी दास जी कहते है

कर्म प्रधान विश्व रची राखा।
जो जस करही सो तस फल चाखा॥

सम्पूर्ण विश्व प्रकृती के तीन गुणो के कारण कर्म करने के लिए बाध्य होता है। हालांकि उन्हे कौन-सा कर्म करना चाहिए? इस बात का ज्ञान मनुष्य को भी अर्जुन की तरह पता नहीं है। और इसी अनभिज्ञता के कारण मनुष्य प्रत्येक कर्म को आसक्त भाव से, विषयों में लिप्त होकर करता है। किन्तु वह भूल जाता है आसक्ति का परिणाम कर्मबंधन (दु:ख) है। वर्तमान परिवेश में कुछ ऐसा ही दृश्य परिलक्षित हो रहा है। आज के परिदृश्य में प्रत्येक मनुष्य आसक्त भाव से कर्म कर रहा है, समस्त ज्ञानेन्द्रियां और

कर्मेन्द्रियां मोह और विषयों में लिप्त है। हमारा जीवन सेवा के लिए है भोग के लिए नहीं है। अतः इस जीवन को यज्ञमय बना डालना उचित है, पर इतना जान लेने भर से वैसा हो जाना संभव नहीं हो जाता। जानकार आचरण करने पर हम उत्तरोत्तर शुद्ध होते जाएंगे। पर सच्ची सेवा क्या है, यह जानने को इंद्रिय दमन आवश्यक है। जब तक इंद्रियों में संयम और राग-द्वेष से निवृत नहीं होगी कर्मों में आसक्ति बना रहेगा, आज हमारी दशा भी कुछ अर्जुन की तरह है। भगवान ने अर्जुन को निमित्त बनाकर कलयुग के प्रत्येक मनुष्यों के लिए गीता के तीसरे अध्याय के 8वें श्लोक कहते है-

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेर्जुन
कर्मेन्द्रियै: कर्मयोगमसक्त: स विशिष्यते॥3.8॥

मन को अपने वश में करके कर्मेन्द्रियों द्वारा किए जाने वाले कर्म किसी भी प्रकार के कर्म बंधन में नहीं पड़ते। जिस मनुष्य का मन उसके वश में है और इंद्रिय संयमित है उसके द्वारा अच्छा ही कर्म किया जाएगा, वह कर्म बंधन से मुक्त हो जाएगा। इसलिए मनुष्य को प्रत्येक कर्म अनासक्त भाव से, इंद्रियों को विषय भोगो से हटाकर राग द्वेष से रहित होकर करना चाहिए तभी कर्मो में कुशलता आएगी। किन्तु वर्तमान समय में इस प्रकार के कर्म सिर्फ कल्पना मात्र रह गया है क्योंकि आज परमार्थ का भाव मनुष्य में नहीं रह गया सिर्फ स्वार्थ मूलक कर्म ही शेष रह गया है। स्वार्थ भाव से किए गए कर्म को गीता में भगवान ने पापकर्म कहा है, इसलिए प्रत्येक कर्म ईश्वर को समर्पित करते हुए लोकहित में करना चाहिए तब वह कर्म यज्ञ के समान होगा और उसका परिणाम भी सकारात्मक होगा। गीता में श्री कृष्ण अर्जुन के माध्यम से कलयुग के मनुष्य को बता रहे है, परिणाम की चिंता किए बिना प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्तव्य कर्म का निर्वहन अवश्य करना चाहिए क्योंकि मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है उसके परिणाम में नहीं। इसीलिए श्रीमदभगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 47 श्लोक में भगवान कहते है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
माकर्मफल हेतुर्भुर्मा त संगोस्त्वकर्मणि॥2.47॥

अर्थात मनुष्य का अधिकार सिर्फ उसके कर्म करने में है, उसके फलो में कभी नहीं। इसलिए मनुष्य को कर्मो के फल का हेतू नहीं होना चाहिए। मनुष्य को कर्म करने की इच्छा का नहीं बल्कि आसक्ति का त्याग करना चाहिये। परिणाम की इच्छा के बिना तो कोई भी कार्य नहीं जा सकता। इसलिए स्वाभाविक इच्छा अवश्य संभावी और आवश्यक भी है। निषेध उस आसक्ति का है जिसके लोभ से कार्य प्रणाली के गुण-दोषो की ओर से आंखे बंद हो जाती है। कर्मो के परिणाम में आसक्ति रखने पर मन, बुद्धि, इंद्रिय विषयो के अधीन होकर कर्मबंधन में फंस जाते है। राग द्वेष में लिप्त, विषयों के वशीभूत मनुष्य को सकारात्मक परिणाम नहीं मिलने पर उनके मन में उद्विग्नता पैदा हो जाती। क्योंकि कोई भी कर्म कामना के निमित्त किए जाने पर मन में क्रोध, लोभ, मोह का जन्म होता है जो कि मनुष्य के सर्वनाश का कारण है।

प्रकृति जन्य रजोगुण के कारण ही मनुष्य कामना का त्याग नहीं कर पाता और विषयो के दलदल में फँसते जाता है जिसका परिणाम केवल दुख ही होता है इसलिए मनुष्य को कामनाओ का त्याग कर कर्तव्य कर्म करना चाहिए। कर्तव्य कर्म करने के पश्चात परिणाम जो भी हो सफलता-निष्फलता दोनों स्थिति में मनुष्य को समभाव रखना चाहिए। तभी वह योगी पुरुष कहलाएगा।

योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥2.48॥

निष्काम कर्म करते हुए ही मनुष्य अपने जीवन में संतुलन(समभाव) ला सकता है। इसलिए गीता हमें यज्ञ कर्म अर्थात सुकृत कर्म करने को प्रेरित करती है। दुसकृत कर्म अर्थात न करने योग्य कर्म हमें बंधन में बांधती है, जिसका परिणाम केवल दु:ख (कर्मबंधन) ही होता है।

निष्कर्ष – श्रीमदभगवदगीता हमें कर्म करना सिखाती। जीवन में संघर्ष करना सिखाती है, कायरों की तरह कर्मो से भागना नहीं। गीता में भगवान ने अर्जुन को निमित्त बनाकर समस्त सांसारिक मनुष्य को अनासक्तकर्म अर्थात न कर्मो में आसक्ति और न ही विरक्ति, करने के लिए प्रेरित करती है। अपने व्यावहारिक जीवन से कामनाओ का त्याग करके निष्काम कर्म करते हुए जीवन मुक्ति की प्राप्ति करना चाहिए। और यह तभी संभव है जब हम अपने धर्म में रहकर कर्तव्य कर्म का पालन करे। हमें जीवन मुक्ति के लिए निष्काम कर्म अवश्य करना चाहिए पर किसी ज्ञानी व्यक्ति के सानिध्य में रहकर, गीता के ज्ञानकर्मसन्यास योग से हमें यही प्रेरणा मिलती है। मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों प्रकार के कर्म ईश्वर को समर्पित करने से वह कर्म नहीं अपितु यज्ञ बन जाता है, जिसका परिणाम निश्चित रूप से सकारात्मक और पुण्य होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. महर्षि वेदव्यास, 2015, श्रीमदभगवद्गीता महात्म्य .सहित, गीता प्रेस गोरखपुर पृ 8

2.जयदयाल गोयंदका, 55 वां संस्करण, श्रीमदभगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ 95

3.श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ा नन्द , 2022, यथार्थ गीता, जॅक प्रिंटेर्स, पृ 69

4.जयदयाल गोयंदका, 55 वां संस्करण, श्रीमदभगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ 23

5.जयदयाल गोयंदका, 55 वां संस्करण, श्रीमदभगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ 70

6.जयदयाल गोयंदका, 55 वां संस्करण, श्रीमदभगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ 88

7.जयदयाल गोयंदका, 55 वां संस्करण, श्रीमदभगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ 90

★★★

"कृत्रिम बुद्धि बनाम मानवता"

मनोजकुमार शर्मा
सहायक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग
श्री एम. डी. शाह महिला महाविद्यालय,
मालाड, मुंबई
संपर्क : 9769068306/ smanoj475@gmail.com

मनुष्य ने अपनी बौद्धिक क्षमता के बल पर अपना सर्वांगीण विकास किया है। इसी विकास और परिवर्तन के कारण समाज में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांप्रदायिक, तकनीकी आदि विभिन्न प्रकार के तत्वों का जन्म देखा गया है। मनुष्य की इच्छा शक्ति इतनी विशाल और तीव्र है कि वह उसे नये खोज और अन्वेषण के लिए सदैव लालाहित करती है। ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि इसी इच्छाशक्ति की वजह से वह स्वयं को भाग्यविधाता घोषित करने में लग गया है। जिसका जीवंत उदाहरण है ;' रोबोटिक वर्ल्ड' यानी 'रोबोट की दुनिया' और इसी विषय से जुड़ा हुआ विषय है - कृत्रिम बुद्धि।

'आर्टिफ़िशियल इन्टेलिजन्स' यानी कृत्रिम बुद्धि का आरंभ 1950 के दौरान ही चर्चा में आ गया था लेकिन 1981 में जापान में 'फिफ्थ जनरेशन' नामक योजना के तहत इस पर पहल की गयी। Artificial Intelligence के जनक 'जॉन मैकार्थी' के अनुसार यह बुद्धिमान मशीनों एवं विशेष रूप से कंप्यूटर प्रोग्राम को बनाने का विज्ञान है। इसका उद्देश्य ही मनुष्य की बुद्धि की तरह कृत्रिम बुद्धि तैयार करना है। अलबत्ता जिस तरह हमारा मानव मस्तिष्क काम करता है हूबहू ठीक उसकी तरह का कार्य अब Artificial Intelligence द्वारा सम्भव हो सकेगा। यद्यपि आज के समय में Artificial Intelligence विषय बहुत ही जीवंत है। इस कारण हम इस आलेख में उसके कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर वैचारिक प्रकाश डालेंगे।

विश्व प्रसिद्ध सर्च इंजन गूगल जैसी कम्पनी ने भी इसकी महत्ता को समझा है इसलिए उसने चीन में अपना 'अनुसंधान कार्यालय' खोला, जिसमें उद्देश्य Artificial Intelligence की उपयोगिता को बढ़ावा देना और उसकी महत्ता को दुनिया तक पहुँचाना है। Artificial Intelligence का उपयोग व्यवसाय, शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, बैंक, यातायात आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण रूप से देखा जा सकता है। विश्व के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिए हमारे भारत देश ने भी कृत्रिम बुद्धि का लोहा माना है। Artificial Intelligence की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए नीति आयोग के उपाध्यक्ष राजीव कुमार ने अपनी अध्यक्षता में 480 मिलियन डॉलर सहयोग राशि दी। ताकि भारत भी Artificial Intelligence जैसे मुद्दों पर अपना शोध कार्य प्रस्तुत करते हुए। विश्व में अपने अस्तित्व की पहचान कायम करें। कृत्रिम बुद्धि पर हो रहे कार्य को देखकर ऐसा कहा जा रहा है कि 2045तक मशीनें स्वयं ही सीखकर स्वयं कार्य करने में सक्षम हो जाएगी।

मानव जीवन के काल चक्र का निर्धारण या मापन करने का पैमाना अतीत, वर्तमान और भविष्य को माना जाता है। 'कृत्रिम बुद्धि मानवीय मस्तिष्क का हूबहू कॉपी है।' ऐसा कहा जाना गलत नहीं होगा किन्तु वहीं अगर उसके प्रभाव एवं परिणाम की बात करें तो हम पायेंगे कि कृत्रिम बुद्धि के कारण मनुष्यता, मानवीय मूल्य और मानवीय गुणों का पतन होना सुनिश्चित है। इस बात की पुष्टि हम हालही में घटी घटना के आधार पर कर सकते हैं। नवंबर, 2023में प्रसिद्ध भारतीय अभिनेत्री रश्मिका मंदाना की कृत्रिम अश्लील तस्वीर जगभर चर्चा का विषय बनी हुई थी। बहुत खोज-बीन करने के बाद पता चला कि वह अश्लील तस्वीर Artificial Intelligence टूल की सहायता से तैयार किया गया था। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके प्रयोग से निस्संदेह ही मानवीय मूल्य और मानवीय अधिकारों का भकक्षण होगा। आधुनिक परिवेश में वैज्ञानिक, बुद्धिजीवी भले ही Artificial Intelligence की उपयोगिता सिद्ध करने में अपनी पूरी ताकत झोंक दें किन्तु वास्तविकता को झुठलाया नहीं जा सकता।

'Chatgpt' Artificial Intelligence का बहुत ही उपयोगी एवं उपलब्धिसंपन्न टूल है। उदाहरण स्वरूप अगर हम सिर्फ इसी टूल पर विचार कर लें, तो Artificial Intelligence के विषय पर आधिकारिक तौर विचार प्रस्तुत करने में सहायता प्राप्त होगी। हम Chatgpt को देखें तो पाएंगे कि वह एक ऐसा माध्यम है, जहाँ पलक झपकते ही हर तरह के विषय पर एक 'नया कंटेन्ट' तैयार होकर हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। उसके दुष्परिणाम की अगर हम बात करें तो हम देखने की उसकी उपयोगिता मनुष्य के वैचारिक, बौद्धिक एवं स्मरण कौशल को क्षति पहुँचा रही है। इस तरह कहा जा सकता है कि Artificial Intelligence के कारण मानवीय मस्तिष्क के साथ-साथ स्मरण शक्ति भी प्रभावित हुई है।

भारत में यहाँ एक समय 'श्रुति-श्रवण' पद्धति से शिक्षा दी जाती थी। और इसी वजह से भारत को विश्व गुरु का खिताब प्राप्त था। किंतु आज वह भी पाश्चात्य देशों का पिछलग्गू करते हुए AI टूल को सार्थक और महत्त्वपूर्ण समझने लगा है। विचार करने वाली बात यह है कि 'क्या सच में मनुष्यों को AI टूल और रोबोट यंत्र की आवश्यकता हैं?' कृत्रिम बुद्धि और रोबोट की उपयोगिता जाने और समझने के लिए हम सुपरस्टार राजनीकांत की फिल्म 'रोबोट' का उदाहरण ले सकते हैं। वह पूरी फ़िल्म इस मुद्दों को प्रस्तुत करने के लिए कारगर है। उस फिल्म के अंत में रोबोट द्वारा हुए क्षति को प्रकट किया गया है। फ़िल्म में हम देखते हैं कि रोबोट का बौद्धिक संतुलन खराब होने के कारण ही संपूर्ण मानव-जाति अतएव उसके सभी अधिकारी और मूल्य संकट के घेरे में खड़े हो जाते हैं। उसी फिल्म का दूसरा भाग 'रोबोट 0 '2.भी हमें रोबोट द्वारा निर्मित समस्या से अवगत कराता है। फ़िल्म का उद्देश्य यह बताना है कि हमें यानी मनुष्यों को रोबोट की आवश्यकता अनिवार्य रूप से नहीं हैं। जिस देश, समाज, धरातल पर मनुष्य बेरोजगारी जैसी समस्या से जूझ रहा है, उसी समाज में Artificial Intelligence जैसे यंत्र ने उसके दु:ख

को बढ़ाते हुए, आगे में घी जैसा काम किया है। Artificial Intelligence टूल के कारण अनुवाद, लेखक, संवाद लेखक, प्रेस विज्ञप्ति आदि जैसे नौकरीपेशा लोगों की नौकरियां खतरे में महसूस की जाने लगी हैं।

निष्कर्षत: वैज्ञानिकों का मानना है कि Artificial Intelligence टूल और रोबोट जैसे तंत्र मानव रक्षा एवं मानवता की भलाई के लिए है। जिसमें अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए वैज्ञानिक सेना के सिपाही के संरक्षण का हवाला देते हुए नजर आते हैं । लेकिन विचार करनेवाली बात यह भी है कि रोबोट जैसा यंत्र अपना मानसिक संतुलन खो बैठने के कारण दुनिया को अकल्पनीय क्षति पहुँचा सकता है। न्यूकिलर बम आविष्कार से मनुष्य ने जो सीख ली थी ; शायद वह उसे भूल गया। सन् 19339 से 1943 के द्वितीय विश्व युद्ध में न्यूकिलर बम ने अपनी सार्थकता का प्रदर्शन दे दिया था। और जब मनुष्य इस बात की सच्चाई से अवगत हुआ तब उसने उसपर रोक लगा दी। अतः उसे इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि गलत चीजों का आविष्करण कर उस पर रोक लगाने से अच्छा है कि उसका आविष्कार ही न किया जाए। मनुष्य की रक्षा के लिए सर्वश्रेष्ठ मंत्र है ; 'अहिंसा परमो धर्म'। इसके उद्देश्य को भूलकर किये गये सभी अन्वेषण मनुष्यता को नष्ट कर सकते हैं ,ऐसा कहना गलत नहीं होगा। इसलिए 'अहिंसा परमों धर्म ':का मंत्र ध्यान में रख कर ही वैज्ञानिकों , शोधकर्त्ता, बुद्धजीवियों, शिक्षाविदों आदि सभी को खोज करनी चाहिए तभी मनुष्य ,मनुष्यता एवं उसके अधिकार सुरक्षित रह सकें।

☆☆☆

रूसी भविष्यवाद के घोषणापत्र का अनुवाद और टिप्पणी

डॉ. संदीप यादव
अतिथि शिक्षक,
स्लावोनिक और फिन्नो-उग्रियन अध्ययन केंद्र, कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
संपर्क – 8130848333,
sandeepchittorian@gmail.com

डॉ सुदर्शन राजा
सहायक क्षेत्रीय निदेशक,
क्षेत्रीय केंद्र, पोर्ट ब्लेयर, इग्नू, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह।
संपर्क- 9999411839
sudarshanraja@gmail.com

रूसी आधुनिकतावाद में भविष्यवाद एक प्रमुख साहित्य की धारा रही है। हालाँकि इसकी शुरुवात इटली में 1909 ईस्वी में हुई थी जब इटली के साहित्यकार फ़िलिप मैरिनेटी (1876-1944) के द्वारा लिखी गई अभिव्यक्ति भविष्यवाद का साहित्यिक तकनीकी घोषणापत्र प्रकाश में आयी। इटली में भविष्यवाद की शुरुआत विश्व के अन्य स्थानों पर भविष्यवाद का उद्गम बिंदु कहा जा सकता है। भविष्यवादी आंदोलन की यह लहर इटली से यूरोप के विभिन्न देशों ख़ास कर रुस में *avant-grade* के रूप में आयी। भविष्यवाद शब्द की उत्पति इटालियन शब्द *futuro* से हुई, जिसका अर्थ होता है "भविष्य"। फ़िलिप मारीनेटी ने अपने घोषणापत्र में साहित्य के लेखन के लिये क्रांतिकारी बदलाव लाने का पैग़ाम दिया। जैसे की- वाक्यविज्ञान का विनाश, विशेषण और अव्यय का लेखनी में विनाश, कवि को साहित्य रचना में नये शब्द ईजाद करने की आज़ादी इत्यादि। भविष्यवाद का उद्देश्य समाज में हो रहे त्वरित बदलाव को कला के विभिन्न आयाम मुख्यतः पेंटिंग और साहित्य में उसके प्रभाव को दर्शाना था । जैसा की कि यू व रिचकोव कहते हैं भविष्यवादियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से तीव्र परिवर्तन को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया।

19 वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में विज्ञान, स्वास्थ्य, तकनीक इत्यादि में आमूल और त्वरित परिवर्तन हुए, जिसका प्रभाव लोगों के रहन सहन और जीवन पर पड़ा। शहरीकरण प्रगति का प्रतीक बन गया था और शहरीकरण के साथ चौड़ी सड़कें, बड़ी इमारतें, आधुनिक मशीनें, गाड़ी और ट्राम, और चिकित्सा के झेत्र में बदलाव इत्यादि का आगमन हुआ। भविष्यवाद के प्रवर्तक इस विकास की गति से काफ़ी प्रभावित थे और उनका

मानना था कि अन्य साहित्यिक धाराएँ इस नये विकास को समझ नहीं पा रही हैं या इनको नज़रअंदाज़ कर रही हैं।20 वीं शताब्दी की शुरुआत को रूसी साहित्य में कविताओं का रजत युग माना जाता है। इस समय साहित्यिक धाराएँ जैसे की प्रतीकवाद और अक्मेज़्म भी फल फूल रहे थे और इनमें कई उत्कृष्ट रचनाएँ लिखी जा रही थी। इसी के साथ भविष्यवाद भी रूसी कविता साहित्य में अपने पैर जमाने का प्रयास कर रहा था। भविष्यवाद इन साहित्यिक विधाओं और इनके सौंदर्य को पूरी तरह नकारते हुए, साहित्य और समाज के प्रति एक नये सोच को पैदा करने की कोशिश करती है। जहां साहित्य में ख़ास कर कविताएँ प्रकृति, नायक-नायिकाओं की भावनाओं, कवि के अंतर्मन आदि पर केंद्रित होती थी, वहीं दूसरी तरफ़ भविष्यवाद में मशीन, गगनचुंबी इमारतें, विज्ञान और प्रोद्योगिकी में अभूतपूर्व सफलता के सौंदर्य पर ज़ोर दिया जाता है। सिर्फ़ यही नहीं, बल्कि भविष्यवाद का उद्देश्य समाज में व्याप्त किसी भी पारंपरिक व्यवस्था या मानक के ख़िलाफ़ अपना विरोध दर्ज कराना भी था। उदाहरण के लिए- वे रंगे हुए चेहरों के साथ या अजीब कपड़े पहने हुए (व. मायाकोवस्की - प्रसिद्ध पीली जैकेट में) मंच पर या किसी कार्यक्रम में सम्मिलित होते थे।

हालाँकि भविष्यवाद की शुरुवात इटली में हुई, लेकिन रुस में भविष्यवाद के प्रारूप और संरचना में काफ़ी बदलाव आ गया था। रुस में क्यूबो-भविष्यवाद या क्यूबो-फ्यूचरिज्म की उत्पति हुई, जो की क्यूबिस्म और फ्यूचरिज्म के परस्पर सहयोग से बना। मूलतः रुस में भविष्यवाद रूसी प्रतीकवाद के विरोध में आया था। प्रतीकवाद में शब्दों के अर्थों को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया जाता था। प्रतिकवादियों की रचनाओं में शब्दों का अर्थ एक रहस्य और अस्पष्टता का भाव प्रकट करता था। भविष्यवाद के आगमन और विकास को 20वीं शताब्दी के शुरुआत में हो रहे तकनीकी और तीव्र शहरीकरण के सापेक्ष्य में देखा जा सकता है। मायकोवस्की को क्रांति से, आधुनिक और विशालकार निर्मितयों से मशीनरी और वास्तु निर्माणों से बहुत प्यार था। अधिकांश रूसी कवियों के विपरीत उनमें प्रकृति के प्रति कोई संवेदना नहीं थी। उनकी कविताओं में एक विशाल महानगर में विरचित हो रहे बृहदाकार अमूर्त विचार, बृहदाकार प्रत्येक और बृहदाकार आकृतियाँ मिलती हैं।

इसी राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रपेक्ष्य में रूसी भविष्यवाद के विचारक दिमित्री बुरल्यूक, अलेक्सांद्र क्रुचेनिख, व्लादिमीर मायकोवस्की, विक्तर ख्लेबनिकफ के द्वारा घोषणापत्र 'जनरूची पर तमाचा' 1912 ईस्वी में लिखी गई। जिसका हिन्दी अनुवाद नीचे संकलित है।

जनरुचि पर तमाचा

पाठकों के लिए हमारा नवीन और प्रथम विस्मय।

सिर्फ *हम ही*, हमारे समय की *पहचान* हैं। विश्व साहित्य में समय का बिगुल हमारे द्वारा बजाया जा रहा है।

अतीत जटिल है। साहित्य अकादमी और पुश्किन चित्रलेखों से भी कम समझ में आते हैं।

उतार फेंको पुश्किन, दॉस्तोएव्स्की, तलस्तोय और वगेरा-वगेरा को इस आधुनिक युग रूपी जहाज़ से।

जो अपने *प्रथम* प्रेम को नहीं बिसरेगा, वह अंतिम के बोध से वंचित रह जाएगा।

अपने अंतिम प्रेम को बालमोंत के सुवासित व्यभिचार को कौन ही नादान समर्पित करेगा? क्या उसमें नवयुग के ऊर्जावान रूह का प्रतिबिम्ब है?

कौन ही कायर ब्र्यूसोव के कृतियों को निरर्थक करार देने में डरेगा? या क्या उन पर अज्ञात सौंदर्य के सुनहरे किरण की झलक है?

धो लीजिये अपने हाथों को जिन्होंने इन अनगिनत ल्योनीद अंद्रयेवों की लिखी मैली कृतियों को छुआ था।

इन सभी मक्सीम गोर्कियों , कुप्रीनों, ब्लोकों, सोलोगुबों, रेमीजोवों, अविरचिंकों, च्योरनियों, कुज़्मीनों, बूनिनों और वगेरा-वगेरा को सिर्फ नदी के किनारे दाचा चाहिए। ऐसा पुरस्कार नियति सिर्फ दर्ज़ियों को देती है।

इन गगनचुम्बी इमारतों की उंचाई से हम देख रहे हैं इनकी तुच्छता !

हमारा *आदेश*, कवियों के अधिकारों का सम्मान करना है।

(1) मनचाहे और व्युत्पृत शब्दों (शब्द- नवाचार) से शब्दकोष के पैमाने में वृद्धि करना।

(2) उनसे पहले तक की प्रचलित भाषा के प्रति प्रबल घृणा होना।

(3) आपके द्वारा स्नानघर की झाड़ू से बनाये गए छुद्र गौरव रूपी मुकुट को अपने गौरवान्वित शरीर से झुंझला कर फेकना।

(4) चीख और आक्रोश से भरे समुन्द्र के बीच में 'हम' रूपी शब्द के लट्टे पर खड़ा होना।

और अगर फिर भी आपकी सुन्दर सोच और उच्च विचार के मैले धब्बे हमारी पंक्तियों में रह गए हो, तो उनपर नवनिर्मित भविष्य के अनमोल शब्दों की खूबसूरती की सुनहरी चमक सबसे पहले पड़ेगी।

द. बुरल्यूक, अलेक्सांद्र क्रुचोनिख, व. मायकोवस्की, विक्तर ख्लेबनिकोव। मोस्को, 1912 दिसंबर।

स्वतंत्रता के 76 साल और 'रंगभूमि' का सूरदास

-श्रद्धा सिंह
शोध छात्रा , हिन्दी विभाग, प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय,
86/1 कॉलेज स्ट्रीट, कोलकाता-700073
मो. : 8130732179

भारत को स्वतंत्र हुए आज 76 साल हो गए और इस मौके को जगह-जगह पर बड़ी धूम-धाम से मनाया भी गया। लेकिन सोचने वाली बात यह है कि आजादी के इतने वर्षों के बाद भी किसानों की स्थिति में कितने सुखद परिवर्तन आए ? 1951 में सकल घरेलू उत्पादन में कृषि क्षेत्र का कुल योगदान 55.4 प्रतिशत था जो कि 2021 में 16.8 प्रतिशत हो गया। लेकिन विचारणीय बात यह है कि अभी कृषि पर 49 प्रतिशत आबादी निर्भर है। यानि 49 प्रतिशत आबादी 16.8 प्रतिशत आय पर ही निर्भर है। सरकार की ओर से पंचवर्षीय योजनाएँ, भूमि अधिग्रहण बिल, नयी आर्थिक नीति आदि कई योजनाएँ वर्षों से चलती आ रही है पर किसान कल जहां था आज उससे बदत्तर स्थिति में हैं। आवास, औद्योगिकरण और कई परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण की मांग बढ़ती जा रही है। देश की उन्नति के नाम पर किसानों का खेत कारखानों के लिए हड़पकर उन्हें अपने ही घर व खेती से निकालने की योजनाएँ बनाई जा रही है। एक प्रश्न मन में उठता है कि क्या यही था प्रेमचंद के सपनों का भारत ? क्या हम आज विस्थापित किसानों को 'रंगभूमि' के सूरदास के वंशज के रूप में नहीं देख रहे है ?

अंधा भिखारी सूरदास अपने और अपने गांव की जमीन के लिए अंत तक लड़ता है। लेकिन जॉनसेवक अपनी कुटिल नीति से राजा महेंद्र सिंह , कुँवर भरत सिंह, अंग्रेज जिलाधीश मिस्टर क्लार्क आदि के साथ मिलकर सभी मुहल्ले वालों को जैसे- नायकराम, जगधर, ठाकुरदीन, बजरंगी, भैरो आदि को बेहतरीन का स्वप्न दिखाकर अपने पक्ष में करके सूरदास को अकेला कर देता है तथा इस तरह उसकी जमीन हड़प ली जाती है। जिस प्रावधान से सूरदास की जमीन हथिया ली गई, ठीक उसी प्रावधान से पांडेपुर की बस्ती को जब्त करने की सहमति ले ली गई। उपन्यास से उदाहरण द्रष्टव्य है –"एक दिन प्रातः काल राजा महेंद्र कुमार, मि० जॉनसेवक , जायदाद के तखमीने का अफसर, पुलिस के कुछ सिपाही और एक दरोगा पांडेपुर आ पहुँचे। राजा साहब ने निवासियों को जमा करके समझाया – सरकार को एक खास सरकारी काम के लिये इस मुहल्ले की जरूरत है। उसने फैसला किया है कि तुम लोगों को उचित दाम देकर यह जमीन ले ली जाए, लाट साहब का हुक्म आ गया है...आप सब मकानों की कीमत का तखमीना करेंगे और उसी के मुताबिक तुम्हें मुआवजा मिल जाएगा।...तुम्हें जो कुछ अर्ज-मारूज करना हो, आप ही से करना। आज से तीन महीने के अंदर तुम्हें अपने-अपने मकान खाली कर देने पड़ेंगे, मुआवजा पीछे मिलता रहेगा। जो आदमी इतने दिन के अंदर खाली नहीं करेगा, उसके मुआवजे के रुपये जब्त कर लिये जायेंगे और वह जबरदस्ती घर से निकाल दिया जाएगा । अगर कोई रोक-टोक करेगा, तो पुलिस उसका चालान करेगी, उसको सजा हो जाएगी।"

आज भी बहुत से किसान अपनी जमीन बेचने के लिए तैयार नहीं है लेकिन सरकार और कॉरपोरेट घरानों द्वारा झूठे आश्वासन देकर उनकी जमीन हथिया ली जा रही है बिलकुल वैसे ही जैसे सूरदास की जमीन जॉनसेवक द्वारा हड़प ली जाती है वो भी औद्योगिक विकास के नाम पर। लेकिन प्रेमचंद उद्योगीकरण को कृषि और साधारण जनता के हितों से जोड़ने के पक्ष में थे। उन्हें पता था कि जॉनसेवक की औद्योगिक क्रांति से केवल किसानों को नुकसान होगा। यहाँ मैनेजर पांडेय का विचार सार्थक प्रतीत होता है उनका कहना है कि "पूंजीवाद अपने आरम्भिक दौर से ही कृषि और किसानों का दुश्मन रहा है। वह किसानों को भाग्यवादी, काहिल, अज्ञानी, आरामपसंद और आत्मतुष्ट मानता है। वह किसानों की इन बुराइयों को दूर करने के लिए किसानों को मिटाना जरूरी समझता है । वह अपने विकास के लिए किसानों का विनाश करता है । इंग्लैंड में जब पूंजीवाद आया तब उसने एक लम्बी और खूँखार प्रक्रिया से किसानों को जमीन से बेदखल किया। आज भारत में जो पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया चल रही है वह दुनिया भर के पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी देशों के आग्रहों और दबावों के कारण लगभग उन्माद की मनोदशा में आगे बढ़ रही है, इसलिए भारत के किसानों के लिए विनाशकारी साबित हो रही है।"

प्रेमचंद नहीं चाहते थे कि खेती उजड़े और किसान केवल अमीरों की जरूरतें पूरी करने के लिए काम करें। वे ऐसे उद्योगों के विरोधी थे जो अन्न का उत्पादन रोककर तम्बाकू जैसी नशीली चीजों का उत्पादन करते हैं। तंबाकू जैसे मादक पदार्थ के उत्पादन से देश का

क्या भला होगा ? उल्टे यह स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक है । साथ ही इससे खाद्य पदार्थ महँगा हो जाएगा क्योंकि किसान अनाज के बदले इस नशीले पदार्थ का उत्पादन करने लगेंगे । जॉनसेवक बुरी आधुनिकता का वाहक था । आज जॉनसेवक की अगली पीढ़ी के रूप में टाटा, बिरला,अम्बानी जिंदल, मित्तल आदि को देखा जा सकता है। हर क्षेत्र में निजीकरण की प्रवृति बढ़ाने की कोशिश की जा रही है । ग्रामीण लोगों द्वारा नगदी फसल का उत्पादन करवाया जा रहा है जबकि उन्हें जरूरत की चीजें स्वयं खरीदनी पड़ रही है । अब जो लोग पहले घर के ताजा चावल का भात और गेहूं, महुवें की रोटी खाते थे, वे पालिश किए हुए चावल तथा तीन-चार श्रेणियों में विभक्त आटा खा रहे हैं । इस संदर्भ में किशन पटनायक का कहना है कि "खाद्य आपूर्ति एवं खाद्य स्वावलम्बन के श्रोत के बजाय अब खेती को तेजी से पूँजीवादी बाजार तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मुनाफे की न मिटने वाली भूख कि रणनीति का एक पुरजा बनाया जा रहा है । भारत जैसे तमाम देशों को यह सिखाया जा रहा है कि उन्हें अपने जरूरत का अनाज दालें व खाद्य तेल पैदा करने की जरूरत नहीं है ; दुनिया में जहाँ सस्ता मिलता है वहाँ से ले लें।"

ऐसा नहीं है कि हमें दुनिया से अलग रहना है कला, साहित्य, संस्कृति, ज्ञान, चिकित्सा तथा सुरक्षा के क्षेत्र में दुनिया में जो कुछ भी आधुनिकतम है, वह प्रत्येक देश को किसी भी क़ीमत पर प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। यदि किसी असाध्य बीमारी का कोई नया उपचार अमेरिका के पास है तो महँगा होने पर भी उसे खरीदना चाहिए । लेकिन उपभोग के मामले में सत्तर प्रतिशत आबादी का पिछड़ी से पिछड़ी स्थितियों में मरने के लिए छोड़कर तीस प्रतिशत आबादी की खुशहाली के बारे में सोचकर विश्ववादी होना कहीं से उचित नहीं है । प्रेमचंद इस बात को भलीभाँति जानते थे इसलिए भारतीय जनता को आगाह किया कि यदि सचेत नहीं हुए तो भविष्य में आर्थिक तंगी के पाट में किसान पिस कर एक दिन खत्म हो जाएगा और बचेगा तो केवल उपभोक्ता वर्ग ।

प्रेमचंद जानते थे कि अंग्रेजों के चले जाने से औद्योगीकरण की समस्या स्वयं समाप्त हो जाएगी, ऐसा नहीं है बल्कि औद्योगीकरण की समस्या भविष्य में भी बनी रहेगी , जिसका संकेत उपन्यास में बार – बार किया गया है –"देश में गली -गली, दुकान-दुकान इस कारख़ाने के सिगार और सिगरेट की रेल-पेल है। वह अब पटने में एक तंबाकू की मिल खोलने का आयोजन कर रहे हैं, क्योंकि बिहार-प्रांत में तंबाकू कसरत से पैदा होती है।"

वर्तमान में देखा जा सकता है कि देश की उन्नति के नाम पर किसानों को, मजदूरों को, आदिवासियो को बेघर कर , उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा जा रहा है, उनकी खेती कारखानों के लिए हथिया ली जा रही है तथा उन्हें नारकीय जीवन जीने के लिए छोड़ दिया जा रहा है। यह हमारे देश की किस प्रकार की प्रगति है ? यह विचारणीय प्रश्न है । कहा जा सकता है कि भारतीय लोकतंत्र एक मजाक बन गया है। जय श्री शिंदे "भारतीय समाज व्यवस्था की जड़ गाँव है लेकिन वहाँ भी धनाढ्य उच्चवर्गीय निम्नजाति में जन्मे लोगों का आसानी से शोषण करते हैं, पूरी समाज व्यवस्था सामंत, जमींदार और प्रजातंत्र का बुना हुआ साम्राज्य है । जब चाहे, जैसा चाहे लोग भूमिहीन, आदिवासियों, सपेरों, गरीबों की जिंदगी को रौंदते चले जाते हैं। भारतीय समाज में अभी भी सामन्तवादी प्रवृति का अस्तित्व मौजूद है , इस प्रवृति वाले अपने फायदे के लिए योजनाएँ भी बनाते हैं और लाभ भी उठाते हैं।" हमारे देश का यह समकालीन यथार्थ नेताओं, मंत्रियों, सेठों, पूँजीपतियों, अफसरों, आदि के मिलीभगत का ही परिणाम है जिसके चलते आमजनता पीड़ादायी जीवन व्यतीत कर रही हैं । ऐसा कहना उचित होगा कि 'आधा पेट अन्न खाने वाले कृषकों की भूख पर ही पूँजीपति, नेता आदि अपना आलीशान महल खड़ा करते है।'

सरकार एवं कॉरपोरेट घरानों द्वारा नित नयी-नयी परियोजनाओं तथा बांध बनाने की वजह से किसानों को अपनी जमीन से विस्थापित होने का दंश भोगना पड़ रहा है। इसलिये भूमि सुधार आज पहले से और अधिक प्रासंगिक हो गया है । कृषि के तबाही के बावजूद जमीन की क़ीमत बढ़ती जा रही है। निर्माण, उद्योग अथाह कमाई का जरिया बनता जा रहा है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एन.एन.एस.ओ.) के आँकड़े (2003-2004) के अनुसार लगभग 41.63 % परिवारों के पास वास के अलावा और कोई भूमि नहीं है । अगले 20 % परिवारों के पास एक हेक्टेयर से कम भूमि है। दूसरे शब्दों में देश की 60 % आबादी का देश की भूमि के केवल 5 % पर अधिकार है जबकि 10 % जनसंख्या का 55 % ज़मीन पर नियंत्रण है । पी. साई नाथ अपनी डॉक्यूमेंटरी 'नीरोज गेस्ट' में किसान और किसानी पर बात करते हुए मुख्य तीन बिंदुओं पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं -" .1कृषि संकट क्या है ? - कारपोरेट खेती की तरफ झुकाव | . 2 कृषि संकट कैसे कार्यान्वित होता है? - गाँव का

व्यावसायीकरण करने से | . 3 कृषि संकट से क्या मिलता है ? – भारतीय इतिहास को सबसे बड़ा विस्थापन | "

भारतीय किसानों के लिए खेती शुरू से ही केवल व्यवसाय नहीं, बल्कि जीने का तरीक़ा भी रही है। खेती उनकी जीविका का प्रमुख साधन होने के बावजूद उनके लिए उद्योग नहीं हैं। उद्योग की प्रेरणा और उद्देश्य केवल पैसा कमाना है। भारतीय किसानों में इस औद्योगिक दृष्टि का अभाव है । इसलिए सूरदास का संघर्ष केवल जमीन बचाने तक सीमित न था बल्कि पर्यावरण और सांस्कृतिक विरासत को बचाने के लिए भी था ।

जो भारत सांस्कृतिक मूल्यों का देश रहा है, आज मुनाफ़ाखोर व्यवस्था में सारे मूल्य खंडित हो चुके है। अन्नदाता रहे किसानों को परजीवियों ने लगातार लूटा है। स्वतंत्र भारत से पूर्व इनका शोषण गोरे करते थे अब आज़ाद भारत में काले कर रहे हैं। काले कितने खूँखार है इसको मैनेजर पांडेय ने इन शब्दों में व्यक्त किया है –"अंग्रेजी राज के जमाने की महाजनी सभ्यता से आज की महाजनी सभ्यता अधिक चालाक और अधिक खूँखार है। इसलिए आज की महाजनी सभ्यता के शिकंजे में फँसे जितने किसानों ने आत्महत्या की हैं, उतने किसानों ने अंग्रेजी राज के समय भी आत्महत्या नहीं की थी।"

हमारे देश की जो कृषि नीति है उस पर एक नजर डाला जाए तो लगाता है कि किसानों को केंद्र में रखकर उसकी भलाई बुराई को समझते हुए बनाया गया है कृषि नीति के शुरुआती पैराग्राफ में अंकित है कि 'कृषि ऐसी जीवन पद्धति और परंपरा है जिसने भारत के लोगों के विचार, दृष्टिकोण ,संस्कृति तथा आर्थिक जीवन को सदियों से सवारा है इसलिए कृषि देश के नियोजित सामाजिक आर्थिक विकास की सभी कार्यनीतियों का मूल हैं' लेकिन सच्चाई इसके विपरीत है हमारी कृषि-नीति, किसानों के बजाय बड़े घरानों या अमेरिकी कंपनियों के हितों का पोषण करती है, उद्योगपतियों की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखती है लेकिन किसानों के लिए सुख-सुविधा तो दूर की बात है अगर प्राकृतिक आपदा में फसल मारी भी जाए तो भी कोई रियायत नहीं है। किशन पटनायक का कहना है -"जब कारखानेदार हल्ला करता है कि वह कष्ट में हैं, घाटा हो रहा है तो सरकार दौड़ कर उसकी मदद करने जाती है । कारखानेदार और उद्योगपतियों के यहाँ करोड़ों रुपये टैक्स बकाया है, लेकिन उन पर कोई कार्यवाई नहीं होती । इस तरह टैक्स के मामले में, कर्ज के मामले में और अन्य मामलों में सरकार उनकी बड़ी मददगार है । यही नहीं किसी औद्योगिक इलाके में सड़क, डाकघर, स्कूल आदि नहीं है तो सरकार तुरंत इन सबका इंतजाम करती है । खेती के बारे में सरकार की नीति उल्टी है। सूखा या बाढ़ से फसल मारी जाए तो किसानों को कोई रियायत नहीं मिलती, टैक्स में छूट नहीं मिलती, कर्ज में माफी नहीं मिलती।''

वर्तमान में गोरे अंग्रेजों की जगह अब काले अंग्रेज राज कर रहे है जबकि प्रेमचंद ने कहा था कि 'कम से कम मेरे लिए तो स्वराज का यह अर्थ नहीं है कि 'जान' की जगह 'गोविंद' बैठ जाए ।' आज गोरों की तरह बैंकों के माध्यम से लुटेरे हमारे देश को लूटकर विदेश में जाकर मौज-मस्ती कर रहे हैं । यही नहीं देश के दरवाजे आज पहले की तरह ही विदेशी और विदेशी कम्पनियों के लिए खुले हुए है । इक्कीसवीं सदी में प्रेमचंद द्वारा उपस्थित चुनौतियाँ अपना भेष बदलकर और अधिक चुनौतियों के साथ हमसे मुख़ातिब हो रही है। यहाँ मैं अली सरदार जाफरी की एक पंक्ति कोट करना चाहूँगी –

कौन आजाद हुआ ?
किस के माथे से गुलामी की सियाही छूटी ?
मेरे सीने में अभी दर्द है महकूमी का
मदर-ए - हिंद के चेहरे पे उदासी है वही
कौन आजाद हुआ ?

रंगभूमि (1925) के सूरदास के माध्यम से प्रेमचंद एक तरफ ब्रिटिश सरकार, सामंत और पूँजीपतियों के वापसी सम्बन्ध को उजागर करते है तो दूसरी तरफ इनके द्वारा साधारण जनता के साथ किए जा रहे अन्याय के विरुद्ध उसके संघर्ष को उद्घाटित करते है। उसका संघर्ष आम जनता को हताशा और निराशा से उबारता है । आज किसान अन्याय का विरोध कर अपनी मांग को लेकर आंदोलन कर रहे हैं तो रंगभूमि के ब्राउन की तरह किसानों पर गोलियाँ बरसाई जा रही है, गाड़ी से रौंदा जा रहा है । किसानों को दिल्ली बार्डर की ओर बढ़ने से रोकने के लिए पुलिस द्वारा वॉटर कैनन और आंसू गैस छोड़े जा रहे है।

1922 में चौरीचौरा घटना के बाद जब गांधीजी ने सत्याग्रह वापस ले लिया तब चारो तरफ हताशा की स्थिति बनी हुई थी। ऐसी स्थिति में सूरदास ने जनता में पुनः आशा का संचार किया । तत्कालीन समय में कारावास में बंद स्वतंत्रता सेनानी बड़े लगन से रंगभूमि पढ़ा करते थे। यदि व्यक्ति में संघर्ष क्षमता है तो हारकर

भी वह अपने लक्ष्य से विमुख नहीं हो सकता । इसीलिए इस संघर्ष में सूरदास पराजित होकर भी जीतता है –"हम हारे, तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोये तो नहीं, धांधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, जरा दम तो ले लेने दो। हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी, जरूर होगी।" और कही न कही सूरदास की यह भविष्यवाणी आज सच साबित हो रही है । वर्तमान किसानों पर गोलियाँ बरसाई गई, आंसू गैस छोड़े गए लेकिन ये पीछे नहीं हटे और अपनी माँगों पर अडिग रहे । अंततः किसान अपनी बात मनवा के रहे तथा सरकार को पीछे हटना पड़ा ।

प्रेमचंद सूरदास के माध्यम से यह भी इंगित किया है कि मनुष्य का कितना भी समूल नष्ट हो गया हो, उसके बाद भी उसमें पुनःनिर्माण की शक्ति बनी रहती है । भैरो द्वारा सूरदास की झोपड़ी जला दी जाती है जिससे वह शुरू में हताश तो होता है लेकिन पुनः अपनी शक्ति को एकजुट कर संभल जाता है । सूरदास का आत्मविश्वास मिठुआ से उसकी बातचीत में स्पष्ट झलकता है –

"मिठुआ ने पूछा – दादा, अब हम रहेंगे कहाँ ?

सूरदास – दूसरा घर बनाएंगे ।

मिठुआ – और जो कोई फिर आग लगा दे ?

सूरदास – तो फिर बनाएंगे।

मिठुआ – और फिर आग लगा दे ?

सूरदास – तो हम भी फिर बनाएंगे ।

मिठुआ – और जो कोई हजार बार आग लगा दे ?

सूरदास – तो हम हजार बार बनाएंगे ।

बालकों को संख्याओं से विशेष रुचि होती है। मिठुआ ने फिर पूछा-और जो कोई सौ लाख बार लगा दे?

सूरदास ने उसी बालोचित सरलता से उत्तर दिया – तो हम भी सौ लाख बार बनाएंगे।"

इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का कहना है कि "मिठुआ बच्चों की तरह सवाल करता है और सूरदास बच्चों की ही तरह जवाब देता है ; उसके जवाब में चरित्र की दृढ़ता छिपी है। सूरदास हिंदुस्तान के उन किसानों में है जिनमें रचने की, निर्माण करने की तीव्र आकांक्षा है । उनकी बनाई हुई चीजों को लाख बार बर्बाद कर दो, नये निर्माण के लिए वे फिर कमर कसकर तैयार हो जाते हैं।"

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि स्वतंत्रता के 76 साल बाद भी सूरदास का संघर्ष आज भी जारी है । भारत में कृषि की कीमत पर औद्योगिक विकास को तरजीह दिया जा रहा है। लेकिन अब देश के नीति निर्मताओं को यह समझना होगा कि औद्योगीकरण से देश का पेट नहीं भरने वाला। प्रेमचंद आधुनिक विकास के दुश्मन नहीं थे, मगर वे ऐसा औद्योगिक विकास भी नहीं चाहते थे, जिससे किसानों के जीवन का अधिकार ही छिन जाएँ क्योंकि हम चाहे कितनी भी तरक्की कर लें परंतु किसानों की तरक्की किए वगैर सही मायने में देश खुशहाल नहीं हो सकता। खेती जो किसी भी देश के जिंदा रहने की बुनियाद होती है, जब बुनियाद ही नहीं बचेगी तो ढाँचा बिखर जाएगा।

संदर्भ सूची

1 प्रेमचंद, रंगभूमि (भाग : दो), भारतीय भाषा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 1996, पृष्ठ संख्या -161–162

2. पांडेय, मैनेजर, 'भारत में किसान की आत्महत्याएँ', संपादक-हरिनारायण, 'कथादेश' सहयात्रा प्रकाशन, दिल्ली, अंक : 3, मई -2012, पृष्ठ संख्या -35

3.पटनायक, किशन, 'किसान आंदोलन दशा और दिशा', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या -6, भूमिका से उद्धृत

4.प्रेमचंद, रंगभूमि (भाग : दो), भारतीय भाषा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 1996, पृष्ठ संख्या-226

5.शिंदे, डॉ जयश्री, 'टीस आदिवासी सपेरों का चिरता सच', संपादक-काशिद , डॉ गिरीश, शिंदे, डॉ जयश्री, 'संजीव जनधर्मी कथाशिल्पी',डिस्ट्रीब्यूशन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण : 2011, पृष्ठ संख्या-77

6.पी.साईनाथ, नीरोज गेस्ट, ऑनलाइन ऑडियो, समय- 25:48

7.पांडेय, मैनेजर, 'भारत में किसान की आत्महत्याएँ', संपादक-हरिनारायण, 'कथादेश' सहयात्रा प्रकाशन, दिल्ली, अंक : 3, मई -2012, पृष्ठ संख्या -34

8.पटनायक, किशन, 'किसान आंदोलन दशा और दिशा',

कप चाय और तुम: संवेदना और शिल्प

डॉ. राजकुमारी
एसिटेंट प्रोफ़ेसर

हिंदी साहित्य में कथा कहने सुनने की परंपरा काफ़ी पुरानी रही है। सर्वप्रथम यह प्रचलन हमें संस्कृत भाषा के साहित्य में देखने को मिलता है किंतु हिंदी में इसका आगाज़ 19वीं शताब्दी की देन रही है। बहुत से विद्वानों ने लिखित रूप में 1903 में प्रकाशित कहानी रानी केतकी की कहानी को पहली कहानी का दर्ज़ा दिया है, कुछ विद्वान 1903 में ही प्रकाशित कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय ' को हिंदी की मौलिक कहानी स्वीकारते हैं। कहानी कहते किसे हैं? इसका स्वरूप कैसे होता है, इस संदर्भ में डॉ. धीरेंद्र वर्मा का कथन उल्लेखनीय है - "कहानी गद्य साहित्य का एक छोटा, अत्यंत सुसंघटित और अपने में पूर्ण कथा रूप है।"1

समकालीन समय में बहुत से कहानीकार अपनी अपनी क्षमताओं के अनुकूल कहानियां रच रहे हैं उन्हीं में से एक युवा कथाकार सुनील पंवार हैं, जिनका कहानी संग्रह ' है ' एक कप चाय और तुम' जो वर्ष 2020 में बहुचर्चित रहा और आज भी पाठकों में अपनी स्थान बनाए है। राजस्थान का हनुमानगढ़ जिला जिसकी खासियत ये कि यहां प्राचीन सरस्वती नाम से प्रचलित नदी वर्तमान समय में घाघर नाम से प्रवाहित हो रही है।पश्चिम में कालीबंगा सभ्यता का विकास एवम् राजस्थान हरियाणा पंजाब की सीमा से सटा क्षेत्र है। राजस्थान की सबसे बडी नहर परियोजना इंदिरा गाँधी नहर परियोजना,भाखड़ा नहर भी इसी मरुभूमि पर स्थित है। जिला हनुमानगढ़ के अंचल रावतसर में 14 अगस्त 1986 में कथाकार सुनील पंवार जी का जन्म हुआ। निजी जीवन में आर्थिक, सामाजिक विषम परिस्थितियों में जीवनयापन करते हुए अपनी साहित्यिक रुचि को कभी कम नहीं होने दिया,उसी के परिणामस्वरूप उनकी गद्य विधा के रूप में 'एक कप चाय और तुम" उनका प्रथम कथा - संग्रह पाठकों के समक्ष है। वो लेखन के क्षेत्र में पत्र-पत्रिकाओं में समकालीन गम्भीर विषयों पर लेखन कर एवम् अपनी लघु आकार कथाओं के रोचक संवादों के प्रभावशाली लेखन से साहित्य क्षेत्र में शनै:- शनै: अपनी पहचान बना रहें हैं।कोविड 19 के इस दौर में जहां, मानसिक तनाव,बेरोज़गारी,भूखमरी, नीरसता जैसी समस्याओं से मनुष्य जूझ रहा था उन्होंने लेखन के क्षेत्र में लेखन, पाठन के प्रति आकर्षण पैदा किया।अपनी विवेकी क्षमताओं के बल पर समकालीन मुद्दों पर तथ्यपरक विश्लेषण से लोकप्रियता हासिल करते गए।लेखकीय विवेचन,विश्लेषण,विषयोंन्मुखता व्यक्तित्व का निर्माण करती है। वास्तविक घटनाओं,स्मृति आधारित दृश्यों को बड़ी आत्मीयता के साथ कथा रूप में का प्रणयन किया गया।1 रचनाकार का तटस्थता से पर्यवेक्षण, दुर्बलताओं की स्वीकृति निजी विशिष्टताएं बताती हैं। आंचलिक परिवेश में लिखी कथाएं भावोद्रेक लिए हैं, जीवन के आरम्भिक दौर से उनका सामना विकट,विषम परिस्थितियों से जीवन के कटु अनुभवों रहा। इसी अकुलाहट,सामाजिक,आर्थिक,राजनैतिक,अनसुलझे प्रश्नों का प्रतिरूप उनकी कहानियों में विद्यमान है।

कथा संग्रह की प्रथम कहानी "आख़िरी कॉल"की कथावस्तु फ्लैश बैक शैली में चलती है।रोचकता,रोमांच विवरणात्मकता, कथानक का सघन संगठन कहानी की विशिष्टता है।मुख्य पात्र सन्नी काल्पनिक आवाज़, एकाकीपन,कथा के काल्पनिक धरातल में नायिका को साकार रूप देते हुए एक ही कमरे के वर्तुल घेरे से संदर्भित घटनाओं में दम तोड़ देता है।कहानी इतनी रहस्यमयता,गूढता के आवरण में लिपटी है कि अंत तक पाठक के समक्ष भेद नहीं खुल पाता कि प्रस्तुत घटनाक्रम का काल्पनिक रूप में चित्राकंन हो रहा है।समुचित दृश्य, वातावरण सजीव,यथार्थ चित्र प्रत्यांकित किया गया है। कथा का केन्द्र बिंदु या उसकी रीढ़ प्रमुख रूप इस वाक्य पर आधारित हैं-"आधी रात गुजर चुकी थी और वो फोन के पास बैठा इंतजार कर रहा था,उस कॉल जो हर शाम आता था,पर आज इतनी देर कैसे हो गई? सब ठीक तो है? हज़ारों सवालों ने उसे घेर लिया था। न जाने कितनी ही बार वो अपना फोन चैक कर चुका था कि कहीं फोन तो खराब नहीं हो गया।ज्यों- ज्यों वक़्त बीत रहा था उसका सब्र भी टूटता जा रहा था।रात भर जागने से उसकी आंखें लाल हो चुकी, सिर चकराने लगा था और आंखों से अनवरत आंसू बहने लगे थे। उसने डायरी को अपनी ओर खिसकाया और आखिरी कहानी पढ़ने लगा। उसे लग रहा था जैसे वाणी उसके सामने बैठी है वो अपनी कल्पना शक्ति से उसकी मानवीय छवि बुन चुका था। वो पढ़ता गया और सिर्फ पढ़ता गया। उसकी आंखें बंद होने लगी थी सब कुछ धुंधला नजर आने लगा था,फिर भी उसने अपने आप को रुकने

नहीं दिया। वो नहीं चाहता था उसकी आख़िरी कहानी पन्नों में दब कर रह जाये, उसे अपना वादा पूरा करना था जिसके लिए वह पढ़ता रहा। आख़िरकार वह कहानी की अंतिम पंक्ति में पहुंच ही गया। उसने अपना चेहरा उठा वाणी की तरफ देखा और फिर अंतिम पंक्ति को पढ़ने लगा,

"हो सके तो कभी मिलने आना वाणी! फ़िलहाल के लिए अलविदा!"वो मुस्कुराया और कुर्सी से गिर पड़ा।" 1

कहानी यहां अपने उद्देश्य तक पहुंचने के पश्चात चर्मोत्कर्ष तक पहुंचती है।नायिका वाणी नायक सन्नी की परिकल्पना होने के बावजूद उसे अद्भुत आकर्षण दिया गया।प्रत्यक्ष रूप में पाने का जुनून नायक,अकेलेपन में कथाओं के प्रति अदम्य लगाव को दर्शाता है।'भीगी मुस्कान' प्रेम सम्बन्धों में स्त्री की पुरुष से अधिक उम्र की अवधारणा को खंडित करती, विधवा स्त्री के शुष्क जीवन तट,स्त्री जिंदगी की विडम्बनाओं,प्रेम में उम्र की पाबन्दियों को अस्वीकृति, स्त्री जीवन में चरित्रहीनता के टेग से भयभीत स्त्री के अंतर्मन के द्वंद्व को दर्शाया है 'एक नदी का फासला' कथा की मूल संवेदना चित्रकार के रंगीन चित्रों में जीवन प्रकृति को आलंबन,उद्दीपन रूप दे,जलप्लावित क्षेत्र की त्रासदी,जानमाल की हानि, भूखमरी,अभाव एवम् लघु रूप में प्रेम प्रसंग, नायिका के नायक के मध्य नदी,पहाड़ के उस पार जा चुके नायक के लंबे इंतजार,नदी की प्रेम बाध्यता, चित्रकार का पुल केनवस पर पुल बना नायिका को आशान्वित करना।

"नदी के दोनों पाटों को एक ही पुल से मिलाना सिर्फ़ मेरी कल्पना थी, जो शायद मैंने एक नदी के फासले को पाटने के लिए की थी। मैं तो एक कलाकार हूं इससे ज्यादा कुछ कर भी नहीं सकता था। मेरी इस कल्पना ने उसके मन की बंजर ज़मीन में अधूरी ख्वाहिशों की उम्मीदों की कोंपले अंकुरित कर दी थी।"2

सम्पूर्ण कथा नदी किनारे एक ही स्थल पर घटती है।कथा कलेवर लघुता लिए है,कुछ अधूरेपन का अहसास कराता है।चौथी कहानी 'इश्क ऑनलाइन' जिसके मूल पात्र आंनद और अनन्या हैं।आधुनिक परिप्रेक्ष्य में ऑफिशियल व्यस्तता,नायिका के एकांकीपन,अन्य राज्य में अपनों से दूरी के कारण सोशल मीडिया,ऑनलाइन गेम के अत्यधिक एडिक्शन मानवीय जीवन को अपनी गिरफ्त इस प्रकार लेता है कि समयावधि का आभास भी नहीं होने देता। पात्र वीडियो गेम को इतना आत्मसात कर लेती कि काल्पनिक पारावार में गोता लगा,प्रत्यक्ष,साकारात्मक होने की संकल्पनाएं लिए यथार्थ से पृथक भावनात्मक जंगल में भटकने लगती है। वास्तविक जीवन में अरुचि उसका परिवारिक मोहभंग,इंटरनेट के मोह में यकायक स्वाभाविक परिवर्तन,आंनद,बच्चों से विरक्ति भाव,मस्तिष्क में राजकुमार सैमुअल के प्रति आकर्षण, उसे प्राप्त करने की प्रबल महत्वकांक्षा,वाक्यावली वाली चैटिंग उसके पारिवारिक विखंडन का मुख्य कारण बन जाती है।विडियो कॉल्स से अतिउत्साहित हो उसे देखने की इच्छा,सैमुअल का महज़ लिखित सन्देश पर ही बात करना,संदेहास्पद स्थिति को जन्म देता है। चिड़चिड़ापन,कुंठा,मोबाइल टच पर भययुक्त भाव,बच्चों को पीटना,दुर्व्यवहार, रात्रि के अंतिम पहर तक ऑनलाइन,आवाज़ श्रवण की बेताबी, काल का डिस्कनेक्ट होना,उसका अनदेखे शख्स के पीछे का पागलपन की हदों तक पहुंचना कहानी को सार्थकता, रोमांचकारी बनता है।

"उस रात भी वो देर तक चैट करती रही। अनन्या ने उसे अपने बारे में सब कुछ बताया। वो उसकी आवाज़ सुनने को बेताब थी, वो उसे बार- बार कॉल करने का प्रयास करती रही, और वो था कि डिस्कनेक्ट करता रहा। उसने साफ़ कर दिया था कि वो किसी शादीशुदा महिला को अपनी ज़िंदगी में जगह नहीं दे सकता।"3

ऑफलाइन मेरी दृष्टि में यथार्थ एवम् ऑनलाइन कृत्रिम जीवन का प्रतीक रूप में ठोस उदाहरण कहा जा सकता है।सैमुअल का शर्तिया तौर पर मिलना प्रमाणित करता है कि वह निसंदेह भ्रम,फरेब है।फटा पोस्टर निकली हीरोइन सी फिलिंग एवं सोशल मीडिया की तस्वीर प्रस्तुत कर छल कपट की भावना के सच को कहानीकार दर्शाता है। कहानी जिंदगी को धूर्वीकरण की ओर ले जाती है। समलैंगिक छवि दृष्टव्य करने के बाद पटल एकदम साफ़ दिखने लगता है। पति से तलाक के और बच्चों से विरक्ति ने उसके जीवन के समूल को नष्ट कर डाला। 'इंतहा' पति वियोगिनी स्त्री मनोदशा,हृदय व्याकुलता,स्त्री मन के अनगिनत सवाल,शंकाएं, बुलबुलों भांति विचारों का उठना, विलीन हो जाना,विदेश में बसे पति मिलने की प्रबल इच्छा, अंतहीन प्रतीक्षा को सुगमतापूर्वक लेखक ने चित्रित किया है। प्रमुख कहानी जिसके शीर्षक से पुस्तक का नामकरण हुआ 'एक कप चाय और तुम' नायक सन्नी और नायिका वाणी है। प्रस्तुत कथा का देशकाल वातावरण क्रिसमस की शाम जिसे नायक अपने जीवन की चिरस्मृत शाम रूप में देखना चाहता है।वर्षों उसे इस शाम का इंतजार था।चाय पर मुलाकात,सेंता से विश में वाणी के सानिध्य

की मुराद मांगना, रजमंदी रूप में उसका मौन हो पलकें झपका अमीन,स्वीकृत देना,भावाभिव्यक्ति की उच्छश्रृंखलता, एक कप चाय की आरजू। भाषा शब्दचयन पियरी कार्डिन का पेन, विश, विंड चाइम्स बेल, रिसीवर जैसे अंग्रेज़ी शब्दों का सार्थक प्रयोग है।जहां 'बंद कॉटेज' में स्टेटस, सोसायटी,रुतबा बरकरार रखने की कुंठाग्रस्त मन स्थिति,बुज़ुर्ग पीढ़ी की दुर्दशा को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। 'सुखिया ' कथा के चारों भाग बाल मनोविज्ञान,जिज्ञासु बाल मन,नृत्य में रुचि, बाल मन की प्रश्नात्मक गूढ़ ज्ञान बातें तथा भारतीय समाज में अंधविश्वास,जातिवाद,शिक्षा ग्रहण करने पर भी सामाजिक रूढ़ियों में परिवर्तन न कर पाना आदि विषयों पर ये कहानियां कठोर प्रहार करती हैं। सुखिया के माध्यम से कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को पाठकों के चिंतन कहानीकार छोड़ देते हैं,जो अध्ययनरत रहते वक़्त मस्तिष्क में चपला भांति कौंधते हुए विचारात्मक शक्ति संचारित करते हैं।जीवन की जटिलताओं,प्रवनचनाओं को कथाकार साहस के साथ कहते हैं साथ ही विभिन्न मतवाद परीक्षण, निरीक्षण, जातीय संकीर्णता,जटिलता,बर्बरतापूर्ण प्रवृतियों त्रासदी को रेखांकित करती हैं। इन कहानियों को पढ़ते हुए स्मित मुस्कान भी चेहरे पर स्वत ही आ जाती है।लेखक भावावादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए जीवन के जीवंत रूप की संवाहक कहानियां लिखते हैं। 'खनकती आवाज़ 'राजस्थानी भाषा शैली में अनजाने ही बने आत्मीय संबंध को उकेरने वाली साधारण कहानी है।'बिन पते की चिट्ठियां', संदेशवाहक के बिन मां की बच्ची को चिट्ठियों के माध्यम से ममत्व, मधुर रिश्तों में संवेदनशीलता,मानवीय रिश्तों के जीवित रहने का प्रमाण देती है।'छंटता कोहरा', 'रत्ती भर धूप' प्राकृतिक सौंदर्य की अनुपम छटा बिखेरती, भौतिक वस्तओं के प्रति अपेक्षा भाव, प्रेम का गला घोंट, वैवाहिक संबंध को निभाते हुए भारतीय समाज में महिलाओं की अनमेल विवाह की समस्या, समर्पण के बाद भी वर्षों तक पुराने प्रेम की जहर बुझे तीर से कटाक्ष, अमृता प्रीतम की भांति विचारों में उत्कृष्टता, दृसंकल्पिता, पितृसत्तात्मक की परिधि से मुक्ति की छटपटाहट, पुरुष सम्पत्ति मां- बाप फिर भाइयों की नियमावली के मुताबिक़ चलना,अंत में पति का उसकी देह पर एकाधिकार हो जाना, कहीं ना कहीं स्त्री स्वयं की देह,अपने अस्तित्व की खोज में संलग्न प्रतिरोध क्षमता, दृढ़ निश्चयी, नजरअंदाजी, मर्यादित खींज,सामाजिक निर्धारित नियमावली को चुनौती देने लगती है। अपनी भावी पीढ़ी को सशक्त रूप में निर्मित देखने की अभिलाषा रखती है। अपने ऊपर थोप दिए गए पुरुष वर्चस्व की अपेक्षा कृत स्वयं की देह स्वामिनी बनना चाहती है। स्त्री तथ्यात्मक रंगो से अनुस्यूत कहानी है। पुरुष स्त्री प्रेम की गहराई को समझने में नाकामयाब ही होते-

"हर किसी की जिंदगी में इमरोज़ नहीं होता। उसने हल्की सी मुस्कुराहट के साथ टेबल पर रखी अमृता प्रीतम की किताब पर हाथ फेरते हुए कहा।" 4

ये संवाद स्त्री मन की बहुत सी परतों को खोलता है।

मेरे दिल के करीब 'आखिरी कॉल','रत्ती भर घूप' , तीसरी कहानी इश्क़ ऑनलाइन रही है। मेरी दृष्टि में कहानी संग्रह में कोई कथा मील का पत्थर साबित हो सकती है तो वो आख़िरी कॉल। और विमर्श की बात करूं तो सुखिया दलित विमर्श की कहानियां हैं। ' रत्ती भर धूप' 'अथवा इश्क ऑनलाइन, बेहद रोचक कथाएं हैं। 'सुखिया' में क्यों कि आत्मानुभूति से प्रसूत घटना है। 'चुनावी मुद्दा', शीर्षक से ही मूल कथा , आंचलिक परिवेश की दलित समाज की दयनीय दशा, आर्थिक रूप से कमज़ोर, नशे की लत के शिकार लोग, अशिक्षित, महिलाएं, गरीबी और वोट का शराब की बोतल, दो जून खाने, एक जोड़ी कपड़ों में सौदा तय होना, झूठी चुनावी घोषणाएं, लघु कथा की मूल संवेदना को व्यक्त करती है।'चौकीदार', आर्थिक स्थिति, बच्चों के अपहरण, बाल मन के अनजाने किये गए प्रश्नों को दर्शाती है। 'वो रात', लावारिस नवजात शिशुओं के प्रतिलापरवाही, पुलिस जांच में पूछे गए मददगार इंसान से पेंचदा सवालात जिससे वो अपराधबोध महसूस करता है। मानवीय मूल्यों , नैतिकता, मानवीय धर्म जैसे भावात्मक पहलुओं का अवलोकन करती कहानी।' डायरी 2011' एक तरफ़ के प्रेम प्रसंग, सामान्यत किसी ओर से विवाह, शादी का कार्ड देख नायक की मनस्थिति को उजागर करती है। 'सच का आइना'लाचार, गरीब, दयनीय दशा,करुणवरुणापूर्ण भावों ,जीवन की सत्य घटनाओं को ढालकर भयानक स्वप्न संसृत परिणति की गई है।

" एक कप चाय और तुम" (कथा-संग्रह) के भाव पक्ष में लेखक ने यथार्थवादी दृष्टिकोण,कल्पना का समावेश कर सशक्तता प्रकट की है। कथाएं लघु आकार,रोचकता, प्रभाविंति आदि विशेषताएं लिए है।पात्रों की भाव- भंगिमाओं को बहुविध प्रकृति के अनुरूप परिवर्तित किया गया है। कथाएं द्वंद्वग्रस्त,

चेतनाओं,विचाराभिव्यक्ति, अभिधा शब्द शक्ति, सपाटबयानी में होने के बावजूद भी घटनाओं के गुंफन में कुतूहल,रहस्यमयता, विस्मयता धारण किए हैं। कथा प्रवाह में रसमयता अनवरत बनी रही है। सामाजिक जीवन की जटिलताओं,स्त्री मन की पैठ, प्रेमतत्व की महत्ता,तथ्यपरकता,अंतर्मन की व्याकुलता संत्रास के प्रति कहानीकार सुनील पंवार का परिपक्वतापूर्ण दृष्टिकोण देखने को मिलता है। भाषा सौष्ठव में काव्य शास्त्रीय सिद्धान्त की दृष्टि से थोड़ा बहुत दोष है किन्तु नवोदित लेखन एवं साहित्य विषय विशेष का ना होने के कारण सामान्य सी बात है।भाषा बिना अवरूद्ध हुए पाठक मन को सरसता तक ले जाती हैं।सरल,उर्दू फ़ारसी के शब्दों से जैसे-मशिवरा,अमीन,एतराज़,शब्बा खैर आदि। कहानियों में अंग्रेजी,राजस्थानी,खड़ी बोली के शब्दों का भी चयन किया गया साथ ही भाषा में नुकीलापन मधुर स्मृतियों का प्रत्यांकन है।साहित्यिक रुचि विशेषत:कथाओं के प्रति अदम्य लगाव,आत्मनिष्ठता के साथ श्रृंखलाबद्ध रूप में कालक्रम,देशकाल,वातावरण,स्थिति का पर्यवेक्षण करते हुए,सजीव दृश्यों,चित्रों का प्रत्यांकन है।भाषा शैली अभिधा,सहजता और तथ्यात्मकता है। शिल्प की दृष्टि से भी उत्तम कहानी संग्रह है।

संद

1. हिंदी साहित्य कोश भाग (1)डॉ.धीरेंद्र वर्मा- 121
2.एक कप चाय और तुम - पृष्ठ - 26
3. वही - पृष्ठ -35
4. वही -पृष्ठ- 38
5.वही - पृष्ठ - 80

☆☆☆

भारतीय किसान विश्व का अन्नदाता खेती का रखवाला,

हत्या कहानी में भारतीय किसान की दशा

डॉ. पुष्पा गोविंदराव गायकवाड

वै. धुंडा महाराज देगलूरकर,

महाविद्यालय, देगलूर

ई-मेल- pushpag720@gmail.com

भ्रमणध्वणी : 9423437565

खेती का मालिक धरती पूत्र अपनी मेहनत से खेत में सोना उगाता है । उसके सोने जैसे अनाज को सस्ते दाम मिलते है। किसान दिन रात मेहनत करता है फिर भी उसके अच्छे दिन नही आते। कर्ज के तले वह अपनी धरती माता को गिरवी रखता है। और एक दिन वह समाप्त होता है। यह भारतीय किसान की संघर्ष मय गाथा है।

भारतीय किसान बिना लोभ के वह आपना शरीर जलाकर सूरज की तपती धूप में अपना पसीना बहाकर मेहनत करता है। बारिश में बिना किसी चाहत के खेतो में बिना किसी के सहारे भीगते हुये गरजते बादलो के बीच खुले आसमान में रहता है। अपने खेत की फसलो की रखवाली करता है। किन्तु सरकार किसान के अनाज को ज्यादा रुपये नही देती। शाहूकार महाजन ये किसान के अनाज को सस्ते दामो में खरीदते है और गोदामों में सारा माल भर के रखते। वही अनाज किसान आम लोगो को महंगे दामो में बेचते है। किसान की मेहनत का कोई मोल नही ।किसान के अनाज को सारकार ज्यादा दामों में खरिदने का ऐलान करती तो शायद भारतीय किसान के जीवन में अच्छे दिन अवश्य आते। और न ही वह आत्महत्या करता विश्व का अन्नदाता यदी आत्महत्या करने लगे तो भारत को अनाज कहा से मिलेगा।

यदि किसान ही न रहा तो विश्व में अनाज कहा से आयेगा। यह एक चिंता का विषय है। इस पर विचार विमर्श होना बेहद आवश्यक है।

हत्या कहानी में भारतीय किसान की दयनिय अवस्था का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है। भारतीय किसान खेती में दिन रात मेहनत करता पर उसके अनाज को सही दाम नही मिलते।

हत्या बरखा शर्मा की किसान आत्महत्या को लेकर लिखी मौलिक और प्रासंगिक कहानी है।

भारतीय किसानो की जीवन गाथा का यथार्थ चित्रण हिन्दी साहित्य में किया है। हिन्दी साहित्य कारो नं अपनी रचनाओं के

माध्यम से किसानो की समस्याओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

प्रेमचंद ने भारतीय किसान की दयनीय स्थिति के प्रति अपनी गहरी सहानूभूति बेचैनी और चिंता भी व्यक्त की है उनका स्पष्ट मत था कि किसान की आर्थिक मुक्ति के बिना पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य को प्राप्त नही किया जा सकता। वे किसानो के महत्व व उनकी दयनीय दशा के सम्बन्ध में लिखते है। भारत के अस्सी फीसदी आदमी खेती करते है। कई फीसदी वह है जो अपनी जिविका के लिए किसानो के मोहताज है जैसे गाँव के बढई लुहार कुम्हार धोबी कोली आदि राष्ट्र के हाथो में जो कुछ विभूति है वह इन्ही किसानों और मजदूरी की मेहनत का सदका है। हमारे स्कूल विद्यालय पुलिस और फौज हमारी अदालत और कचहरिया सब उन्ही के कमायी के बलपर चलती है। लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और बस्त्रदाता है। भरपेट अन्न के लिए तरसते जाडे पाले में ठिठूरते है और मकिखयो की तरह मरते है।"

हत्या बरखा शर्मा की किसान आत्महत्या को लेकर लिखी मौलिक और प्रासंगिक कहानी है। किसान आत्महत्या की समस्या आज गम्भीर बनी जा रही है। देश में सबसे अधिक किसान आत्महत्या महाराष्ट्र में हुई है। महाराष्ट्र विदर्भ तथा मराठवाडा जैसे सूखाग्रस्त एंव पिछडे समभाग में अधिकांश किसानो ने आत्महत्याएँ की है। यह कहानी प्रेमचंद्र के गोदान उपन्यास की याद दिलाती है। कहानी एकनाथ नामक किसान के आत्महत्या की है। कृषी प्रधान देश भारत का किसान आज अनेक समस्यांओ से घिरा हुआ है। यह समस्याएँ असमानी कम और सुल्तानी अधिक है।

साहुकारों द्वारा किसानों को कर्ज देकर उनकी खेती हडपना आम बात बन चुकी है। जो अवस्था गोदान में होरी की है वही यहॉ एकनाथ की है। मराठी में (अन्नदाता बळी राजा जगाचा पोशिंदा)

जैसे बडे बडे विशेषण धाणर वाला किसान क्यों फास को नजदीक कर रहा है? यह हमारी वर्तमान व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह निर्माण करता है। वर्तमान समय में आवश्यकता है काशी जैसे संघर्ष कर अपने परिवार और खेती को संभालेनेवाली स्त्री की। यह जहाँ शोषक बने साहुकारों को लताडती है वही कर्मकाण्ड के माध्यम से गरीब किसानो का निमर्म शोषण करनेवाले धर्म के ठेकेदारों को भी बक्सना नही चाहती।

महाराष्ट्र के मराठवाडा जैसे पिछडे तथा मराठी भाक्षी क्षेत्र से श्रीमती बरखा शर्मा जैसी युवा कहानीकार आज की हमारी वर्तमान स्थिति का लेखा-जोखा अपनी कहानियों तथा कविताओं के माध्यम से व्यक्त कर रही है। यह उनकी हिन्दी साहित्य में बहुत बडी उपलब्धि है।

हत्या कहानी का नायक एकनाथ कर्ज के कारण आत्महत्या करता है। एकनाथ की पत्नी काशी संघर्ष कर अपने परिवार और खेती को संभालनेवाली साहससील हिम्मतवाली स्त्री है।

एक किसान की आत्महत्या पर पूरा परिवार बिखरता है। एकनाथ के माँ बापने जवान बेटे को खो दि या था। काशी ने अपने पति को नारायण ने अपने बडे भाई को बच्चों ने अपने पिता को खोया था।

काशी को गहरा सदमा लगा था वह बार-बार बेहोश हो रही थी चीख रही थी उसने अपना पति खोया था। बच्चो के असू देखकर काशी सोचती है उसी का कथन दृष्ट्यव्य है।

"धनी आपने यह क्या कर लिया? क्योंकि ऐसा ? मुसीबतो से डरकर पलायन कर गए ? आपने यह क्यों नही सोचा कि आपके बाद आपके परिवार के ७ सदस्यो का क्या होगा ? आप मुझ पर कितनी बडी जिम्मेदारी डालकर चले गए? क्या आपको विश्वास था कि मैं अपनी कसौटी पर खरी उरूंगी।

काशी मन ही मन फिर एकनाथ से बाते करने लगी -

धनी कल रात से एक इच्छा मन में आ रही है- आई बाबा नारु और बच्चो के खाने में जहर मिला दें और खुद भी जहर खाकर सो जाऊं से जाऊं सोचती हूँ ऐसा करने से सभी समस्याओं से एक साथ सभी को छूटकारा मिल जायेगा ? लेकिन कुछ पल में ही विचार बदल जाता है। जीवन मिला है तो मृत्यू भी अटल है, क्यों न संघर्ष किया जाएँ ? हा धनी मैं संघर्ष करुंगी।

काशी संघर्ष से डरती नही और नही एकनाथ की तहर मुसिबतो से पलायन करती।

भारतीय किसान की पत्नी उतनी ही सक्षम होती है। हालातो से जिना सिख लेती है। अपने परिवार का भरण पोषण अपने मेहनत से करना जानती है।

एकनाथ का छोटा भाई नारायण की मानसिक हालत बडे भाई की मृत्यू से खराब हो गई थी। गाँव के सावकारों की शर्ट की कालर पकडकर वह चीख रहा था मेरे दादा ने आत्महत्या नही की है आप लोगो ने मारा है उसे आप के सूद ब्याज आपकी

खेली गई चाले हमारी खेती हथियाने के लिए की गई आपकी कोशिंशो ने मेरे दादा को मारा है। मेरे दादा ने आत्महत्या नही की उनकी हत्या हुई है।

किसान की हत्या पर पूरा परिवार बिखरता है टूटता है। शाहूकार जिवीत किसान को मदत करते तो शायद एकनाथ जैसे हजारो किसानो की जान बचती उनका परिवार नही बिखरता।

किसान की मृत्यू पर आँसू बहाने राजनैतिक और सरकारी लोग आते है परिवार से मिलने यही मददत यदि किसानो को पहले मिलती तो आज विश्व का अन्नदाता खूश रहता। अपनी धरती माँ की तन मन से सेवा करता और हम सभी को खाने को मेवा मिलता। राजनैतिक सरकारी लोग मगरमच्छ के आँसू बहाने आ जाते है कुछ तस्वीर लेते है सहानुभूति दिखावे का नाटक करते है।

बरखा शर्मा ने नारायण के द्वारा यह सत्य उदघाटित किया है उसी के शब्दो में

"अरे इतने वर्षो में अब तक आप मेरे किसी एक ने भी मेरे दादा का साथ दिया क्या ? नही दिया मेरे दादा के मरने के बाद आ रहे हो, अगर मेरे दादा को जीवित रहते तुम्हारे कंधे पर सिर रखकर रोने दते उसका थोडा सुन लेते तो उसे कंधो पर श्मशान पहूँचाने की नौबत नही आती। लेकिन आप लोगों को कोई फर्क नही पडता। एक और किसान ने आत्महत्या की बस अखबार में यह खबर छप जायेगी आप लोग सफेद कपडे पहनकर मृतक के परिवार को साँत्वना देने आए, आप लोगों के दु:ख भरे चेहरे अखबार में छप जायेंगे टी.व्ही. चैनलपर एक -दो दिन यही खबर बार-बार दिखायी जायेगी। एक ही दृश्य को बार-बार दोहराया जायेगा बस हो गया फर्ज पूरा। दो-चार दिन में सब ठंडा हो जायेगा दादा की चिता की राख भी और आपके सहानुभूति का आडम्बर भी ढोंगी हो आप मक्कार हो। आप फिर किसी नयी खबर में चमकने को व्यस्थ हो जाओगे आपने कुछ सोचा है? क्या होगा हमारा ? मेरे छोटे छोटे भतीजे - भतीजी मेरे बूढे माँ - बाप का क्या होगा इनका ? कैसे जियेंगे यह सब ? क्या मेरे माँ पिताजी ने कभी ऐसा बुरा स्वप्न भी देखा होगा कि उनका जवान बेटा उनके सामने इस दुनियासे चला जायेगा ? मृत्यू के बाद अग्नि देनेवाला बडा बेटा इन बूढी आँखो के सामने चिता में जल रहा है।"

किसान को कर्ज से मुक्ति चाहिए थी। पर कृषी प्रधान देश में किसान को जीवन से ही मुक्ति मिल गई थी।

भारतीय किसान की दयनिय अवस्थाका चित्रण इस कहानी में लेखिकार ने किया है।

किसान से ही अनाज मिलता है यह हम सब भूल रहे है।

भारतीय किसान की मृत्यू पर नारायण का कथन उध्दृत करना आवश्यक लगता है। उसी के शब्दों में

"अपना देश कृषिप्रधान है ना ?
क्या यही है हम किसानों की तकदीर ?
बलीराजा कहते हो ना और बलीराजा की ऐसी मौत ?

नारायण के रिश्तेदार उसे पागल कह रहे थे। भाई की मृत्यू के शोक में नारायण पागल हो गया था। नारायण जमीन पर बैठकर अपना सिर पीट रहा था उसी का कथन दृष्टव्य है।

अरे मैं तो अपना दादा अपना बडाभाई खोया है, लेकिन आप लोग भी तो खो रहे हो .... अनाज पैदा करनेवाले को ... आपका पेट भरनेवाले को।

किसी एक किसान की हत्या याने भारत के बलिराजा की हत्या आये दिन हो रही है। किसान ही न रहा तो क्या होगा? "

एकनाथ की तेरहवी का कार्यक्रम करने के लिए बिरादरी के लोग आँगन में बैठे थे पंडितजी ने बताया था मृतक को परलोक सुधारने के लिए दान धर्म में कौन कौनसी चीजो का दान करने से मृतक की आत्मा को शांती मिलती है/ इस पर काशी पंडीत से किसान की दशा का वर्णन इस तरह करती है। उसी का कथन दृष्टव्य है।

पंडित काका घर में सौ ग्राम चाँदी भी नही बची ४ साल से खेत में फसल नही आ रही है। सात एकड खेत में से पाँच टुकडे तीन अलग अलग सावकारों के पास गिरबी पडे है। फसल हो या ना हो सूद (ब्याज) तो देना पडता है, फिर से बीज के लिए लेना पडता है, दिन प्रतिदिन बढती ब्याज पर ब्याज की चकरी से हम आधी से ज्यादा जमीन खो चुके है। हम खुद फटे कपडे पहनते है, सुखी रोटी पानी के साथ खाकर आधा पेट भरते है, लेकिन हम सावकारों को रुपये देते हैं ताकि वे रेशम के वस्त्र पहन सकें और हलवा-पुरी खा सकें। थोडी बहुत सरकारी मदद कभी मिल भी जाती है, तो वह मदद ऊँट के मूँह में जीरे के समान है। मेरे धनीने बहुत जगह मदद की गुहार लगायी रोज फटे जूते पहनकर फिरते थे। तालुके के बडे-बडे नेता के पास अलग-अलग कार्येलयों में जाकर मदद की भीख माँगी आखिर कोई उम्मीद ना बची और गाँव में रहना दुश्वार हो गया क्योंकि हमारी जमीन के बचे हुए दो

टुकडे भी कुछ लोगों की आँखो की किर किरी बन गए थे। कोई हल नहीं बचा तब परेशान और हताश होकर मेरे धनी एकनाथ ने आत्महत्या कर ली।

काशी को कोई सुध नही थी, वह झरते आँसुओं के साथ कहते जा रही थी पंडित काका अभी आस-पडोस के लोग मदद कर रहे है, थोडा बहुत सामान लेकर हम तेरहवी तक घर चला रहे है। धनी की तेरहवी के लिए मैं और एक कर्ज किसी से ले लूँ, औरदान धर्म करूँ बिरादरी में गाँव में मृत्यू भोज करूँ तो क्या मेरे पति की आत्मा को शान्ति होगी ? नही ना ? पंडित काका उनकी आत्मा को तो तभी शान्ति होगी जब नारु पढ-लिख लेगा, हम फिर से सात एकड के खेत में अपना खेत बनाकर बीज बोयेंगे। उनकी आत्मा को शान्ति तब मिलेगी, जब बच्चे दिवाली को दूसरे बच्चों के पटाखे देखने के बजाय नये कपडे पहनकर खुद पटाखे चलायेंगे। मेरे धनी की आत्मा तो तब खुश होगी जब आई-बाबा सब चिन्ता छोडकर कीर्तन करेंगे, पंढरपूर के मन्दिर में विठ्ठल का नाम लेंगे।

फिर से कर्ज लेकर दान धर्म करने पुण्य कमाने का नया मार्ग पंडित जी काशी को बता रहे थे। काशी अपने संयम और विवेक से पंडित की बात को खारीज करती है।

काशी का संयम विवेक संघर्ष जिम्मेदारियाँ आज किसानों मे आशा की ज्योति जगाने का काम करती है। यह कहानी आज किसानों के लिए एक मौलिक सन्देश देने में सफल हुई है।

काशी का यह कथन सभी किसानों के लिए जीवन जीने का नया संदेश देता है।

जीवन मिला है तो मृत्यू भी अटल है क्यों ना संघर्ष किया जाए ? हाँ धनी ... मैं संघर्ष करुँगी मै अपने नारु और बच्चो को शिक्षित बनाऊँगी। आपका सपना जरुर पूरा करूंगी। लेकीन मेरा भी एक सपना है मै चाहती हूँ कि मेरे बच्चे और नारु पढे लिखे प्रगति करे साथ ही वह खेती भी करे हम किसान है भूमिपूत्र है यह ना भूले पृथ्वी पर बलीराजा अन्नदाता का रुप है वह अपनी गरिमा संभाले।

भारतीय किसान जीवन के यथार्थ स्थिति को कवि मैथलीशरण गुप्त ने इन पंक्तियों मे प्रस्तुत किया है।

जैसे :- हो जाय अच्छी भी फसल
पर लाभ कृषको को कहाँ

किसान दिनरात मेहनत करता है पर सभी सुविधाओसे वंचित रहता है। उसे भी सारी सुविधा मिलने लगी तो किसान का जीवन भी परीपूर्ण होगा / और नही वह आत्महत्या करेगा।

शाहुकार राजनैतिक लोग और सरकार किसान के रक्षक बने न की भक्षक किसान की मेहनत से ही हमे अनाज मिलता है यह भूलना नही चाहिए। इस देश के किसान को हर हाल में सुरक्षित रखना आवश्यक है।

विश्व का अन्नदाता सुरक्षित तो हमारा जीवन भी सुरक्षीत रहेगा।

मेदी दृष्टि से किसान की दयनिय दशा को इस प्रकार से देख सकते है।

भारतीय किसान
सूरज में तपता है
बारिश में भिगता है
बादलो के बीच रहता है
जीवन मरण की न चिंता
विश्व का अन्नदाता
कैसे ऋतुओं की मार खाता
कर्ज से छटपटाता
फिर भी हार नही मानता
कर्ज के कारण आत्महत्या करता
दिन रात मेहनत करता
सभ्यता की पोषाखे आती है
किसानो के परिश्रम से
भारतीय सभ्यता संस्कृति के प्रवचन दिये जाते है
किसान के अनाज पर
धर्म गरु मुल्ला मौलवी पादरियों,
हमसब का अन्नदाता किसान
भारत का बलिराजा महान

संदर्भ ग्रंथ

1) किसान - मैथिलिशरण गुप्त
2)साहित्य सौर : डॉ. सुजित सिंह परिहार
3)हत्या :- बरखा शर्मा ११६
4)हत्या :- वही पृ .सं. ११७
5)वही पृ .सं. १२०, १२१
6)वही पृ .सं. १२२
7)वही पृ .सं. १२३,१२४
8) गुगल प्रेमचंद साहित्य में भारतीय किसान - डॉ. गीता कपल

कीर्ति शर्मा की कहानियों में व्यक्त आधुनिक स्त्री जीवन और सामाजिक समस्याओं की विवेचना

-सुनीता सेरावत
शोधार्थीहिं
दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
Gmail : sunitaserawat85@gmail.com

कीर्ति शर्मा की कहानियाँ भावनात्मकता के उच्च शिखर को तो छूती ही है साथ ही पारिवारिक यथार्थ और सामाजिक जीवन में तालमेल भी बिठाती है।उनके पहले कहानी संग्रह 'पिघलते लम्हों की ओट से' प्राचीन और आधुनिक जीवन के द्वन्द्वों को उकेरने वाली कहानियाँ है।स्त्रियों की आधुनिक सोच समाज के पिछड़ेपन के बीच के जीवन के अकेलेपन की समस्या तथा इसी के बीच रास्ता बनाती स्त्री की यथार्थ जिंदगी को दिखाती ये कहानियाँ आधुनिक हिंदी कहानी में अपना स्थान तय करती हैं। इनका दूसरा कहानी संग्रह 'बूँद भर सावन' में सामाजिक समस्याओं के उन तमाम रूपों को छू लेती हैं जो आधुनिक समाज में आज अनिवार्य सी हो गई है।इसमें प्रेम, बेरोजगारी, महँगाई, रोजमर्रा का संघर्ष, बाल श्रम, वृद्धावस्था की समस्या, बाल श्रम, खोखले रिश्ते जैसे अनेक पहलूओं को एक सशक्त कथ्य के माध्यम से दिखाया गया है।

पहले कहानी संग्रह की एक मजबूत कहानी है – जोहरा आपा। एक मुस्लिम पात्र जोहरा तमाम सामाजिक दबावों को झेलकर भी अपने दारूबाज पति का अहसान न लेकर सब्जी बेचकर अपना जीवन यापन करती है और अपने स्वाभिमान के साथ किसी को खेलने नहीं देती। जोहरा का चरित्र इस कहानी मेश्रम और संघर्ष की भूमि में तपकर इतना निखर आया है कि जोहरा जैसी स्त्रियों पर कोई भी समाज गर्व ही करेगा।इसी प्रकार एक कहानी 'विरासत' है जिसमें नई पीढ़ी की पुरानी पीढ़ी की सकारात्मक भावना और उनके स्वाभिमान के सम्मान में खड़ी आधुनिक लड़की की कहानी को दिखाया गया है।मीना नामक लड़की अपने पिता को विश्वास दिलाती है कि वह उनकी विरासत की किसी भी हालत में रक्षा करेगी क्योंकि यह उसका न केवल दायित्य है बल्कि उसके साथ पुरखों का स्वाभिमान जुदा हुआ है और वह किसी भी कीमत पर मकान तो क्या कुछ भी नहीं बेचेगी।उसके उसी आत्मविश्वास को देखकर उसे पिता बोलते हैं – "मीना यह घर नहीं यह मेरे दादाजी का सपना है जो तुम्हारे दादाजी ने पूरा किया है, मैंने भी निभाया है।

इस विरासत में पुरखों की आत्मा बसती है।यह ईट गारे से बने

महज इमारत नहीं
बल्कि जीता

जागता वह अहसास है जिसने इतने बड़े परिवार को अपने आंचल में पाला है।इसे हरा – भरा फलता फूलता देखकर पूरखों की आत्मा को शांति मिलती है।यह हमारे अतीत की जीती जागती निशानी है।अब सब अपनी – अपनी राह हो लिए पर मैं मीना इसे खंडहर होते, बिकते नहीं देख सकता बेटा तू इसे संभालना, आबाद रखना |" यह कहानी युवा पीढ़ी को एक सबक तो देती ही है साथ ही हमें हमारी परम्परा और संस्कृति के महत्व की भी सीख देती है। अगर मीना जैसी सब बेटियाँ हो तो किसी बुजुर्ग को बुढ़ापे में जाकर आत्मपीडा की घुटन महसूस न हो और वे अकेलापन व परायापन महसूस न करें।

'पिघलते लम्हों की ओट से' कहानी में प्रेम के उस पवित्र और शारीरिक रूप को दिखाया गया है जो दैहिक और भौगोलिकता से दूर एक आत्मिक आनंद का स्रोत है।जूनुन और जज्बें के साथ जब संघर्ष भी हो तो प्रेम की सामाजिक स्वीकार्यता अपने आप मिलती जाती है। "प्रेम के जुनून भरे जज्बें में मैंने तुम्हें पा लिया है। तुम मुझसे दूर कहाँ हो।साथ रहने से क्या दूरियाँ मिटती है ? जहाँ प्रेम है वहाँ दूरियाँ कोई मायने नहीं रखती। मन का एकत्व इन्हें भौगोलिक, शारीरिक दूरियों से परे एक करता है। इसी अहसास का नाम प्रेम है |" यह कहानी शिल्प की दृष्टि से भी काफी आगे बढ़ी हुई नजर आती है लेकिन इसका कथ्य रोमानी और मांसल प्रेम से आगे मानसिक प्रेम की उन अवस्थाओं का दर्शन करवाता है जो जिसको मनुष्य जीना चाहकर भी जी नहीं पाता और जिंदगी भर इसी घुटन के साथ बीता कुढ़ता रहता है कि काश मैंने सही समय पर अपने साथी के अहसासों के साथ अपने अहसास मिला लिए होते ?

'फैसला' कहानी भी दो पीढ़ियों में प्रेम सम्बन्धों की समझ के द्वद्व को दिखाती है। एक जिद्दी बाप के अहंकार के चलते पुत्र का निश्छल प्रेम बहुत पीड़ित होता है लेकिन अंत में पुत्र की जीत होती है। कहानी में प्रेम के संघर्षमय रूप और अंत में उसकी जीत की संवेदनशील ऊर्जा की विवेचना है।इसी तरह एक बालिका जगनी के

छोटी उम्र के संघर्ष को 'कचरा बीनने वाली लड़की' के माध्यम से दिखाया गया है | चाहे जगनी को स्वयंसेवी संस्था की सहायता मिल गई हो लेकिन उससे उसके जीवन का व्यक्तिगत संघर्ष कम नहीं हो जाता और बचपन की कटु यादें भी नहीं मिट जाती है। "बारह तेरह साल की लडकी कचरा बीन रही थी।यूँ तो कोई विशेष बात नहीं थी कि मेरी नजर उस पर ठहरे लेकिन वह नाली के एक और फँसे प्लास्टिक निकाल रही थी।साथ ही उन्हें उस बहते पानी से धोकर अपने थैले में डाल रही थी |" कहानी में जगनी जागरूक, संघर्षरत, दृढ निश्चयी, साहसी, पितृसत्तात्मक समाज को मुँहतोड़ जबाव देनी वाली तथा आत्मरक्षा के प्रति अत्यंत जागरूक दिखाया गया है।गजनी जब अपनी स्वयंसेवी संस्था में उन लोगों का प्रवेश देखती है जो स्वयं महिलाओं के शोषण में शामिल है तो भड़क जाती है।कहती है – " इसका संचालन उन लोगों के हाथ में थोड़े हैं जो एयरकंडिशनर कमरों में बैठकर बिना किसी अनुभव के बड़ी – बड़ी बातें करते हैं, उनके पास न था।जो महिला उत्पीडन के कई दिन बाद हवाई यात्रा करके पहुँचते हैं। और हँस – हँसकर काला चश्मा लगाये फोटो खिंचवाते हैं। यह जताते हुए कि हम पीड़ित महिला को इंसाफ दिलाने आये हैं। उन्हें कहाँ पता होता है मिट्टी से जुड़ा हुआ दर्द, उत्पीडित महिला की दर्द भरी सिसकियों का सबब। उस संस्था का संचालन तो एक जांबाज कचरा बीनने वाली लड़की के हाथों में था जिसने हर दरद को जिया झेला |" हालाँकि स्वयसेवी संस्था के कहानी में घुसेड देने से जगनी के संघर्ष की चमक थोड़ी फीकी पड़ती नजर आती है लेकिन फिर भी वह कहानी में जगनी का स्वाभिमान उससे मजबूत बनाये रखता है। 'मौन' कहानी भागदौड़ भरी जिंदगी में समय के अभाव और उससे उत्पन्न समस्याओं को अचला और विनय नामक पात्रों के माध्यम से दिखाती है। 'स्वीकार' कहानी यौन हिंसा की शिकार हुई किशोरी के जीवन की उन कठिन स्थितियों को हमारे सामने रखती है जिसके कारण उसके व्यक्तित्व में कुंठा, डर, अकेलपान, चिडचिडापन और अंत में निराशा के गर्त में चली जाती है। उसके व्यक्तित्व का चित्रण कहानी में बड़ा ही दुखद बन पड़ा है – "तुम खफा सी क्यों रहती थी पता नहीं। तुम्हारा मन भी पढ़ाई में नहीं लगता था। जो कुछ क्लास में पढ़ाया जाता उसे भी शायद ही ध्यान से सुनती थी। क्लास रूम में भी तुम खोई- खोई सी लगती। किसी अनंत गहराई की ख़ामोश उदासी में डूब तुम बाहर निकलना नहीं चाहती |" यह यौन शोषण उस बच्ची के साथ किसी पारिवारिक रिश्तेदार द्वारा ही किया गया था। इस वजह से न तो वह अपनी पीड़ा किसी से कह पाती है और न ही उस अवसाद से निकल ही पाती है। इसी प्रकार कहानी 'रौशनी', 'गुरु दक्षिणा' और 'भूख' में क्रमश: युवा पीढ़ी का गलत संगत में पड़ते जाना, गुरु शिष्यों के सकारात्मक रिश्तों और माँ विहीन बच्चें के बचपन के मार्मिक उद्धरणों को उकेरा गया है |

कीर्ति शर्मा का दूसरा कहानी संग्रह 'बूँद भर सावन' की पहली कहानी अत्यंत मार्मिक बन पड़ी है क्योंकि वह आधुनिकता बोध की कारण संवेदन हीन होते जा रहे समाज में माँ के असम्मान और उपयोगितावादी दृष्टिकोण से रिश्तों के आकलन को मजबूत तरीके से उठाती है। सामाजिक जीवन में माँ के प्रति दायित्व को बोध समझना और संस्कारों को बाजारी वस्तु बना देना ही इस कहानी की मूल संवेदना है।'आकाश और पतंग कहानी' पुरूष के शारीरिक आकर्षण से रहित प्रेम के रोमानी सौन्दर्य और अपनत्व के सकारात्मक जीवन शैली के उदाहरणों से भरी पड़ी है।'रिक्शावाला' कहानी उन पढ़े लिखे युवाओं की कहानी है जो अपनी नौकरी से छुटकारा मिलने पर "रात में केवल इसलिए रिक्शा चलाते हैं ताकि महिलाओं को असमाजिक तत्वों से बचाया जा सके और उनकी सुरक्षित घर वापसी हो जाए।कहानी का एक पात्र कहता है कि "जॉब के बाद रोज दौ ढाई घंटे रिक्शा चलाएंगे। रिक्शा चलाने का मकसद सिर्फ और सिर्फ महिलाओं या लडकियों को सुरक्षित उनके घर पहुंचाना, उनकी हिफाजत करना है |"

'बूँद भर सावन' कहानी बचपन के अपने प्रेमी साथी को खो देने की पीड़ा और उससे उपजे अवसाद से निकलने की कहानी है। कीर्ति शर्मा की कहानियों की स्त्री पात्र हमेशा पाठक के सामने एक मजबूत लक्ष्य छोड़कर जाती है।कलाएँ किस तरह इंसान के भीतर के अवसाद का विरेचन करती है और पुन: व्यक्ति के जीवन को सही ढर्रे पर ले आती है, उसी की अभिव्यक्ति इस कहानी में हुई है। नैना नामक पात्र जब अपने प्रेमी को खो देती है और जीवन को एक लाश की तरह ढो रही होती है उन्हीं क्षणों में एक चित्रकार एक नई उर्जा और उत्साह के साथ उसके जीवन में प्रवेश करता है और अपनी कला से उसको ऐसा मोहित कर लेता है। जो नैना अपने प्रेमी की मृत्यु के बाद गूँगी- बाहरी हो गई थी, परिवेश जिसके लिए एक मुर्दा शांति के समान था, वही नैना एक कलाकर के प्रयासों से फिर से हरी भरी हो जाती है और जीवन को पुन: उल्लास के साथ जीने लगती है |

'गंगाजल' कहानी मित्रता की पवित्र आस्था को समेटे हुए हिन्दू – मुस्लिक द्वंदों को अभिव्यक्त करती है। यासमीन और खूशबू नामक पात्र इस कहानी में न केवल साम्प्रदायिक द्वेष को परे धकेल देते

अपितु स्त्री जीवन की आत्मनिर्भरता और स्वतंत्र विचार शैली के साथ स्त्रियों को किसी भी कट्टर समाज में जीने की आस्था देते हैं । यासमीन कहती है कि जो चीज बेकार हो जाए उसको बहार कर देना चाहिए वरना सड़ने लगती है । धार्मिक रूढ़ियाँ चाहे वे कितनी ही प्यारी हो आगे वे समाज के लिए किसी काम की नहीं है तो उनको धर्म से बाहर कर देना चाहिए । वह अपनी मित्र खुशबु से कहती है कि मेरा पुराणी रूढ़ियों का विरोध करना धर्म के खिलाफ कैसे हो गया – "खूशबू क्या मैं विद्रोही हूँ, क्या मैं खुले विचारों की हूँ, खुले विचार के क्या मायने हैं ? घर की लड़कियों, औरतों को तालीम देना, उन्हें जीवन जीने का सलीका बताना, अपना अस्तित्व पहचनाना क्या यह विद्रोह की निशानी है?" कीर्ति शर्मा की कहानियों का फलक अत्यंत विस्तृत तो है ही साथ ही अत्यंत मार्मिक और गहरा भी हैं । वे अनेक विषयों को एक साथ लेकर चलती है और कहानी के शिल्प में उन्हें बाँधते चलती है |

निष्कर्षत: कीर्ति शर्मा की कहानियों के पात्र हमारे आसपास के परिवेश से जुड़े हुए हैं और वे हमें बार – बार इधर – उधर भटकते नजर भी आ जाते हैं । कीर्ति शर्मा के कहानी लेखन की एक ख़ास बात यह है कि वे कहानी को एक आदर्श स्थिति पर ले जाकर छोडती हैं और समाधान की ओर अग्रसर करती दिखती है । इनकी कहानियों की भाषा बेहद ही सहज और सरल नजर आती है।साथ ही कई कहानियाँ तो काव्यात्मक शैली में लिखी गई है जो पढने का एक अलग ही आनंद देती है ।

संदर्भ सूची

कीर्ति शर्मा, पिघलते लम्हों की ओट से, बोधि प्रकाशन, 2013, पृष्ठ 42
वही, पृष्ठ 52
वही पृष्ठ 62
वही पृष्ठ 70
वही पृष्ठ 91
कीर्ति शर्मा, बूँद भर सावन, बोधि प्रकाशन, 2017, पृष्ठ 56
वही, पृष्ठ 124

प्रवासी साहित्य की अवधारणा

-डॉ. अन्सा ए
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग
सरकारी ब्रेण्णन कॉलेज
तलश्शेरी, कण्णूर
केरल ६७० १०६
मोब: 9995083552
ईमेल:anzaali2012@gmail.com

बीसवीं सदी के अंतिम चरण में साहित्य को समझने की दृष्टि में गुणात्मक बदलाव व परिवर्धन आया है| ऐसे माहौल में हिन्दी साहित्य जगत में नए प्रयोग, नए विमर्श, नई परिकल्पनाओं और नई विधाओं का प्रादुर्भाव व अचिंतनीय विकास हुआ| इस तरह पल्लवित होने वाले साहित्य विधाओं में प्रवासी साहित्य की अपनी अलग पहचान है|

'प्र' उपसर्ग के बाद 'वास 'शब्द लगाने से 'प्रवास' शब्द बनता है| 'प्र' संस्कृत उपसर्ग है जिसका अर्थ होता है- उत्कर्ष, अधिक, उत्पत्ति आदि| 'वास' शब्द का अर्थ है- आवास, निवास, वासगृह आदि| इस तरह 'प्रवास' का शब्दार्थ होते हैं- देशान्तरगमन, परदेशगमन, विदेशवास , विदेशगमन आदि| 'प्रवास' शब्द में 'ई' प्रत्यय लगाकर 'प्रवासी' शब्द बनता है| इस तरह देखें तो 'प्रवासी' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ प्रवासक, परदेशी, विदेश में रहने वाला या निवास करने वाला है| अर्थात प्रवासी वे जनता हैं जो अपना वतन छोड़कर कोई अन्य देश अनिश्चित समय के लिए जाते हैं और वहाँ बसने का फैसला कर लेते हैं| प्रवासी की स्थिति सदा अनिश्चित होती है| वे परदेशगमन के बाद वापस स्वदेश में लौटने का निर्णय भी कर सकता है|

भारतीय मूल के परदेश में रहने वालों के सृजनात्मक लेखन को प्रवासी साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है| प्रवासी साहित्य को परिभाषित करते हुए डॉ. रेखा गौतम का कहना है- "प्रवासी लेखक का संवेदन संस्कार के रूप में अपने नए परिवेश को ग्रहण करता है, परिवेश बदल जाने से प्रवासी के जीवन में विशेषताएँ और जटिलताएँ आती हैं| जिस कारण उसके नए संस्कार, नया दृष्टिकोण, नए विचार, नई सोच और नई मान्यताएँ बनने लगती हैं| इन परिवेशों और परिस्थितियों को वे अपनी रचना

का विषय बनाते हैं| इनके द्वारा रचित साहित्य प्रवासी साहित्य कहलाता है|"१ अतः अपना परिवार, अपना परिवेश, अपनी परंपरा, अपनी सोच व मान्यताएँ, अपनी भाषा, अपनी सभ्यता व संस्कृति तथा अपना देश से विलग रह कर प्रवास के कारण उत्पन्न अपनी गहन संवेदनाओं, अंतरद्वंदवों एवं अपने जीवन संघर्षों की उदात्त अभिव्यक्ति करने वाला साहित्य प्रवासी साहित्य है|

प्रवासी साहित्य अलग-अलग देशों में सृजनरत होने के कारण प्रत्येक प्रवासी रचनाकार की अपनी-अपनी विलग पहचान व अभिव्यक्ति रही है| इनमें परदेश की नवीनता, परंपरा व मान्यताओं की स्वीकृति का सम्मिश्रण पाए जाते हैं| प्रवासी हिन्दी साहित्य का मूल केंद्र अधिकांशतः मॉरिशस, फिजी, अमेरिका, ब्रिटेन, सूरीनाम जैसे देश हैं और यहाँ कार्यरत रचनाकारों द्वारा अनगिनत कृतियों की सर्जना हुई हैं, जो हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए उपयुक्त भी हैं| डॉ. कमल किशोर गोयनका का कथन है कि- "अमेरिका, इंग्लैंड, आदि देशों के भारतवंशी हिन्दी लेखक स्वयं को भारतीय लेखक मानते हैं और अपनी हिन्दी रचनाओं में देशी पहचान और भारतीय संस्कृति को मज़बूत आधार देते हैं|२ इस तरह भारत वंश के प्रवास में रहकर भारत की गरिमा बढ़ाने वाले सर्जकों में उल्लेखनीय चेहरे हैं- मॉरिशस के अभिमन्यु अनत, राज हीरामन, वेणी माधव, ब्रिटेन से तेजेंद्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना, नेदरलैंड से पुष्पिता अवस्थी, अमेरिका से उषा प्रियंवदा, सुषमा बेदी, सुधा ओम ढींगरा, डेन्मार्ग से अर्चना पैनयूली, नॉर्वे से सुरेश चंद्र शुक्ल, शारजाह से पूर्णिमा बर्मन, अबूदाबी से कृष्ण बिहारी आदि| ये सभी प्रवासी साहित्य के फलक को सुविस्तृत बनाने में सदा कर्मरत होते दिखाई पड़ते हैं|

प्रवासी साहित्य के कुछ मूल भूत तत्व निर्धारित हैं- भारतीय मूल के विदेशों में सर्जन, विश्व भाषा हिन्दी साहित्य लेखन, कथा-वस्तु व चरित्र-चित्रण, देशकाल या वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य| इन्हीं पहलुओं के आधार पर ही प्रवासी साहित्य लेखन हुए हैं| इन के अंतर्गत कविता, लघु कहानी, कहानी, उपन्यास, एकांकी, यात्रा वृत्त, समीक्षा, अनूदित लेखन आदि साहित्य विधाओं का सर्जन हुए हैं| प्रवासी रचनाकारों ने अपने लेखन में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को उजागर करने का प्रयास किया है| यह पाठकों के लिए नए जीवन मूल्य, नए जीवन संघर्ष, नए परिवेश तथा नए अनुभव का एहसास करता है| भारत से सुदूर रहकर भी वे भारत के नैतिक मूल्यों, मर्यादाओं एवं संस्कारों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए संघर्षरत भी हैं| अपनी निजी वैशिष्ट्य के कारण आज प्रवासी साहित्य व साहित्यकार हिन्दी साहित्य जगत में प्रतिष्ठा पाई है| अतएव प्रवासी साहित्य विधा का स्वरूप इतना विस्तृत है कि सभी विषयों की परिधि से होकर ही देशकाल की सीमा को पार करते हुए अनेकानेक मनोवृत्तियों को अभिव्यंजित कर आगे बढ़ रहे हैं|

प्रवासी रचनाकारों की भाषा अनुपम व अनूठा है| इनमें तत्सम, तद्भव, अरबी, फारसी, उर्दू, मराठी, पंजाबी, भोजपुरी, गुजराती तथा अंग्रेजी शब्दों व वाक्यांशों का यथेष्ट प्रयोग प्राप्य हैं| सहज- स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, सशक्त बिम्ब व प्रतीकात्मकता, आलंकारिकता, वाक्य विन्यास तथा सुसज्जित व सुस्पष्ट भाषा शैली आदि से वे अपने परिवेश से पाठकों से सीधा साक्षात्कार करती है| यह उनकी भाषा की जीवंतता तथा प्रौढ़ता को दर्शाती है|

यह तथ्य अत्यंत श्लाघनीय है कि हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने हेतु हिन्दी विद्वजनों, हिन्दी संगठनों तथा हिन्दी प्रेमियों के संयुक्त तत्वावधान में विगत कई वर्षों से विश्व हिन्दी सम्मेलन सम्पन्न हो रहे हैं| इन विश्व हिन्दी सम्मेलनों के पीछे यह अवधारणा रही कि प्रवासी साहित्य को ही बढ़ावा मिलेगा| इन सम्मेलनों के आयोजन व सहभागिता से विदेश में बसे जो प्रवासी रचनाकार हैं, उनको हिन्दी भाषा के प्रति अटूट आत्मविश्वास, लगाव व आवेग बढ़ने का सुअवसर भी प्राप्त हुए| अतएव हिन्दी सम्मेलनों के माध्यम से अब विश्व भाषा हिन्दी विकसित हो रही है, जिनमें प्रवासी साहित्यकारों के साहित्य का भी योगदान विलक्षण रहे हैं|

स्पष्टतः प्रवासी हिन्दी साहित्य अत्यंत सम्पन्न व विका सोन्मुख है| इनमें भारतीयता की महक साफ परिलक्षित हैं| ये साहित्य निर्मिती से हम परदेश रचनाकार के अनुभवों, संवेदनाओं एवं सोच- विचारों से तादात्म्य स्थापित कर सकते हैं और उनकी अपनी मातृभूमि व बंधु जन से विलग होने के विरहजन्य पीड़ा, नए परिवेश, नए समाज तथा नए संघर्ष पूरित स्थितिगतियों से खुद को ढालने के अनुभव का भी स्पष्टीकरण मिलते हैं| देशकाल सीमा को लाँगकर आज प्रवासी हिन्दी साहित्य विविध विषय व शैली को अपनाते हुए नई दिशा एवं दशा की ओर अग्रसर होते दिखाई पड़ते हैं| आशा है कि प्रवासी साहित्य का भविष्य मंगलमय हो|

संदर्भ संकेत

संपा. डॉ. कल्पना गवली, हिन्दी प्रवासी कथा साहित्य, डॉ. रेखा गौतम, प्रवासी साहित्य में मॉरिशस का योगदान, पृ. सं. ६९
डॉ. कमल किशोर गोयनका, हिन्दी का प्रवासी साहित्य, पृ. सं. ४७

राष्ट्रीय एकीकरण: जनजातीय भाषा और संस्कृति के विशेष संदर्भ में

-अजीत कुमार जोगी

सारांश: भारत सांस्कृतिक विविधता से भरा देश हैं, जहां कई जनजातीय समूह, वर्ग, जाति, धर्म और पंथ के लोग साथ-साथ रहते हैं. यह सांस्कृतिक विविधता जाति धर्म, लिंग, उम्र, भाषा और संस्कृति को प्रकट करती है. आदिवासी समुदायों में भी अलग-अलग भाषा और संस्कृति पायी जाती है. आदिवासी समाज के अस्तित्व में संस्कृति और भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है. भाषा तथा संस्कृति के कारण ही आदिवासी अन्य समाज से अपनी एक अलग पहचान स्थापित करते हैं तथा विपरीत परिस्थितियों में यही भाषा और संस्कृति ही उन्हें तेजी से एकजुट करती है.

समाज के कमजोर वर्ग की भाषा और संस्कृति के अध्ययन के साथ ही साथ उसको राष्ट्रीय महत्व के अवयव माने. बिना हम राष्ट्रीय एकता को चित्रित नहीं कर सकते हैं. अतः यह शोध पत्र राष्ट्रीय एकता की प्रक्रियाओं में आदिवासी समाज की भूमिका तथा उनकी भाषा और संस्कृति की गहन पड़ताल की गयी है.

[संकेत शब्द: आदिवासी संस्कृति, जनजातीय समुदाय, विकास, राष्ट्रीय विकास]

प्रस्तावना

आदिवासी समाज एक तथाकथित मुख्यधारा के समाज से अलग समाज है, जो मुख्य रूप से दुर्गम जंगल और पहाड़ में निवास करते है. आदिवासी समाज प्रकृति के अत्यंत ही निकट होते हैं तथा इनका जीवन प्रकृति की गोंद में फलता फूलता है. भरत की जनगणना 2011 के अनुसार, आदिवासियों की कुल जनसंक्या 8.6 प्रतिशत है. प्रजातीय दृष्टि से इन समूहों में नीग्रिटो, प्रोटो-आस्ट्रेलायड और मंगोलायड तत्व मुख्यत: पाए जाते हैं. यद्यपि नृतत्ववेत्ताओं ने नीग्रिटो तत्व के संबंध में शंकाएँ भी हैं. भाषाशास्त्र की दृष्टि से उन्हें आस्ट्रो-एशियाई, द्रविड़ और तिब्बती-चीनी-परिवारों की भाषाएँ बोलने वाले समूहों में विभाजित किया जा सकता है. भौगोलिक दृष्टि से आदिवासी भारत का विभाजन चार प्रमुख क्षेत्रों में किया जा सकता है : उत्तरपूर्वीय क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र और दक्षिणी क्षेत्र. भाषा और संस्कृति अपने आप में अद्विए है. जनजाति भाषा और संस्कृति जनजातियों के लिए महत्वपूर्ण होने के साथ ही साथ देश के एकता और विकास में भी सहायक है. जनजाति भाषा और संस्कृति का महत्त्व और जरुरत जितनी आदिवासियों के लिए है, उतनी अन्य वर्ग समूहों के लिए नही है. अगर जनजाति संस्कृति की बात किया जाये तो इसका महत्व और जरुरत जनजाति समाज के लिए आत्मा की तरह है. जनजातिये समूहों में भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा, बोली और संस्कृति पाई जाती है.

भारत की 705 जनजातियां कुल 7 छेत्रों में विभाजित है. जो कि अलग-अलग भाषा समूह के है, ये लोग मुख्य रूप से चीनी-तिब्बती भाषा, आस्ट्रो-एशियाटिक, द्रविड़ भाषा परिवार, प्रोटो-अस्ट्रेलयड इत्यादी समूह से आते है (जनजाति कार्य मंत्रालय, भारत सरकार). ऐतिहासिक रूप से जनजाति किसी भी भाषा परिवार से आते हों, परन्तु सब का अपना- अपना महत्त्व है. जनजाति भाषा और संस्कृति को राष्ट्रीय विकास के लिए समझाना और जानना जरुरी है. जनजाति भाषा और संस्कृति का ज्ञान योजना निर्माण के लिए भी आवश्यक है.

शिक्षा के क्षेत्र में जनजाति भाषाओं का उपयोग नही के बराबर हो रहा है, जिससे आदिवासी भाषा लुप्त होने के कगार में है. साहित्य सम्मलेन में आदिवासी भाषा और बोली की कमियां दिख रही हैं. अब तक नव आदिवासी सम्मलेन हुए है, परन्तु इस सम्मलेनों में जनजाति भाषा और बोलियों का उपयोग कम ही किया गया. देश के बड़े-बड़े जिसमे केन्द्रीय आदिवासी विश्वविद्यालय भी आदिवासी बच्चों को तो पढ़ाते हैं, परन्तु आदिवासी भाषा और बोली का उपयोग नही करते है (तलवार, 2016).

जनजातियो में राष्ट्रीयता

जनजाति समाज में राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रीय भावना को समझाना जरुरी है. वो क्या कारक व तत्व हैं, जिससे जनजातियों में राष्ट्रीय एकता फलती-फूलती है. किन-किन चीजों से जनजातियों में राष्ट्रीय एकता प्रभावित होती है. इस चीज़ का चिन्हांकन करना आवश्यक है. कैसे राष्ट्रीय एकता आदिवासी समाज में उत्पन होती है और वे किन परिस्थितियों में इसमें सहयोग प्रदान करते है ? इन सब चीजों को जाने बिना जनजातियो में राष्ट्रीय एकता को निर्धारित करना उचित नही होगा. जिस तरह तथाकथित मुख्यधारा के लोगों में राष्ट्रीयता को देखा और समझा जाता है, बिलकुल उसी प्रकार आदिवासी समाज को नही देखा जा सकता. क्योंकि जनजातियो में राष्ट्रिय एकता की भावना के उत्पन होने अथवा इसके विघटित होने

के भिन्न-भिन्न कारण और शर्ते हैं. हमें यह भी देखने की जरूरत है कि जनजाति विकास और कल्याण के लिए बनाई गई नीति और योजनाओ से क्या वे खुश और संतुष्ट हैं या शासन के प्रति किसी भी प्रकार की नाराजगी जनजातियो में तो नही है. यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जनजातियों से सम्बंधित बनने वाली नीतियां और योजनाएँ उनकी भाषा और संस्कृति, पहचान, सम्मान और महत्व के संदर्भ में होनी चाहिए.

सरकार जनजाति भाषा और संस्कृति को राष्ट्रीय पटल पर कैसे देखती है और उन्हें कैसा दर्जा देती है. इन सब बातों का स्पष्टीकरण होना भी आवश्यक है. तभी हम जनजातियो के मध्य राष्ट्रीयता की भावनाओं को अच्छे से समझ सकते हैं.

आदिवासी विद्रोह और आन्दोलन

जनजाति विद्रोह और आन्दोलन के अनेक निश्चित कारण हैं. ज्यादातर विद्रोह और आन्दोलन जनजातियों में विकास, अधिकार और शोषण तथा असंतुष्टि से शुरू हुआ है. जनजाति असंतुष्टि को हम स्वतंत्रता के पूर्व, स्वतंत्रता के बाद तथा वर्त्तमान समय में देख सकते है. तीनों ही कालों में जनजाति आन्दोलन और विद्रोह देखने को मिलता है. जनजाति विद्रोह और आन्दोलन के इतिहास में ब्रिटिश शासन तथा भारतीय शासन काल में बहुत सारे विद्रोह और आन्दोलन हुए. ज्यादातर जनजाति विद्रोह जमींदार, साहुकार एवं सरकारी ऑफिसर्स के खिलाप हुए, जो की वास्तव में जनजातियो के शोषणकर्ता थे.

आदिवासी भाषा और उनकी संस्कृति की अवहेलना करना राष्ट्रीय एकता के लिए बड़ा बाधक है. शासन के विरुद्ध विभिन्न आदिवासी आन्दोलन, क्रांति तथा विद्रोह औपनवेशिक काल में देखने को मिला. ब्रिटिश शासन के दौरान आदिवासी लोग विभिन्न प्रकार के भाषाई, सामाजिक, संस्कृति तथा राजनितिक समस्यायों का सामना कर रहे थे. इस समय ब्रिटिश साशन के द्वारा आदिवासियों का तथा आदिवासी संसाधनों जैसे – जल, जंगल और जमींन का असीमित शोषण हुआ. आदिवासी समूह जमींन, जंगल, जल, संस्कृति, भाषा, आर्थिक, तथा आत्मसम्मान की लड़ाई लड़ रहे थे. आदिवासी तथा आदिवासी संसाधनों का शोषण के देश के कई हिस्सों में देखने को मिला. जिसके परिणामस्वरूप, आदिवासी समुदाय में ब्रिटिश शासन के नीति और योजनाओ का विरोध किया.

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान कई आदिवासी विद्रोह हुए, उनमें से मिजो (1890), कोल (1794), मुंडा (1889), दफ़ला (1874), खासी और गारो (1829), कचारी (1839), संथाल (1843), मुरिया गोंड (1886), नागा (1844), भुइया (1868), और कोंध (1817) मुख्य हैं (ममता अग्रवाल, 2010). जिसमे संथाल विद्रोह किधू और कानू के नेत्रित्व में भूमिकर अधिकारियो के हाथो दुर्व्यवहार, पुलिस के दमन एवं जमींदार व् साहूकार की मसूलियो की विरोध में हुआ और कंपनी का शासन ख़त्म करने की बात कही तथा अपने आप को स्वतंत्र घोषित किया.

मध्य भारत में ज्यादातर जनजाति विद्रोह शोषण के विरोध हुआ है, जिसमें जनजातियो की जमीन पर शोषणकर्ता का अधिकार और आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से शोषण मुख्य (पूजा मंडल 2010) हैं. इसी क्रम में 1828 से 1830 तक असम के अहोम वर्ग के लोगो ने कंपनी का विरोध किया, क्योकि अहोम प्रदेश को कंपनी अपने अधिनस्थ करना चाहते थे. परिणाम स्वरूप, अहोम लोग अपना राज्य घोषित कर कंपनी के खिलाफ विरोध व विद्रोह किया. खासी विद्रोह 1833 में हुआ, जिसमें ब्रह्मपुत्र घाटी और सिलहट को गारो पहाडियों में जोड़ने के विरोध में नक्सली नेता तीर्थ सिंह के नेत्रित्व में अंग्रेजो के विरुद्ध मुहीम चलाया. 1830 के भील विद्रोह, कृषि सम्बन्धी समस्यायों को लेकर हुआ, जिसमें अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ भीलों के आदिम जातियों के द्वारा किया गया. कोल विद्रोह अंग्रेजी शासन से उत्पन्न बेरोजगारी के विरुद्ध में 1829, 1839, 1844, 1849 में हुआ.

इसी प्रकार मुण्डा विद्रोह 1899—1900 में हुआ, जिसका प्रमुख कारण मुण्डा जनजाति के सामूहिक खेती में जागीरदारों और ठेकेदारों का हस्तछेप था. इन जागीरदारों और ठेकेदारों को अंग्रेजो का संरक्षण प्राप्त था. इस विद्रोह में विरसा मुण्डा के नेतृत्व में 6000 मुंडाओ ने तीर, तलवार, और कुल्हाडियो से लैस होकर इस विद्रोह में भाग लिया. इस प्रकार ब्रिटिश शासन काल में भारत के विभिन्न भागो में बहुत सारे विद्रोह और आन्दोलन हुए.

विद्रोह और आंदोलनों के कारण

समस्त जनजाति विद्रोह और आन्दोलनों का मूल अधार जनजातियो से उनके जल, जंगल, जमीन और सम्मान को लेकर असंतुष्टि थी. फिर भी जो मुद्दे आदिवासियों के प्रतिरोध के केंद्र में रहे, उनका संबंध मुख्यत: उनकी परम्परागत जीवन पद्धति पर होने वाले हमलों से था. उन्होंने जंगल के इस्तेमाल संबंधी अपने परंपरागत अधिकारों में कटौती करने या भारी कर लगाने के सरकारी प्रयासों का विरोध किया. गैर-आदिवासियों का हस्तछेप, अपनी ही जमीन पर पूर्ण अधिकार ना होना बिद्रोह का कारण बना. ब्रिटिश काल में निर्मित नए जंगल कानूनों को आदिवासी समाज ने

अपने स्वाभाविक अधिकारों पर अतिक्रमण के रूप में रेखा. इन कानूनों ने भारतीय जंगलों पर पूरी तरह से सरकार का अधिकार स्थापित कर दिया. दूसरे शब्दों में, ब्रिटिश राज की बढ़ोतरी ने उनकी शक्ति, स्वतंत्रता और संस्कृति के स्वायत्त क्षेत्रों को मिटा डाला. इसने आदिवासियों और ब्रिटिश राज को एक दूसरे के विरोध खड़ा कर दिया, जिसने टकराव व हिंसक प्रतिरोधों को जन्म दिया. जंगलों पर राज्य के एकाधिकार और उनके व्यापारिक दोहन व उनके प्रयोग पर कर लगाने के कारण, एवं आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी लोगों के आगमन तथा उनके द्वारा आदिवासी किसानों के शोषण ने भी आदिवासी विद्रोहों को उत्पन्न किया.

आदिवासियों में नक्सली आन्दोलन बिहार, पश्चिम बंगाल, आँध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश में हुआ. इसका मुख्य कारण उदारीकरण की नीति भी थी. आदिवासियों का शोषण होता रहा तथा जिसके कारण उनमें गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, और सांस्कृतिक ह्रास देखने को मिला (पूजा मंडल 2010).

वर्तमान समय में जनजातियाँ और राष्ट्रीय एकता

वर्त्तमान में आदिवासी समाज के कल्याण और उसके विकास की स्थिति क्या है? क्यो हमें आदिवासियों की स्थिति का अवलोकन तथा मूल्यांकन करने की भी जरूरत है. आदिवासी भाषा और संस्कृति का राष्ट्रीय पटल पर क्या स्थिति है, और राष्ट्रीय एकता के क्रम में उन्हें कहाँ पर स्थान देती है? वर्तमान समय में, जहां सरकारी योजनाएँ, नीतियाँ और विकास किसी समुदाय विशेष की भाषा और संस्कृति को अधार मान कर नियोजित और निर्धारित किए जा रहे हैं। शिक्षा को मातृभाषा मे पठन-पाठन की बात कही जा रही है. वैश्विक और राष्ट्रीय अनुदान और बजट किसी जाति, समुदाय की संख्या, भाषा और संस्कृति आधारित निर्धारण किया जा रहा है। आज जहां लोग संस्कृति और भाषा को अपने समाज की प्रतिष्ठा और सम्मान के रूप में, इसके प्रचार-प्रसार और स्थापित करने के होढ़ में हैं. ऐसी परिस्थिति में स्थानीय, राजकीय, और राष्ट्रीय स्तर पर जनजाति संस्कृति और भाषाओं को राष्ट्रीय महत्व के अवयव ना समझते हुए, इसकी अवहेलना करना निश्चित रूप से जनजाति समूहों में असंतुष्टि का सृजन करता है. परिणामतः राष्ट्रीय एकता बाधित होना स्वाभाविक है.

जनजाति समाज और राष्ट्रीय एकता

आदिवासी समाज के विकास, कल्याण और उनकी भाषा, संस्कृति की अवहेलना भी किया जा रहा है. इसलिए आदिवासी समाज को देश हित के लिए एक मंच पर लाना चाहिए. निश्चित रूप से, आदिवासी समाज शासन के द्वारा राष्ट्रीय हित या राष्ट्रीय एकता के लिए प्रायोजित किसी भी प्रकार के प्रयास में भाग नही लेना चाहेंगे. क्योंकि आदिवासी शासन के विकास नीतियों और योजनाओ से हताश तथा निराश है. भारतीय प्रशासन आदिवासी कल्याणकारी तथा विकास मूलक नीतियों और योजनाओ के आभाव में पूर्ण शासन करने में असमर्थ रहे. यह एक बड़ा प्रश्न है. इस परिस्थितियों में राष्ट्रीय एकता की क्या स्थिति थी, क्या आदिवासी राष्ट्रीय एकता के अनुक्रम में कोई सहयोग करते थे या किस ढंग से करते थे? क्या राष्ट्रीय एकता आदिवासियों के सहयोग के बिना बाधित हो रही थी? क्या आदिवासी शासन को सहयोग करने के बजाय इसके विरोध में कार्य करते थे? ये सब एक बहुत बड़ा प्रश्न है (मेहर, 2016).

स्वतंत्र भारत में आदिवासियों के लिए कुछ योजना बनाई गई, परन्तु वे नीतियाँ आदिवासी समाज का कल्याण और विकास करने में विफल रहीं या योजनाओं का क्रियान्वयन जमीनी स्तर पर नही हुआ. जिससे आदिवासी समूह इन योजनाओ से लाभ प्राप्त नहीं कर सके, जिससे उनका मुख्यधारा में नहीं आ सके. अंततः, आदिवासी समाज शासन की कार्यप्रणाली से संतुष्ट नही थे.

अतः हम कह सकते है कि भरतीय प्रशासन का रवैया आदिवासी नियम कानून के विरोधी था. इस प्रकार विभीन सरकारें आदिवासी समाज की आवश्यकताओं की अवहेलना करते आया है, जिससे आदिवासी समाज प्रभावित हुआ है. ब्रिटिश और भारतीय शासन के दौरान आदिवासियों के आत्मसम्मान तथा स्वाभिमान की भी अवेलाना की गई. इसी क्रम में आदिवासी भाषा और संस्कृतियों की भी अवहेलना की गई. शासन के द्वारा आदिवासी धर्म, परम्परा, संस्कृति, रीति-रिवाज और उनके स्तानीय नियम-कानूनों की भी अवहेलना की गई. इस प्रकार ब्रिटिश और भारतीय शासन के द्वारा देश के विभिन्न लोगो को अथवा प्रत्येक वर्ग के लोगो को देश हित, विकास अथवा राष्ट्रीय एकता के लिए एक सामान मंच पर लाने में असमर्थ रहे.

आदिवासी समाज को आधुनिक समाज के साथ एक मंच पर लाने में सरकार असमर्थ रही है. आदिवासी समाज भौगोलिक, शारीरिक, सांस्कृतिक विसमनाओं के अधार पर भी विभिन्न वर्गों और समूहों से भिन्न है. यह समाज भाषाई विविधता के आधार पर भी विभिन्न समूहों में बंटे हुआ है. जिससे इस समाज को एक मंच पर किसी विशेष उद्देश्य के लिए शासन असमर्थ रहा. आदिवासी सामान में विविधाताओ के अलावा उसकी विभिन्न प्रकार की मांगे जैसे

सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक मानकों का भी उसके संतुष्टि के स्तर तक पूर्ण नहीं होना भी उन लोगो के बीच में असंतुष्टि का एक बड़ा कारण रहा है.

भारतीय संविधान में 22 भाषाओँ को मान्यता दी गई है, पर इसमें से कितनी भाषाएँ जनजाति की भाषा है, यह एक यथोचित प्रश्न है. जनजातिओं की भाषाओँ को बोलने, लिखने और पढ़ने में उपयोग में नही लाया जा रहा है. जनजाति भाषाओ को नज़रअंदाज किया जा रहा है. भारत में विभिन्नता पायी जाती है, लेकिन अनेकता में एकता भी पाई जाती है. परन्तु सांस्कृतिक और भाषाई दृष्टि से विभेद भी है, एकता से सम्बंधित भावना समाप्त होते जा रही है. परिणामस्वरूप, अब एक राज्य के निवासी दूसरे राज्य की भाषा तथा रीति-रिवाज एवं परम्परा को भी सहन नही कर रहे है. संस्कृति की संकीर्णता के साथ-साथ जब देश में और ऐसी विघटनकारी प्रवित्तियां विकसित हो गई है. जिनके कारण राष्ट्रीय एकता एक जटिल समस्या बन गई है. जनजाति भाषा और संस्कृति तो औरों से परे है ही तथा साथ ही गैर-आदिवासियों की भाषा और संस्कृतियों से भी कोशों दूर है.

निष्कर्ष

शासन के द्वारा जहां एक तरफ आदिवासी जनसँख्या, संस्कृति, भाषा और इससे सम्बंधित विकास की नीतियों और योजनाओं को राष्ट्रीय पटल पर दिखाया और भुनाया जा रहा है. हमारे देश में आदिवासी कल्याण और विकास की ढेरों सम्भावनायें हैं. आम आदिवासी भाषा और संस्कृति का पूरा सम्मान करते हैं. वहीं दूसरी तरफ, आधुनिक जिंदगी की चकाचौंध में आदिवासी भाषा और संस्कृतियों को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान नही मिल पा रही है. जिससे आदिवासी और जनजाति समाज में असंतुष्टि का माहौल है. जिसके कारण आज विभिन्न प्रकार के आदिवासी विद्रोह और आन्दोलन को जन्म दिया है. आदिवासी भाषा व संस्कृति को महत्व नही दिये जाने से पहचान संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है. पहचान और सम्मान के आभाव में राष्ट्रीय एकता प्रभावित हो रही है. क्योंकि आदिवासी समाज शासन द्वारा निर्धारित राष्ट्रीय एकता के मंच पर सहभागी नही होता. पारस्परिक असहभागिता देश के विकाश के साथ ही राष्ट्रीय एकता में भी बाधक है.

अंत में यह कहा जा सकता है कि आदिवासी भाषा और संस्कृति शासन के द्वारा राष्ट्रीय महत्व के संपत्ति के रूप में पहचाना और समझा जाना चाहिए. इसके साथ-साथ आदिवासी भाषा और संस्कृति को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान और महत्त्व दिया जाना चाहिए. शासन की आदिवासी नीति और विकास की योजनायें आदिवासियों के लिए लाभकारी और हितकर होनी चाहिए.

सन्दर्भ सूची

भारत सरकार, भारत की जनगणना 2011, कार्यालय महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त, भारत,नई दिल्ली।

सरिता, महार (2016). राष्ट्रीय एकता पर निबंध, https://www.hindivarta.com/essay-national-unity-hindi-rashtriya-ekata/ से प्राप्त किया गया.

ममता, अग्रवाल (2010). भारत में आदिवासी आन्दोलन, http://www.historydiscussion.net/essay/tribal-movements-in-india/1797

मंडल, पूजा (2010). भारत में स्वतंत्रता के पहले और बाद में आदिवासी आन्दोलन, http://ww.yourarticlelibrary.com/india-2/tribal-movement-in-india-before-and-after-independence-2796-words/6141

तलवार, वीर भारत (2013). आदिवासी विमर्श: धर्म, संस्कृति, और भाषा का सवाल कहाँ है? https://tirchhispelling.wordpress.com/2013/04/29/%E0%A4%86%E0%A4%A6%E0%A4%BF%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B8%E0%A5%80-%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%AE%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%B6-%E0%A4%A7%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AE-%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%8D/, से उद्धरित.

☆☆☆

समकालीन आदिवासी कविता
(संदर्भ: आंदोलन, इतिहास और पर्यावरणीय बोध)

-डॉ.सी.सुरेश
हिंदी विभाग
श्री कृष्णदेवराय विश्वविद्यालय
हैदराबाद-515003
मोबइल-9441000396
इमेल-sureshchikkappa@gmail.com

वर्तमान में आदिवासी को मूलवासी, वनवासी, प्राचीनवासी, अनुसूचित जनजाति के रुप में जाना जाता है। इन नामकरणों से ही पता चलता है कि आदिवासी के प्रति भारतीय जन सामन्य की क्या दृष्टि रही है ? भारत के प्राचीनतम मूल निवासी वैसे आदिवासी ही हैं। प्राचीन काल से देखा जाये तो आदिवासी को अनार्य के रुप में चित्रित किया गया है। भारत में आर्यों के प्रवेश के बाद आर्य-अनार्य के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में आर्यों ने प्रशिक्षित कौशल, कुटिल नीति एवं षड़यंत्र अपना के अनार्यों को हराया। उनके स्थानों को अस्त-व्यस्त करके उनको भगा दिया। आदिवासी आखिर जंगल को आधार मानकर वहाँ अपना जीवन मैत्रीपूर्ण चलाने लगे। प्राचीन काल से आज तक आदिवासी जंगल को ही अपना आधार मानकर जीवन को चला रहे हैं लेकिन जब अंग्रेजों ने भारत में प्रवेश किया तब से आदिवासियों को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। अंग्रेजों ने व्यापार की वृद्धि के लिए जंगलों को हस्तगत करके जंगल में भरी हुई खनिज संपदा को लूटने के कार्य को तीव्रता प्रदान की। अंग्रेजों ने आदिवासियों से बेगार करा के उनका शोषण किया। अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद भी भारत सरकार ने अंग्रेजों की नीति को अपनाकर आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल करने के कार्य को बढ़ाया। इसके साथ-साथ उनके अस्तित्व को भी संकट में डाल दिया।

आदिवासी साहित्य का प्रधान रूप मौखिक या वाचिक रूप में उपलब्ध है। आदिवासियों की कामना, आकांक्षा कहावत, लोक कथा, लोकगीत आदि मौखिक रुप में छुपा हुआ है। समकालीन आदिवासी कविता वर्तमान में नयी पीढ़ी के रचनाकारों द्वारा सामने आ रही है। इन कविताओं में आदिवासियों की वेदना, संघर्ष, अकांक्षा और कामना व्यक्त हो रही है। समकालीन कविताओं में नया भाव-बोध, यथार्थ एवं आँचलिक भाषाएँ उभर कर सामने आ रही हैं। आदिवासी कविता किसी भी तरीके के अन्याय का विरोध करती है। इस रूप में यह समकालीन विमर्शों के साथ जुड़ जाती है। दलित कविता भी किसी भी तरीके के मानवीय अन्याय, अत्याचार और शोषण का विरोध करती है। इस रूप में विरोध, प्रतिरोध का स्वर दलित एवं आदिवासी कविता को एक मंच पर लाता है।

आदिवासी कविता जनता में चेतना के साथ-साथ आंदोलन को आगे बढ़ाने में भूमिका भी निभा रही है। समकालीन आदिवासी कविता जनता में जागरण के विचार को फैलाती है। अर्थात् आदिवासी कविताएँ खुद गरजती हैं और गरजने को प्रेरित करती भी है। जैसे-

"एक बूंद पानी के लिए
तड़प-तड़प
जाएंगी
हमारी पीढ़ियां
.....
क्या कभी सुना है
एक पर्वत के बदले
उगाओ दूसरा पर्वत"

उपरोक्त कविता के माध्यम से ग्रेस कुजूर भविष्यवाणी करती हैं कि वर्तमान समय का मध्यवर्ग वृक्षारोपण के कार्य को हजारों और लाखों में लगाकर अपने दायित्वबोध से मुक्त हो जाता है। वही मध्यवर्ग विकास की गति को तीव्र करने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों और कार्पोरेट समर्थित राज्य या राष्ट्रों का समर्थक, अनुचर बनकर पहाड़ों को बारूदों से नष्ट करने पर तनिक भी नहीं सोचता। इस तरह मध्यवर्ग का अवसरवादी, दोहरे मानदंड वाला चरित्र उभरकर सामने आता है। कवयित्री की चिंता है कि वनस्पति जगत एवं पहाड़ की विनाश लीला को रोका जाय। दिकू लोग अपने व्यापार को केंद्र में रखकर पहाड़ों को तोड़ रहे हैं, साथ-साथ जंगल को मिटा रहे हैं धरती को बंजर बना रहे हैं इसीलिए हे आदिवासी एवं गैर-आदिवासी सभी नींद से जागो। एक बार हमारे भविष्य के बारे में समझो। प्राचीन काल से लेकर अब तक प्रकृति की सुविधायें घटती जा रही हैं। वातावरण में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। एक वृक्ष की जगह दूसरा वृक्ष लगा

सकते हैं लेकिन एक पहाड़ की जगह क्या दूसरा पहाड़ तुम रोप सकते हो ?

"इसलिए फिर कहती हूँ
न छेड़ो प्रकृति को
.....
न तुम होगे
न हम होंगे!"

उपरोक्त कविता में हमें प्रकृति को न छेड़ने की चेतावनी मिलती है। धरती पर समस्त जीवों की प्रकृति में परिवर्तन हो रहा है। इसका प्रभाव जनता के उपर प्रत्यक्ष और परोक्ष रुप से पड़ता है। वर्तमान में देखा जाये तो प्राकृतिक ध्वंस न रुकेगा तो मानव एव मानवेत्तर जीवों को नुकसान पहुँचेगा। अगर भविष्य में जीवों की पहचान इस धरती पर देखनी है तो प्रकृति को न छेड़ना व न प्रदूषित करना चाहिए।

प्रकृति की रक्षा में ही मनुष्य की रक्षा संभव है।

"वे भागती हैं
वे भागती हैं
बेतहाशा पश्चिम की ओर.....!
बचाओ अपनी बहनों को
.....
और देर रात गए लौटती है
खुद को बेचकर बाजार के हाथों"

उपरोक्त कविता में आदिवासी स्त्रियों की दयनीय स्थिति का चित्रण दिखाई देता है। आदिवासी स्त्रियाँ श्रमिक एवं शारीरिक शोषण में पिस रही हैं। कुछ स्त्रियाँ जंगल में बलात्कार की वेदना झेल रही हैं। उस के साथ-साथ कुछ आदिवासी स्त्रियाँ अपनी गरीबी के कारण अपना शरीर बेच रही हैं। इस तरह के शोषण से आदिवासी स्त्रियों को मुक्ति कब मिलेगी ? मिलेगी भी या नहीं ! आदिवासी पुरुष एवं स्त्री दोनों ने इस वस्तु स्थिति से निकलने का प्रयास तो किया है लेकिन उन्हें कामयाबी नहीं मिल पाई है।

"इन खतरनाक शहरी जानवरों को
पहचानो चुड़का सोरेन
पहचानो!!
.....
इस पेचदार दुनिया में रहते
तुम इतने सीधे क्यों हो चुड़का सोरेन??"

उपरोक्त कविता के माध्यम से निर्मला पुतुल चुड़का सोरेन पात्र के माध्यम से जनता में चेतना का प्रसार करती है। वे कहती हैं कि- शहरी लोगों के षड्यंत्र एवं कुटिल नीति को पहचानो, जब तक तुम शांत एवं सीधी रहोगी तब तक ये लोग तुम्हें लुटते ही रहेंगे। तुम्हारी जमीन एवं घर में प्रवेश करके तुम्हारे उपर ही जंगल में प्रवेश पर पाबंदी ये ही लोग लगायेंगे। इस तरह का अन्याय एवं शोषण का विरोध तुम्हें करना होगा चुड़का सोरेन और तुम चुप रहना छोड़ दो। सीधापन को त्याग के अन्यय के विरुद्ध संघर्ष करो।

"बिरसा तुम्हें कहीं से भी
आना होगा
घास काटती दराती हो
लकड़ी काटती कुल्हाड़ी
खेत-खलिहान से मजदूरी से
.....
खेतों की बयार बन कर
लोग तेरी वाट जोहते !"

बिरसा मुंडा को आदिवासी अपना नायक मानते हैं। बिरसा मुंडा ने मुंडा जाति के लोगों और अन्य आदिवासी जन-समुदायों को संगठित करके झारखंड में अंग्रेजों एवं दिकू लोगों के खिलाफ आंदोलन किया था। बच्चे से लेकर वृद्धों तक बिरसा मुंडा का प्रभाव प्रत्येक्ष या परोक्ष रुप से वहाँ के जन-समुदायों पर देखा जा सकता है। आदिवासी बिरसा को भगवान का प्रतिरुप मानते हैं। रांची जेल में धोखेबाजी से बिरसा की हत्या की गयी। आदिवासी आज भी बिरसा के उपर लोकगीत गाते हैं। संकट के समय उन्हें स्मरण करते हैं। रचनाकार इस कविता में यह कहता है कि- वर्तमान में आदिवासियों की समस्याओं को दूर करने के लिए बिरसा को पुनः आना होगा।

यहाँ बिरसा के माध्यम से रचनाकार आम जनता को बिरसा बनके आगे बढ़ने को कहता है। हर एक आदिवासी को बिरसा की तरह अपने हक के लिए और अधिकारों के

लिए संघर्ष की राह पर चलना होगा।

"मेरे पूर्वजों व मेरी स्मृतियों का
अभिन्न हिस्सा है-बबूल
प्रकृति की गोद में मानव का
पोषक रहा है-बबूल
.....
पर,
जानना, मानना, चाहता नहीं
महत्व उसका"

उपरोक्त कविता में रचनाकार ने बबूल वृक्ष के महत्व को हमारे सामने रखा है। सही रुप में देखा जाय तो वृक्षों से मानव और मानवेतर प्राणि-समूह बहुत सारे लाभ उठा रहे हैं। उपयोगी पेड़ से कई प्रकार के प्रयोजन सिद्ध होते हैं- जैसे लकडी देना, फल देना, थकावट दूर करने के लिए छाया देना, प्राण वायु देना इत्यादि। मानव वृक्ष से सहायता तो प्राप्त करता है लेकिन उसके महत्व को आज वह भूलता चला जा रहा है इसलिए वह उनके उपर ही कुल्हाड़ी से प्रहार करने लगा है। इससे पता चलता है कि अपना अवसर पूर्ण होने के बाद आनेवाली पीढ़ियों के बारे में बिना सोचे वृक्षो को काटना अमानवीयता का सूचक है। वृक्ष प्रकृति का नैसर्गिक हिस्सा है।

"उस बबूल को छांगा, नंगा
किया जा रहा है
उसके मूल में ही मेरा अस्तित्व
पर,
अब गाँव नंगा, बेढ़ंगा, उमंगहीन,
रूपविहीन लगता है-बबूल के
समूल खात्मे के बाद"

इस कविता में अस्तित्व का सवाल उठता है आदिवासी का नाम सुनते ही जंगल का बिम्ब अपने आप दिमाग में आ जाता है। आदिवासी जंगल को आधार मानकर रहते हैं। उनका आस्तित्व वृक्षों से जुड़ा हुआ है। इसलिए इस कविता में कवि कुछ सवाल उठाता है कि वृक्ष मिटेगा तो मनुष्य का अस्तित्व भी खतरे में पड़ेगा। मनुष्य एवं वृक्ष का एक-दूसरे से नाभिनालबद्ध रिश्ता है।

समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी काव्य का स्वरूप कुछ भिन्नताओं और मनुष्य की शाश्वतता को लेकर आया है। इसमें आंदोलनधर्मी चेतना और गहरा इतिहास-बोध समया हुआ है। मनुष्य की वैश्विक चिंताओं में शामिल पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी का संकट आदिवासी काव्य का बुनियादी विशेषता है। इस रूप में देखें तो आदिवासी काव्य में मनुष्य जीवन की समकालीन समस्याओं का समावेशन इसे वास्तविक एवं यथार्थ चेतना संपन्न करता है। आदिवासी-काव्य में मनुष्य और प्रकृति के अभिन्न रूप की संवेदना की ईमानदारीपूर्वक अभिव्यक्ति हुई है।

1. समकालीन आदिवासी कविता-सं.हरिराम मीणा, पृ.सं-25
2. समकालीन आदिवासी कविता-सं.हरिराम मीणा, पृ.सं-25-26
3. समकालीन आदिवासी कविता-सं.हरिराम मीणा, पृ.सं-29
4. समकालीन आदिवासी कविता-सं.हरिराम मीणा, पृ.सं-29
5. समकालीन आदिवासी कविता-सं.हरिराम मीणा, पृ.सं-34
6. समकालीन आदिवासी कविता-सं.हरिराम मीणा, पृ.सं-73
7. समकालीन आदिवासी कविता-सं.हरिराम मीणा, पृ.सं-74

★ ★ ★

'सच का सामना' – दलित स्त्री आत्मकथा के विशेष संदर्भ में

डॉ. पार्वती गोसाई
आसि. प्रोफेसर,
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,सरदार पटेल विश्वविद्यालय,
वल्लभ विद्यानगर, आणंद, गुजरात
चलभाष : 9773230579
अणुडाक : parvgosai23@gmail.com

" निजी जागीर नहीं होती आत्मकथाएँ
इसीलिए मुमकिन नहीं हो सका
लिखना उन्हें
सामन्तीय समयों में
आत्मकथाओं के मुक्त संसार में
नीज का तर्पण जरूरी है
आत्मा की तरह
नया जन्म पाने के लिए
सृजन की बेशुमार हलचल का
हमारे जीवन की हदों में कैद होना
हमारे आत्मा की कथा की तरह
हमारे जीवन की शक्ल में बँधे
इतिहास के विस्तार को
क्योंकि लिखे बिना आत्मकथा अपनी
चुकता नहीं होगी इतिहास के प्रति कर्जदारी अपनी
नहीं मिलेगी मुक्ति
नहीं आजादी
लिखने से ।।"१

समाज में सच कहना खुलकर बोलना, उनको सुनना सबके बस की बात नहीं। और उनके लिए तो और ज्यादा मुश्किल है जो समाज में दमित स्थिति में है। जैसे कि दलित, आदिवासी, स्त्री आदि। स्त्री का तो बोलना ही मना है। अगर कोई कुछ साहस भी कर तो उसे उच्छशृंखल, कुलटा, बेहया तंज कस कर चुप कर दिया जाता है। अगर स्त्री दलित है तब तो उसके लिए जी लेना ही सबसे बड़ा वरदान है। उसके विचारों की अभिव्यक्ति को तो दरकिनार ही कर दिया जाता है। पर कहते हैं कि जिसे आप जितना डराओगे, धमकाओगे, दबाओगे वह उतना ही बलवत्तर होकर अपने को खड़ा करता है। दलित स्त्री का भी ऐसा ही है। भारतीय समाज में स्त्री होना ही असुरक्षित होना है। सिर्फ स्त्री होने के कारण ही आपकी हत्या हो सकती है। जन्म लेने से पहले भी और जन्म लेने के बाद भी। पर्स में एक भी रुपया न हो लेकिन राह चलते स्त्री होने के कारण अपहरण हो सकता है। उम्र चाहे कोई भी हो हवस की नजरे शीकार करना नहीं भूलते। हालात ऐसे हैं कि पालतू या घरेलू ही क्यों न हो, कभी भी कोई पुरुष रूपी कुत्ता पागल हो सकता है। सिर्फ स्त्रियाँ अपराध कारित करने के अनुकूल सृजित होना ही पर्याप्त होता है। हमारे समाज की यह ऐसी भयावह सच्चाई है कि हम सब मनोरोगी हो गए हैं। ऐसे मनोरोगी समाज में एक और पुरुष से दूसरी और अपनी ही स्त्री बिरादरी से तो तीसरी और खुद से भी लड़ना पड़ता है। बहुत कम स्त्री इन सब में सफल हो पाती है।

साहित्य इन सबके लिए एक माध्यम है अभिव्यक्ति का। किसी कविता के जरिए दो आंसू बहा लेना, कहानी के जरिए भड़ास निकाल लेना, स्त्री के लिए एक मात्र झरिया है। साहित्य के माध्यम से खासकर आत्मकथा के माध्यम से स्त्री लेखिकाओं ने उन्मुक्त होकर अपने यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। भारतीय नारीवाद साहित्य के आत्मकथा स्वरूप में सबसे ज्यादा सशक्त होकर मुखर हुआ है। आत्मकथा सिर्फ निज की अभिव्यक्ति नहीं है। इसमें लेखक खुद के अनुभव का पुनर्चक्रण भी करता है। इसमें कथ्यों को तथ्य बनाकर खुद को नई दृष्टि से पुनः देखने की प्रक्रिया होती है। हिंदी में आत्मकथा के विकास की गति शुरू में धीमी रही। पर जब से हाशिये के समुदायों की रचनात्मकता का विस्फोट हुआ तो उसमें भी गति आ गई। हिंदी में सबसे ज्यादा दलित लेखकों का सबसे ज्यादा जोर आत्मकथा लेखन पर ही रहा है। क्योंकि इसी माध्यम से उन्होंने जैसा भुगता, उसे वह कह सकते थे। आत्मकथाओं में खासकर दलित स्त्री स्वर गायब ही था। पर पिछले दो दशकों में जी नारीवादी दृष्टि का उदय हुआ है, वह लिंगभेद की राजनीति के इर्द-गिर्द घूमती रही है। जातिवादी दृष्टिकोण से ग्रस्त दलित स्त्री को सबसे ज्यादा प्रताड़ित किया है।

दलित समुदाय की उन्नति व विकास को उनके समुदाय की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के माध्यम से मापा जा सकता है। अंबेडकर ने दलित महिला फेडरेशन में 1945 में कहा था – "औरतों को अपने जाति के साथ उनके बराबर खड़ा होना चाहिए, दास - दासी की तरह नहीं, बल्कि मित्र की तरह। हाशिये के लेखन में भारतीय समाज के हर पिछड़े वर्ग का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जा रहा है, जहाँ समाज में प्रत्येक वर्ग स्त्री तरह दलित है, वहां निम्न वर्ग व वर्णन की स्त्री को दोहरा और तीहरा दलित माना गया है। साहित्य में उनकी आवाज अब तक दर्ज नहीं हुई थी। क्योंकि उनके संघर्ष व आंदोलन का एक अहम मुद्दा शिक्षा भी रहा है। लेखन में प्रचलित विधाओं और मानव डंडों को छोड़कर आत्मकथा विधा का चुनाव क्यों किया गया। यह सिर्फ शिल्प - संरचना या रचनात्मकता से जुड़ा साहित्यिक सवाल नहीं है। आत्मकथा को खासकर स्त्री लेखिकाओं द्वारा रचनात्मकता स्तर पर विद्या के रूप में चुना। दलित विमर्श वह लेखन के विकास की धारणा से जुड़ा सवाल है

। क्योंकि दलित महिलाओं में भी जो थोड़ा ज्यादा पढ़े-लिखी महिलाएँ थी वह रसोई घर में छिप-छिप कर अपने जीवनानुभव को दर्ज करना, नाम बदलकर या कभी-कभी पुरुष के नाम से भी लिखा करती थी। अपने लेखन को छुपवाना, छपी हुई पटरी को घरवालों से छिपाना, अपने पांडुलिपियों को चीनी के डिब्बे में, चावल के साथ सुरक्षित रूप से छुपाना आदि भी होता था। इसके पीछे का कारण सिर्फ यही था कि स्त्रियां पढ़ी- लिख लेगी तो घर परिवार के प्रति लापरवाह, गैर जिम्मेदार हो जाएगी। यह बात कई सारी दलित स्त्रियों द्वारा लिखी गई आत्मकथा में स्पष्ट की गई है ।जब वह अपनी बात आत्मकथा के माध्यम से कहती है तो पुराने सारे मिथक भी टूट गए। जीवन को यथा कथा में लिखना उनका साहस नहीं, बल्कि समाज को परिवर्तन करने का अंतिम झरिया भी था, जिसमें वह कामयाब हुई। सामान्य स्त्री से दलित स्त्री की आत्मकथा कई मायनों में भिन्न एवं पठनीय है।

दलित स्त्रियों द्वारा सबसे पहले तो मराठी भाषा में आत्मकथा लिखना शुरू हुआ, जिससे प्रेरित होकर अन्य भाषा में भी दलित स्त्रियों ने लिखना शुरू किया। शांतिबाई काम्बले की आत्मकथा 'माझी जन्माची चित्रकथा' लिखी गई थी जो बाद में अनेकों भाषाओं में प्रकाशित भी हुई । बेबी काम्बले की आत्मकथा 'आमच्या जीवन', कुमुद पावड़े की आत्मकथा 'अतः स्फोट', उर्मिला पवार की 'आयदान' आदि आत्मकथाएँ आजादी से पूर्व ही दलित स्त्रियों द्वारा लिखी जा चुकी थी । इन्होंने ब्राह्मणवाद व जातीय भेदभाव जैसी दमन और दलन करनेवाली सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों की व्याख्या करते हुए स्त्री पुरुष की स्थितियों को एक दूसरे के समक्ष रखा है। इसके अलावा संतान उत्पत्ति का मात्र माध्यम होना, कानूनी हक अधिकारों से वंचित होना, शिक्षा से दूर होना आदि दंस उनकी अभिव्यक्ति में प्रकट हुए हैं। 2009 में कौशल्या बैसन्त्री की आत्मकथा 'दोहरा अभीश्राप' और 2011 में सुशील टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' दोनों काफी चर्चा में रहे । 'शिकंजे का दर्द' पर मैंने एक लेख विस्तार से लिखा था, जो एक पुस्तक में प्रकाशित हुआ था। इसे पढ़ते हुए मेरा भ्रम टूट गया कि मैं स्त्रियों की पीड़ाओं के बारे में सब कुछ जानती हूँ। दरअसल आज भी हम दलित स्त्रियों की पीड़ाओं को महसूस करने में, समझने में चूक गए हैं। दलित पुरुषों की आत्मकथाओं से भी ज्यादा दलित महिलाओं की आत्मकथाएँ हमें एक पल के लिए तो इस समाज के प्रति विद्रोही, कुंचित बना देती है । पर दूसरे ही पल हुए हमें आशावान, ऊर्जावान एवं प्रेरणा स्रोत बने की सकारात्मक संदेश भी देती है।

दलित महिलाओं की आत्मकथा सामाजिक यथार्थ के उन पहलुओं व पक्षों की व्याख्या प्रस्तुत करती है। जिनके बारे में लंबी खामोशी के बाद कुछ कहा गया। यह सब भविष्य के लिए नैतिक वैचारिक स्रोत थी। पीड़ा, उत्पीड़न, वेदना कष्ट और वितृश्ना से भरी उनकी जिंदगी को व्यक्त करने में शब्द भी अपने को दुखी महसूस करते होंगे। 'दोहरा अभीश्राप' को हिंदी की पहली दलित महिला द्वारा लिखी आत्मकथा माना जाता है। लेखिका ने इसमें अपनी नानी के संघर्ष से शुरू करके अपने और अपने समाज की अन्य भविष्यगामी दलित महिलाओं के चित्र को हमारे सामने रखा है। इन सब में समय बदलता है यातनाएँ, पीड़ाएँ वही रहती है।

दलित स्त्री आत्मकथाएँ एक तरह से वर्चस्ववादी अस्मिताओं पर कड़े सवाल करती है और शोषण करनेवाली व्यवस्थाओं को चुनौती भी देती है । इन दलित महिलाओं की आत्मकथाओं में मानसिक आगत पीड़ा प्रतिशोध गरीबी तिरस्कार व अपमान घृणा और क्रूरता को सहन करनेवाले अनेक रोजमर्रा में घटित होनेवाली घटनाओं का दर्दनाक वर्णन है। मगर इन सब के बावजूद निराश नहीं, परिवर्तन की आशा के स्वर ऊपर कर आते हैं। व्यक्ति के जीवन की यात्रा की अभिव्यक्ति होकर भी ये रचनाएँ स्वतंत्र व्यक्तिगत विषयों का प्रतिनिधित्व नहीं करती । यह सामूहिक चेतना और सामुदायिक स्थिति को प्रस्तुत करने वाली आत्मकथाएँ है जिन्हें सामूहिक यातना के ऐतिहासिक दस्तावेज के आधार पर पूरे इतिहास के पुनःव्याख्या की जा सकती है। सामाजिक आचार - व्यवहार के साथ-साथ यह दस्तावेज अकादमी का ज्ञान की व्यवस्था को भी बदलने का काम करते हैं । इन्हें किसी तथाकथित अनुशासन के आधार पर विश्लेषित नहीं किया जा सकता। यह हमारे बस की बात नहीं है कि उनकी समीक्षा कर सके या उनके भुगते यथार्थ को चुनौती दे सके। आत्मकथा में सब कुछ सत्य नहीं होता, कल्पना भी होती है। पर इन दलित महिलाओं की आत्मकथा की तो कल्पना भी हमें द्रवित कर जाती है। हर मामले में यह किसी दर्दनाक त्रासदी से गुजरने जैसा है। अगर दलित महिलाओं की आत्मकथा की समीक्षा, चर्चा, मंचों से निष्पक्ष होकर की जाएगी तो कहीं सामाजिक मुखोटे उतर जाएंगे। जो साहित्य के नाम पर, परिवर्तन के नाम पर, महिला सशक्तिकरण के नाम पर अपने राग अलापते रहते हैं। मेरी दृष्टि से दलित महिला का दर्द अभी भी उनकी आत्मकथाओं में जस का तर्ज तो अभिव्यक्त हुआ ही नहीं है, जिस दिन होगा उसे दिन हमें स्वयं से शर्म आने लगेगी।

संदर्भ

1. 'संवेद' पत्रिका, सं – किशन कालजयी, अंक – 54, जुलाई – 2012 में से विनोद शाही की कविता सादर समादृत, पृ – 06

☆ ☆ ☆

सत्तरोत्तर हिंदी दलित कहानियाँ

डॉ.कुशावती आमनर
डॉ बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय,
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)431004
मो:-8329835774
E-mail:–kushawatiamnar21@gmail.com

ऐसा माना जाता है कि सन 1970 के बाद हिंदी कहानी साहित्य में विविध कहानी आंदोलन सामने आये इन्ही आंदोलनों में दलित और आदिवासी कहानी साहित्य ने अपनी अलग पहचान बनायी है। मोहनदास नैमिशराय कहते है." हम हिन्दी दलित साहित्य को हिन्दी साहित्य के समान्तर एक आंदोलन मानते है। दलित साहित्य हिंदी साहित्य का अंग नहीं है। अगर यह हिंदी साहित्य का अंग होता तो हिंदी दलित साहित्य का स्वरूप हिंदी साहित्य के समान होता।"[1] दलित कहानी वह कहानी है जो दलितों ने अपने अनुभव को अपनी अनुभूति के घरातल पर व्यक्त किया है। या फिर वह कहानी अपने जाति-समूह की कठिनाइयों और भोगी हुई पीडा के आधार पर लिखी हो। दलितेत्तरों ने भी अपनी रचनाओं में दलितों की वास्तविक यातनाओं, आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को भी अभिव्यक्त किया है, पर उन्होंने मात्र दलित पीडित शोषित समाज की पीडा का ही चित्रण किया, उसका कोई समाधान नहीं ढूँढा। अखिलेश जी लिखते है,“ सवर्ण यदि दलित जीवन पर लिखते है तो इसके पहले क्यों नहीं लिखा? सवर्णों ने कितने पृष्ठ रंगे होगे, पर उसमें कितना हिस्सा दलितों के जीवन पर लिखा होगा। प्रेमचंद ने तीन सौ कहानियों लिखी जिसमें इक्का-दुक्का में दलित स्वर है। नई कहानी आंदोलन जो हिंदी कहानी का स्वर्णकाल है, उसमें दलित जीवन पर कितनी कहानियाँ है?"[3] महात्मा ज्योतिबा फुले लिखते है, "गुलामी की यातना को जो सहता है, वही उसे जानता है और भोगता है वहीं पुरा सच कह सकता है। सचमुच राख ही जानती है, जलने का अनुभव कोई और नहीं।"[3] दलित कहानियों में दलित-शोषित जीवन उभरकर आने लगा। ये कहानियाँ शासक और शोषक वर्ग को शर्मनाक करने लगी। यह कहानियाँ कहीं पीडा कहीं प्रतिकार तो कहीं आक्रोश और कही परिवर्तन बनकर परिवर्तन का आव्हान करने लगी। रमणिका गुप्ता लिखती है, इन कहानियों में दलित जीवन के कई कोण है- जीवन से जुझने के जिन्दा रहने के, पीडा सहने के और उससे उबरने के। समाज के लंबे अंतराल को छूती है ये कहानियाँ इसलिए दलित चेतना के उदय से लेकर संकल्प बनने तक का विकास उसमें उजागर होता है।"

मोहनदास नैमिशराय तथा ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी दलित कहानीकार माने जाते है। इन कहानीकारों ने तत्कालिन समय के समग्र दलित शोषित तथा पीडित समाज के दुःख, दर्द, पीडा, शोषण को अपनी कहानियों के माध्यम से विश्व के सम्मुख रखा है। सन् 1980 के बाद हिन्दी दलित-आदिवासी कहानीकार कहानी लेखन के प्रति अधिक जागृत दिखायी देते हैं। आठवें दशक में अनेक कहानीकार प्रभावी कहानियाँ लिखने लगे। उनके अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित होने लगे, जिसमें मोहनदास नैमिशराय की 'आवाजें, ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की 'सलाम' डॉ. दयानंद बटोही का 'सुरंग' कावेरी की 'द्रोणाचार्य एक नहीं डॉ. ठाकूर प्रसाद शाही की 'राग', सत्य प्रकाश की 'चंद्र' मौलिका का 'रक्ताबीज' सुरजपाल चौहान की 'होरी कब आयेगा कुसुम वियोगी की 'चार इंच कलम', स्वरूप चंद की 'उसके हिस्से की रोटी', 'बुद्ध शरण की 'तीन महारानी', 'सुशीला टाकभौरे की 'टूटती बहस' और 'अनुभूति के घेरे, 'विपीन बिहारी की 'अपना मुकाम, पुनर्वास और 'आधे पर अंत, रत्नकुमार सांभरिया की दलित समाज की कहानियाँ जैसे अनेक दलित कहानी संग्रह प्रकाशित हो गये, जिसने हिंदी कहानी का भाण्डार ही नहीं भरा उसे विश्व के कोने कोने तक पहुँचाया भी है।

हिंदी दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों में समाज में स्थित अच्छाइयों और बुराईयों का चित्रण किया है। इन कहानियों में वाह का ही नहीं, आह का भी चित्रण प्रमुख रूप से किया गया है। इन कहानियों में दलित शोषित, पीडितों के दुख, दर्द, पीडा और शोषन को प्रमुख स्थान दिया गया है और इससे उभरणे का मार्ग भी दिखाया है। बनिये तथा शाहुकारों के शोषक का चित्रण ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'पच्चीस चौका डेढ सौं कहानी में यथार्थ रूप से किया गया है। सवर्ण बैंक मनेजर की सड़ी गली मानसिकता को 'साजिश कहानी में सुरजपाल चौहान

ने चित्रित किया है। 'मैं शहर और वे' इस कहानी में मोहनदास नैमिशराय ने एक ऐसे शिक्षिन युवक का चित्रण किया है जो उच्चशिक्षित है फिर भी नौकरी के लिए दर-दर की ठोकरे खा रहा है। संविधान कर्ता ने कानून संविधान में दलित अदिवासियों को नौकरी में 13 और 7.5 प्रतिशन आरक्षण रखा है। फिर भी नायक को नौकरी नहीं मिलती। दलित आदिवासियों को नौकरी ही न मिले सवर्णों के इस षडयंत्र को कहानीकार उजागर करतें हैं। अपनी दूसरी कहानी 'नया गांव' में कहानीकार दलित श्री शोषण का विदारक चित्र प्रस्तुत करते हुए इन सबसे मुक्ति के लिए दलितों द्वारा 'नया गांव बसाने का निर्णय भी जाहिर करते है। एक ऐसा गाँव जहाँ न जातियता होगी, न वर्णव्यवस्था होगी, न उचनिचता होगी।

दलित ब्राम्हण कहानीकार की मानसिकता को भी उजागर करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपने 'शवयात्रा' इस कहानी में दलित जातियों में घर कर रहे ब्राम्हणवाद पर करारा व्यंग्य किया है। मुद्राराक्षस की 'पैशाचिक कहानी जाति के पिशाच से पीडित पिछडे वर्ग की करूण कहानी है। रत्नकुमा सांभरिया ने 'बकरी के दो बच्चे' इस कहानी में दलित आदिवासियों के संघटित संघर्ष पर बल दिया है। डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर जी ने तमाम शोषितों को यह संदेश दिया था कि 'पढो संघटित हो जाओ और संघर्ष करो।' अम्बेडकर जी सबसे पहले पढ़ने की बात करते है, फिर संघटित होने की बात करते है और फिर अन्याय के विरोध में संघर्ष करने का आव्हान करते हैं। सांभरिया जी ने अपनी इस कहानी में सभी दलितों को बाबासाहेब आम्बेडकर जी के मार्ग पर चलने का आव्हान किया है। जो बाबासाहेब ने बतलाई हुई राह पर चला वह बलवान बन गया, पर जो वर्ग बाबासाहेब ने बतलाई राह पर नहीं चला, आज भी वह वर्ग कमजोर है। अन्याय हमेशा कमजोर पर किया गाया है, बलवान पर नहीं। बुद्धशरणं हंस जी ने अपनी 'अस्मिता तहू-लुहान इस कहानी में धर्मांधता पर करारा व्यंग्य किया है। कालीचरण प्रेमी ने फैसला इस कहानी में दलित स्त्री के दोहरे शोषण का विदारक चित्र प्रस्तुत किया है। राम निहार विमल की 'अब नहीं नाचब कहानी दलित संवेदना का चित्रण करने वाली सशक्त कहानी है। कर्मशील भारती ने 'और रास्ता खुल गया इस कहानी में तमाम दलितों-शोषितों के शोषण का कारण उनका विविध जातियों उपजातियों, में विभाजन होना और अपने आप को दलित न मानना इस मानसिकता को उजार करते है। देश के सभी शोषितों की सख्या अस्सी प्रतिशत के आसपास है। पर यह सभी विविध जाति, उपजातियों, विविध वर्गों में विभाजित होने के कारण और अपने आप को दलित-पीडित न समझने के ने कारण संघटित नहीं हो पा रहें हैं। असंघटित होकर शोषकों के प्रति संघर्ष करने के कारण इनको न्याय नहीं मिल पा रहा है। यह तमाम शोषित वर्ग जब संघाटित होकर संघर्ष करेगा तब देश की सत्ता इनके हाथ में होगी। पर सवर्ण शोषक समाज षड़यंत्र से इन शोषितों को संघटित ही नहीं होने देता। यह शोषित समाज सवर्णों के षडयंत्र का हिस्सा बन जाता है। सुरजपाल चौहन ने 'बदबू' इस कहानी में दलित पीडितों के सड़ी-गली परंपराओं से चीपके रहने से अपना जीवन बर्बाद करने की बात कही है। प्रेम कापडिया ने 'हरिजन' कहानी में देवदासी प्रथा पर करारा व्यंग्य किया है। संजीव ने अपनी माँ इस कहानी में एक आदर्श 'माँ' को उभारा है। साथ-साथ आदिवासी जीवन की पीड़ा को भी वाणी दी है। संजीव अपनी दूसरी कहानी 'मदद' में आजादी के पचास साल बाद के गाँव का चित्र सामने लाते हैं। आज गाँव उपेक्षित ही रहे हैं। आजादी के बाद शहर महानगर बन गये पर गाँव -टुटते चले गये। सरकार ने शहरों के विकास को ही देश का विकास माना। पर वे भूल गये कि भारत गाँवों का देश है। जब तक गाँवों का विकास नहीं होगा देश का विकास हो ही नहीं सकता। आजादी के तिरसठ साल बाद भी भारत विकसनशील देश नहीं है। इसका यही कारण है कि देश विकास की गलत नीति। इसी गलत नीति पर करारा व्यंग्य संजीव ने किया है।

अतः दलित-आदिवासी कहानी केवल दलित आदिवासियों के विकास की ही बात नहीं करती। मनुष्य के मनुष्य की ओर देखने के नजरियें को बदलने की बात करती है। कमलेश्वर 'दूसरी दुनिया का ययार्थ की भूमिका में लिखते है, दलित साहित्य की कहानियाँ हमारे मानस संसार को बदल रही है और जड़ संस्कृति तथा न्याय-अन्याय की परिभाषा को भी बदल रही है।" इस प्रकार सत्तरोत्तर हिंदी कहानियों में दलितों के जीवन संघर्ष तथा अस्मिता को महत्व दिया गया है।

सदर्भ:

1. मोहनदास नैमिशराय, कल के लिए
2. डॉ. विरेंद्रसिंह यादव, दलित विमर्श के विविध आयाम
3. वहीं
4. रमणिका गुप्ता संपा, दलित कहानी संचयन

☆☆☆

इक्कीसवीं सदी के प्रमुख हिन्दी महिला रचनाकारों की आत्मकथा : एक विहंगम दृष्टि

सुमि शर्मा,
हिन्दी विभाग,
शोधार्थी
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग ,793022
फोन नंबर - 8876133001
ईमेल- sumisarmah1993@gmail.com

प्राचीन काल से ही कथा साहित्य का विकास पद्य के रूप में होते हुए आधुनिक काल में उसने गद्य का रूप लिया। किसी भी साहित्य का आधार यानी नींव उसकी इतिहास-परंपरा ही होती है, जो परिवर्तन के शाश्वत नियम से बंधी हुई होती है। समाज में बदलती परिस्थितियों के कारण लेखक की लेखनी में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। प्राचीन काल में वर्णित राजा-महाराजाओं की वीरता, प्रशस्ति गीत, साहस, कल्पना,भगवद् प्रीति की उत्कट परंपरा, प्रेमगाथा, प्रकृति-प्रेम जैसे अनेक विषयों के स्थान पर मनुष्य के व्यक्तिगत सुख, दु:ख, अनुभव, यथार्थता, अस्मिता जैसे अनेक मानवीय पहलुओं को कथाकारों ने अपने विषय में महत्त्व दिया। जिससे गद्य अन्य विधाएँ जैसे- आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, पत्र और रिपोर्ताज आदि अस्तित्व में आयीं। वर्तमान समय में 'आत्मकथा' एक लोकप्रिय एवं सशक्त लघु गद्य विधा के रूप में दिखायी देती है। प्राचीनकाल या मध्यकाल में आत्मकथा की समृद्ध लेखन परंपरा नहीं मिलती। क्योंकि भारतीय परम्पराओं में 'स्व' के ऊपर बात कहना या लिखना अहंकार माना जाता था। आत्मकथा आधुनिक युग की उपज है।

'आत्मकथा' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'आत्म' यानी 'स्वयं' और 'कथा' यानी 'बात'। अर्थात् जहाँ खुद की बात कही या लिखी गयी हो उसे आत्मकथा कहते हैं। मनुष्य स्वयं के व्यक्तित्व को अनुभवी दस्तावेज़ में एकाग्रचित्त होकर क्रमानुसार घटनाओं को ईमानदारी, निरपेक्षता से जीवन के हर पहलुओं को पाठक के सामने रखते हैं, उसे ही 'आत्मकथा' कहते हैं। संस्कृत में आत्मकथा के लिए 'आत्मवृत्त कथनम्' और 'आत्मचरितम' शब्दों का प्रयोग किया जाता है तथा अंग्रेजी में 'आटोबायोग्राफी' शब्द प्रचलित है। आत्मकथा कथात्मक शैली में लिखी जाती है। 'आत्मकथा' को परिभाषित करते हुए डॉ. नगेंद्र कहते हैं कि – "आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथ की रचना नहीं करता। कोई स्वप्न सृष्टि नहीं रचता वरन् अपने गत जीवन खट्टे-मीठे, उजले-अंधेरे, प्रसन्न-विषण्ण, साधारण-असाधाण संरचना पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है, अतीत को पुन: कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेना है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य संबंध सूत्रों का अन्वेषन करना है।"

आत्मकथा में एक व्यक्ति की समग्र व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है; क्योंकि लेखक अपनी सत्यता की नींव पर खरे उतरते हुए जीवन की हर घटना तथा अपने गुण-दोषों को समाज के सामने रखता है। एक श्रेष्ठ आत्मकथा में प्रभावोत्पादकता, रोचकता, यथार्थता, संक्षिप्तता, सत्यता, स्पष्टता, आत्मलोचन, आत्मविश्लेषण, सुविचार, सरलता, सहजता, निरपेक्ष, बोधगम्य, वैधता, विश्वसनीयता, ईमानदारी, तटस्थता, एकाग्रता, साहस, आत्मविश्वास जैसे अनेक गुण अनिवार्यत: निहित हैं।

आत्मकथा में लेखक सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पहलुओं को पाठक के सामने रखता है। समाज हमेशा ऐसे महान व्यक्तियों के आत्मचरित को पढ़ना चाहता है जिन्होंने

अनेक संघर्षों एवं कठिनाईयों का सामना करते हुए लक्ष्य को प्राप्त किया हो। ऐसी आत्मकथाओं से समाज को एक नई दिशा मिलती है। यह उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करने हेतु एक उत्तम प्रेरणास्रोत है।

आत्मकथा जीवन का वर्णनात्मक वर्णन प्रस्तुत करती है जिसमें संवाद, भावनाएँ, पात्र वास्तविक जीवन से संबन्धित होते हैं जिनका प्रभाव लेखक पर पड़ा हुआ होता है। आत्मकथा में सबसे महत्त्वपूर्ण चरित्र तथा पात्र स्वयं लेखक ही होता है जो स्वयं का ही आंकलन प्रस्तुत करता है। आत्मकथा काल्पनिक पात्रों या कहानियों पर आधारित न होकर यथार्थ तथा वास्तविक जीवन पर आधारित होती हैं जिसमें व्यक्ति स्वयं अपना परिचय, संवेदनाओं, भावनाओं, सम्बन्धों का प्रस्तुतीकरण करता है जिसका संबंध उसके स्वयं के जीवन से होता है।

प्रारम्भिक दौर में हिन्दी साहित्य के कथा साहित्य में स्त्री लेखिकाओं का योगदान नहीं के बराबर था। इसका प्रमुख कारण है- स्त्री शिक्षा का अभाव, घरेलू उत्तरदायित्व, सामाजिक-पारिवारिक दबाव आदि। स्वतत्रंता के बाद स्त्री शिक्षा का प्रचार बढ़ने लगा। जिससे स्त्री अस्मिता, स्त्री जागरुकता जैसे प्रश्नों का समाज-शिक्षा व्यवस्था में उठने लगे। शिक्षित स्त्री खुद कलम चलाने लगी। एक स्त्री का संघर्ष, शोषण, कुंठा आदि विषयों को महिला आत्मकथाकारों ने अपनी लेखन शैली में अधिक मनोग्राही बनाया। ईमानदारी, तटस्थता से परिपुष्ट होकर खुद के गुण-अवगुणों को सबके सामने प्रस्तुत करके महिला लेखिकाओं ने अदम्य साहस का परिचय दिया। भारतीय समाज व्यवस्था में नारी की त्याग, अन्याय, विषमता आदि मुद्दों पर जागरूकता का संदेश देने में ये आत्मकथाएँ एक उपयोगी माध्यम बनी हैं।

महिला आत्मकथाएँ पितृसत्तात्मक समाज के सामने अपने समान अधिकार के लिए आवाज उठाने वाला एक सामाजिक आन्दोलन है। स्त्री हो या पुरुष दोनों को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है। अपनी इसी अभिव्यक्ति को संप्रेषित करने की कला को महिला लेखिकाओं ने आत्मकथा का नाम दिया। महिलाओं ने 'स्व' की अस्मिता खोजने के प्रयास से आत्मकथा लेखन में रुचि ली। स्त्री-लेखन के संबंध में बच्चन सिंह का कहना है कि – "स्त्री लेखन की अपनी दुनिया है, जो पुरुष-लेखन की दुनिया के समानान्तर चलती रहती है-इतनी समानान्तर भी नहीं कि कहीं उसका स्पर्श भी न करे, उसे काटे भी नहीं। स्त्री से सर्वथा अलग न पुरुष की दुनिया हो सकती है और न पुरुष से सर्वथा अलग स्त्री की दुनिया। फिर भी ऐतिहासिक, राजनैतिक, प्राणीशास्त्रीय कारणों से उनमें अलगाव दिखाई देता है। इसी अंतर या पार्थक्य से स्त्री-लेखन की पहचान बनती है।"

समाज में कई महिलाओं द्वारा समाज में संघर्ष कर अपने को समाज में प्रतिष्ठित किया है। इस प्रकार से संघर्षपूर्ण जीवन जीने वाली कई महिलाओं ने इसे प्रेरणा स्रोत के रूप में, जागृति के लिए आत्मकथा के रूप में लिखा, जिससे समाज में अत्याचारों, रीति-रिवाजों, आड़म्बरों से ग्रसित महिलाओं में जागरूकता की एक नयी लहर का उदय हो सके। वह अपनी क्षमता, सोच आदि को एक नयी दिशा प्रदान कर सके।

19 वीं. सदी से पहले भारतीय भाषाओं में कोई सम्पूर्ण आत्मकथा नहीं मिलती। लेकिन पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा पाकर पूंजीवाद के प्रभाव से आधुनिक काल में प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में आत्मकथा लेखन की परंपरा तेजी से बढ़ निकली। साहित्य की विधा आत्मकथा को समृद्ध करने में स्त्री आत्मकथाओं और दलित-आत्मकथाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आत्मकथा लेखन के स्वर्णिम युग स्वातंत्र्योत्तर काल को ही माना जा सकता है। इस काल में

साहित्यकारों के आत्मकथा लेखन में नवीन रूपों का संयोजन होने लगा। इस संदर्भ में इक्कीसवीं सदी के महिला लेखिकाओं की अग्रणी भूमिका रही है, जिसमें दलित महिला आत्मकथाकारों के भोगे हुए यथार्थ की परिपक्व अभिव्यक्ति मिलती है। उदाहरणस्वरूप – अनीता राकेश की 'संतरे और संतरे'(2002), कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा'(2010), ममता कालिया की 'कितनी शहरों में कितनी बार'(2010),कृष्णा अग्निहोत्री की 'और...और... औरत' (2011), सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द'(2011), मन्नू भण्डारी की 'एक कहानी यह भी'(2011), मैत्रेयी पुष्पा की 'गुड़िया भीतर गुड़िया'(2014), निर्मला जैन की 'जमाने में हम'(2015), सुषम वेदी की 'आरोह-अवरोह'(2017),रमणिका गुप्ता की 'आपहुदरी'(2019), सुनीता जैन की 'शब्दकाया'(2019) आदि हैं।

इक्कीसवीं सदी की स्त्री लेखिकाओं में अन्यतम मैत्रेयी पुष्पा द्वारा विरचित आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' नाम से 2002 ई. में प्रकाशित हुई। यह आत्मकथा माँ-बेटी के जीवन-संघर्ष की कथा है। इस आत्मकथा में लेखिका की माता कस्तूरी जो अपनी मेहनत से अपनी जीवन-वृत्ति को खुद के भरोसे चलाने में कामयाब होती है। लेखिका ने स्वयं अपने जीवन कहानी को बचपन से लेकर संतान प्राप्ति तक की समस्त घटनाओं को नारी संवेदना से जोड़कर वास्तविक रूप में चित्रित किया है। इस आत्मकथा में अनमेल विवाह की समस्या, लिंगभेद की समस्या, माँ-बेटी के पारस्परिक मतभेद की समस्या, तत्कालीन परिवेश के अँग्रेजीराज तथा जमींदारी प्रथा जैसी भयानक समस्या दिखाई पड़ती है। इस आत्मकथा में जीवन और आत्मकथा दोनों का यथार्थ रूप मिलता है। लिंगभेद की समस्या स्त्री-जीवन के लिए एक चुनौती भरा एहसास है, जिसके परिप्रेक्ष्य में स्वयं लेखिका कहती है– "मनुष्य के रूप में अगर सबसे कठिन, चुनौती भरी जिंदगी को पाया है तो स्त्री ने। या कुदरत को ही उससे बैर था? या कि सृष्टि के कर्ता-धर्ता को ही कोई साजिश....मादा बनाने के बाद, मादा होने की सजा का नाम औरत धर दिया। क्योंकि साथ में दिमाग-दिल और विवेक भी दे दिया।"

सामंतवादी व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठानेवाली रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' 2005 ई. में प्रकाशित हुई। विद्रोही स्वभाव से ओतप्रोत रमणिका गुप्ता ने अपने जीवन में अपराजेय संघर्ष की सच्ची घटना को प्रस्तुत किया है। इस आत्मकथा में राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ भोगे हुए यथार्थ की भी सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है। इनमें सामंती शोषण, नारी जीवन की समस्या, पितृसत्तामक समाज का कट्टरपन, कोयला खदानों में काम करनेवाले मज़दूरों का दैहिक तथा आर्थिक शोषण, विधान सभा में होनेवाले तर्क-वितर्क की समस्या जैसी अनेक समस्याओं का उल्लेख मिलता है। आत्मकथाकार लेखिका प्रारम्भ में मजदूरों की समस्या को दर्शाते हुए कहती है- "मैं अपना दु:ख-सुख मजदूरों के दु:ख-सुख में महसूस करती थी इसलिए उनकी तकलीफ को देखकर मेरा गुस्सा बढ़ता था। मैं गुस्से में रोने लगती हूँ और फिर संघर्ष शुरू कर देती हूँ और कड़े-से-कड़े मुकाबले के लिए पूरी तरह तैयार हो जाती हूँ। मुकाबले होते भी थे बहुत तगड़े।"

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' 2007 ई. में प्रकाशित हुआ। यह आत्मकथा पितृसत्तात्मक संस्कृति को चुनौती देने वाली एक उत्कृष्ट आत्मकथा है। इसमें लेखिका ने स्त्री के भोगे हुए यथार्थ को दिखाते हुए उस समय के बंगाल की आर्थिक, राजनीतिक स्थिति को भी दिखाने का प्रयास किया है। इस आत्मकथा में परिवार, प्रेम, विवाह, परंपरा, एक स्त्री की शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक समस्या (अकेलापन, तनाव, कुंठा, संघर्ष आदि) के साथ-साथ राजनीतिक समस्या (भारत पर

चीनी आक्रमण की समस्या), कलकत्ता की तत्कालीन परिवेश -परिस्थिति के विविध पहलुओं को उजागर किया है। लेखिका एक अकेली नारी की मानसिक संवेदनाओं को व्यक्त करते हुए कहती है – "मेरा तो इहलोक-परलोक में कोई नहीं। हमेशा-हमेशा से अकेली हूँ। नि: संग रही हूँ। किसी को मुझसे प्यार नहीं, किसी को मुझ पर ममता नहीं, किसी ने क्षण भर को नहीं सोचा कि मेरी यह अकेली जिंदगी कैसे चलेगी? स्नेह? प्यारविहीन....थार का रेगिस्तान जैसा मेरा जीवन रहा है, जहाँ केवल अकेले चलती रही हूँ।"

चंद्रकिरण सौनरेक्सा द्वारा विरचित 'पिंजरे की मैना' का प्रकाशन 2008 ई. में हुआ था। लेखिका ने इस आत्मकथा के जरिए स्त्री जीवन की कटु सत्य को एक-एक करके यथार्थ से परिचय कराया। इस आत्मकथा की मुख्य समस्या यह है कि– सामंती व्यवहार, दाम्पत्य जीवन की समस्या, प्रतिभा विकास में अनेक बाधक तत्वों की समस्या, पति द्वारा बार-बार प्रताड़ित अपमानित होने की समस्या, स्त्री अधिकार की समस्या, ससुराल की समस्या, पितृसत्ता की समस्या आदि दिखाई पड़ती है। लेखिका ने अपने जीवन के हर संघर्ष को पार करते हुए भी अपने प्रतिभा को विलुप्त न होने दिया। उनका कहना है कि – "घर में तो सब कुछ इसी तरह चलता रहता था, पर मेरी सृजनात्मक प्रक्रिया हर चट्टान से टकराती हुई, निर्बंध चलती रहती थी। उसकी ऊर्जा का तेज कभी कम नहीं हुआ। कम से कम समय में बिना किसी अतिरिक्त सुविधा के मेरी लेखनी, कोई कागज पर, कहानियों को आकार देती थी।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में नारी जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ तत्कालीन समस्याओं के विविध आयामों को भी दिखाया गया है। स्त्री महिला लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं में पितृसत्तात्मक समाज में एक नारी की सत्ता, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, अस्मिता, अधिकार, जीवन के अहम मूल्यों को समान रूप में पाने की अभिलाषा व्यक्त की है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में आत्मकथा लेखन गद्य साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित है। इस युग में पुरुष आत्मकथा के साथ साथ महिला आत्मकथाकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वातंत्र्योत्तर काल से ही आत्मकथा लेखन शैली में एक नवीन रूप का संयोजन हुआ है। एक आत्मकथाकार अपने जीवन के सभी दस्तावेजों को अर्थात जीवन की सकरात्मक-नकरात्मक दोनों पहलुओं को क्रमानुसार ईमानदारी से पाठक के समक्ष रखते हैं, जिनके माध्यम से पाठकवर्ग लाभान्वित होता है। आत्मकथाकारों के यथार्थ संघर्ष के फलस्वरूप पाठकवर्ग में प्रोत्साहन एवं प्रेरणा की एक नई उमंग दिखने लगती है। प्रस्तुत अध्ययन में स्त्री आत्मकथा के माध्यम से भारतीय साहित्य एवं समाज-व्यवस्था में स्त्री की अस्मिता, मर्यादा तथा मूल्यों के विविध पक्ष को दर्शाया गया है।

सहायक ग्रंथ सूची

1) पुष्पा, मैत्रेयी. कस्तूरी कुण्डल बसै, नई दिल्ली : राजकमल पेपरबैक्स, 2011 पृ. सं. 309.

2) गुप्ता,रमणिका. हादसे, दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2005.नगेंद्र, डॉ., आस्था के चरण, पृ. सं. 132.

3) खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2008.पृ. सं. 264

4) सौनरेक्सा, चंद्रकिरण. पिंजरे की मैना, नयी दिल्ली : पूर्वोदय प्रकाशन, 2008.पृ. सं. 219.

☆☆☆

डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा बुद्ध का महाआख्यान है

-अनिल
पीएचडी. हिन्दी
हिन्दी विभाग, यूनिवर्सिटी
ऑफ दिल्ली, नॉर्थ कैम्पस
फोन नंबर: 9958495780

प्रस्तावना:- हिन्दी आत्मकथा लेखन की परंपरा में हिन्दी दलित आत्मकथाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह आत्मकथाएँ दलित जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए, दलितों के मूल सवालों को रेखांकित करती हैं। हिन्दी में कई दलित लेखकों ने आत्मकथाएँ लिखी हैं। जिसमें डॉ. तुलसीराम का नाम विशेष उल्लेखनीय माना जा सकता है। जिसका प्रमाण उनकी आत्मकथा 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' है। 'मुर्दहिया' में तुलसीराम भारतीय समाज में व्याप्त दलित समाज के विभिन्न परिदृश्य को प्रस्तुत करते हैं, वहीं 'मणिकर्णिका' आत्मकथा में बुद्ध के विचार एवं राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक पक्षों पर अपने वैचारिक दृष्टिकोण का व्यापक परिचय प्रस्तुत करते हैं। लेखक वैदिक संस्कृति में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था के साँचे को तोड़ने के लिए बुद्ध की वैचारिक शिक्षा को आवश्यक बताते हैं। ऐसे ही कई मूलभूत वैचारिक बिंदुओं को तुलसीराम ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। समाज की जड़ पड़ी मान्यताओं को समाप्त करने की ऊर्जा लेखक के विचार से बुद्ध के वैचारिक शक्तियों में है जो दलित समाज को बेहतर कल दे सकता है। लेखक का मानना है कि जिस बौद्ध सिद्धांत की नींव भारत में पड़ी थी वह अब भारत के इतिहास से ही धूमिल हो रही है। बौद्ध सिद्धांत की धूमिलता को लेकर तुलसीराम के विचारों में एक विचित्र चिंता रही है। जिसको लेखक ने आत्मकथा में इंगित किया है। लेखक के विचारओं में बुद्ध और अंबेडकर का प्रभाव था जो इनके लेखन में परिलक्षित होता है। इस वजह से लेखक जीवन भर जाति व्यवस्था के प्रतिरोध में लेखन कार्य करते रहे। लेखक के विचार और व्यवहार में बुद्ध प्रमुख रहे हैं। राजनीतिक लेखन के क्षेत्र में डॉ. अंबेडकर के विचारों ने लेखक को वैचारिक परिपक्वता तथा नई ऊर्जा प्रदान की है। वहीं विचारों ने अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक समस्या पर लेखन एवं चिंतन किया। लेखक के वैचारिक चिंतन में बुद्ध-अंबेडकर आदि के विचारों का सामंजस्य है। लेखक ने भारतीय राजनीति के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर भी दृष्टि केंद्रित की है। तुलसीराम अपने वैचारिक संदर्भों के आधार पर समाज के हर तबके का बारीकी से अध्ययन किया है जो आत्मकथा में स्पष्ट है। भारतीय समाज की पृष्ठभूमि को गहराई से समझाने लिए बुद्ध की रचनाओं ने प्रो. तुलसीराम को बेहतर जमीन प्रदान की है जो मुर्दहिया से लेकर मणिकर्णिका के एक-एक पृष्ठों में दिखाई देता है। 'मुर्दहिया' की सामाजिक व्यवस्था की पीड़ा अथवा 'मणिकर्णिका' बनारस शहर का शहरी दुर्व्यवहार लेखक को बुद्ध की तरफ प्रेरित करता जाता है। जिसको लेखक की आत्मकथा के प्रसंगों के माध्यम से समीक्षात्मक लेख तैयार किया है।

बीज शब्द :- समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, शिक्षा, नई चेतना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, उपेक्षा, जातिवाद, बौद्ध धम्म।

बुद्ध का प्रभाव

तुलसीराम बुद्ध के विचारों से बहुत प्रभावित हुए है। तुलसीराम पर बुद्ध के विचारों का प्रभाव 'मुर्दहिया' आत्मकथा के छठे अध्याय के शीर्षक 'चले बुद्ध की राह' से देख सकते हैं। नौवीं कक्षा की पढ़ाई के दौरान चल रहे बुद्ध के प्रसंग से प्रभावित होकर तुलसीराम अपने जीवन को नई राह पर खड़ा पाते हैं। अध्यापकों द्वारा पढ़ाए बुद्ध के विचार और राहुल सांकृत्यायन की कृति 'वोल्गा से गंगा' ने बुद्ध के प्रति एक अलग भाव उत्पन्न कर दिया था। अध्यापक सूर्यभान सिंह द्वारा पढ़ाए गौतम बुद्ध की कहानी में बुद्ध का मध्य मार्ग पर चलने के महाज्ञान ने लेखक के अंदर आगे की शिक्षा प्राप्ति की ईच्छा को और कई गुण बढ़ा दिया। दसवें दर्जे की पढ़ाई के बाद गाँव में कोई इंटर स्कूल नहीं था। लेखक को आगे की पढ़ाई के लिए घर से बाहर जाना जरूरी था। इस दौरान उन्हें बुद्ध अत्यधिक प्रभावित करने लगे थे। इस संदर्भ में लेखक आत्मकथा 'मुर्दहिया' में लिखते हैं, "रात में पढ़ाते समय सबसे रोचक बात यह होती थी कि बगल में बँधा चिन्तामणि का घोड़ा बीच-बीच में हिनहिना उठता था, जिसे सुनकर मेरा पूरा

ध्यान घुड़सवार होकर घर से भागते हुए गौतम बुद्ध की तरफ चला जाता था तथा कुछ समय के लिए मैं एक गंभीर दार्शनिक सोच में तल्लीन हो जाता था।.....मैं एकदम गंभीर हो जाता था। ऐसा देखकर चिन्तामणि सिंह बार-बार गंभीरता का कारण पूछते। मैं उन्हें हर बार बहका देता और कहता कि कोई कारण नहीं है।"1 लेखक बुद्ध के विचार को आत्मसात करने की ओर बढ़ने लगे। जिस तरह बुद्ध ज्ञान की तलाश में धन ऐश्वर्य से विमुख होकर गृह त्याग कर दिया था। ठीक उसी प्रकार लेखक ग्रामीण परिवेश के वातावरण से विमुख होकर बेहतर शिक्षा का दामन पकड़ना चाहते हैं। इसलिए घर से जाना ही उचित समझा। वहीं दलित के प्रति लगे पूर्वाग्रह को तुलसीराम शिक्षा के माध्यम से तोड़ना जरूरी समझते हैं क्योंकि तथाकथित ब्राह्मणों का मानना था कि दलित जाति का लड़का यदि अधिक शिक्षित हो जाता है तो वह मानसिक संतुलन खो-बैठता है। ब्राह्मण द्वारा कहे वाक्य घर वालो को चिंता में डाल देता है इसलिए घर वाले तुलसीराम की पढ़ाई को बंद करवाने की प्रक्रिया में एकजुट हो जाते हैं। इस वजह से लेखक को बुद्ध का रास्ता ही अख्तियार करना सही लगता है।

लेखक का बुद्ध के प्रति आकर्षण शुरू से रहा है। लेखक अपने ही शब्दों को दोहराते हुए कहते हैं, "मैं सारनाथ के उस प्रमुख बौद्धमठ में पहुँच गया, जिसकी दीवारों पर बुद्ध का जीवन चित्रित था। लुम्बिनी में जन्म से लेकर गृहत्याग तथा अंत में निर्वाण यानी मृत्यु तक का चित्रण था। निर्वाण की मुद्रा में बुद्ध को लेटे देखकर मैं अत्यंत भावुक हो उठा था इसलिए रो पड़ा। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो मैं सदियों पूर्व बुद्ध के निर्वाण के समय वहाँ उपस्थित था।.....मृगदाव में घूमते हुए मैं कई बार बुद्ध के प्रथम उपदेश की अनेक बातों को दोहराता रहा।"2 लेखक बुद्ध के जीवन दर्शन में व्याप्त विचारों का स्मरण करते हुए सत्य और असत्य की खोह में जा के जीवन में चल रहे ऊहापोह की पड़ताल करते हुए दिखाई देते हैं। लेखक के विचार में बुद्ध सदा ही विचरण करते हैं क्योंकि लेखक के साथ घटित घटनाओं का एक-एक शब्द बुद्ध के उपदेशों में निहित सत्य की परिभाषा को प्रस्तुत करता हुआ दृष्टिगत होता है। संसार दुख का असीम सागर है। इस सागर में वही पार पा सकता है जो कदम-कदम पर दुखों को आत्मसात करते हुए दुखों पर विजय प्राप्त कर ले। लेखक के विचार में शिक्षा ज्ञान का सबल माध्यम है जो समाज के सभी तबकों के लोगों को एक बेहतर भविष्य दे सकता है। दलित समुदाय को विभिन्न समस्याओं तथा बाधाओं से मुक्त करवा सकता है। लेकिन दुख से विमुख नहीं हुआ जा सकता। दुख मानव स्वभाव का अंग है जो मनुष्य को पल-पल निखारता है।

बुद्ध के विचार लेखक को इतना प्रभावित करते हैं कि आत्महत्या जैसा कृत्य करने से रुक जाते हैं। तुलसीराम लिखते हैं, "भविष्य की अनिश्चयता से ऊबकर कई बार क्रेन से कूदकर ट्रेन के नीचे आ जाने का मन करता था, किन्तु बुद्ध सामने आ जाते और मैं आत्महत्या को पाप समझने लगता था।"3 सामाजिक यथार्थ तकलीफ देह होता है। समाज की शून्यता व्यक्ति के अंदर अपराध भाव को जन्म देती है जिसके कारण व्यक्ति थक हार कर अपराध का रास्ता अपनाने लग जाता है और आत्महत्या तक कर बैठता है।

लेखक आत्मकथा में बुद्ध के विचारों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं, "बौद्ध संग्रह 'विनय पिटक' की शुरुआत में ही बुद्ध ने तीसरा कानून आत्महत्या के विरोध में बनाया था। उन्होंने साफ़तौर पर कहा जो भिक्षु मानव हत्या करे या आत्महत्या के लिए हथियार लावे या मरने की तारीफ करे या मरने के लिए प्रेरित करे या कहे कि जीने से मारना अच्छा है, वह पाराजिक होता है।"4 प्रस्तुत विचारों में लेखक बौद्ध धर्म के धर्मग्रंथों में उल्लेखित कानून प्रक्रिया में व्याप्त दंड विधान की शक्ति का वर्णन करते हुए, भिक्षु व्यक्ति का अनाचार में लिप्त पाए जाने पर कड़ी सजा का प्रावधान सुनाया जाता है। लेकिन वहीं हिन्दू धर्मशास्त्रों में अनाचार के लिए कोई सख्त दंडविधान प्रक्रिया धूमिल दिखाई पड़ती है। हिन्दू व्यवस्था के पुरोहित कितना भी अनाचारी, बलात्कारी, धर्म के विरुद्ध जनता को उकसाएं, हत्या करवाएं, दूसरों की संपत्ति पर घाघ की तरह निगाहें जमाने वाला एवं शोषण करने वाला क्यों न हो लेकिन व्यवस्था के नुमाइंदे इनके लिए कोई कड़ा दंड नहीं देने देते हैं। हिन्दू वर्ग कानून व्यवस्था के आधार पर सजा के प्रावधानों को महत्त्व देता है क्योंकि देश लोकतंत्र प्रक्रिया से चलता है। यहाँ दंड के विधान में थोड़ा समय लगता है। लेकिन सजा हर एक अनाचारी के लिए तय है।

तुलसीराम आत्मकथा में उल्लेखित करते हैं, "गांधी जी के अहिंसावादी सिद्धांत पर भी खूब चर्चा होती। मैं छात्रों से कक्षा के

बाहर बहस करते हुए अकसर कहता कि 'अहिंसा' तो गौतम बुद्ध का सिद्धांत था, किन्तु गांधी ने उसे हड़पकर अपना बना लिया और उनके मुंह से कभी बुद्ध का नाम नहीं निकला। यह एक वैचारिक बेईमानी थी।.....मेरे इस तर्क से अधिकतर छात्र अचंभित होते, किन्तु अनेक लोग मेरे बुद्धिसंगत विचार से सहमत भी होते।"5 लेखक के विचारों में निर्भीकता के स्वर को देखा जा सकता है। यह निर्भीकता और प्रखरता बुद्ध के प्रभाव से आई। बुद्ध के विचारों से प्रभावित होकर ही तुलसीराम में बे-बाक बोलने की प्रतिभा उत्पन्न हुई।

लेखक में पश्चयताप उत्पन्न हो जाता। इसको आत्मकथा में इस प्रकार उल्लेखित किया है, "बुद्ध ने चोरी को 'पाचित्तीय दोष' यानी ऐसा कर्म जिसे करने के बाद पश्चाताप करना पड़े, बताया था।.....यद्यपि मैंने 40 पैसे की उस चोरी की घटना के ठीक 22 साल बाद एक श्रीलंकाई भिक्षु से बौद्ध दीक्षा 21 मार्च 1988 को ली थी। किन्तु उस अपराध-बोध से कभी मुक्त नहीं हो पाया। फिर भी मुझे संतुष्टि इस बात पर है कि मैं फिर कभी चोरी नहीं करूंगा के प्रण पर जिंदगी भर कायम रहा। संतुष्टि इसलिए भी थी कि यदि 999 व्यक्तियों का हत्यारा डाकू अंगुलिमाल बौद्ध बन सकता था, तो मैं तो एक साधारण चोर था।"6 लेखक के विचारों में मनुष्य की इच्छा शक्ति एवं दृढ़ संकल्प पर कायम रहने की ओर व्यक्ति को विशेष ध्यान देने की बात कही है। व्यक्ति जन्म से अच्छा या बुरा नहीं होता बल्कि उसका परिवेश व वातावरण की परिस्थितियाँ उसको सही व गलत राह पर चलने के लिए प्रभावित करती हैं। इस संदर्भ चतुरसेन शास्त्री लिखते हैं, "मैं तो उसे ही महान कहता हूँ जो महात्मा है और पूर्ण जागृत है, न नंगा रहने से, न जटा बढ़ाने से, न विभूति लगाने से और न मौन साधने से कोई मनुष्य अपने को पवित्र बना सकता है। जबतक कि वह अपनी कामनाओं को जीत नहीं लेता है। पवित्र और शांत जीवन आत्म-निरोध से पैदा होता है, उसी को बुद्ध लोगों में निर्वाह मानते हैं, यह गुण इसी संसार में पैदा हो सकता है। इन तमाम बातों से सिद्ध होता है कि बौद्ध-धम्म परलोक के लिए कोई उज्ज्वल पुरस्कार नहीं देता। भलाई ही उसका पुरस्कार है।"7 इसी दृष्टिकोण पर डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर अपनी पुस्तक (बुद्धा एण्ड हीस धम्मा) में लिखते हैं, "युद्ध की समस्या अनिवार्य तौर पर विरोध की समस्या है। यह एक बड़ी समस्या का एक अंग मात्र है। यहाँ विरोध न केवल जातियों और राजाओं में ही विद्यमान है, यह विरोध यह संघर्ष विद्यमान है क्षत्रियों में, ब्राह्मण में, गृहस्थों में माता और पुत्र में, पुत्र और पिता में तथा साथी और साथी में। लेकिन वर्गों के बीच में जो संघर्ष होता है वह स्थायी है और लगातार जारी है। संसार के कष्टों और दुख के मूल में यह वर्ग-संघर्ष ही है। यह सत्य है कि मैंने (बुद्ध) युद्ध के कारण ही गृहत्याग किया था। लेकिन शाक्यो और कोलियों का युद्ध समाप्त हो जाने पर भी मैं घर वापस नहीं लौट सकता। मैं देखाता हूँ कि मेरी समस्या ने व्यापक रूप धारण कर लिया है। मुझे उस सामाजिक-संघर्ष की समस्या का हल खोज निकलना है।"8

कथनों से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि बुद्ध भारतीय समाज की समस्याओं को हल करने के प्रति अग्रसर हैं। विचारों से समस्यों की जड़ तक जाने के लिए बुद्ध आस्था का रास्ता छोड़ वैज्ञानिक पद्धति की ओर मुखर होकर भारतीय जन-मानस में व्याप्त समस्या अथवा जड़ परंपरा को स्वस्थ करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति का वैचारिक आवाहन करते हुए स्वयं से विचार-विनिमय कर रहे हैं। बुद्ध समता, बंधुत्वता के बल पर वर्ण-भेद का मसला खत्म करना चाहते हैं। जो ऊपर की पंक्तियों में दिखाई देता है। भारतीय समाज पर बौद्ध धम्म का जो प्रभाव दिखाई देता है। उस पर काकासाहब कालेलकर लिखते हैं, "सनातन धर्म और बौद्ध धर्म में एक बड़ा फर्क यह है कि सनातन धर्म में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास का सिलसिला क्रमशः रखा गया है। एक आश्रम से आगे बढ़कर दूसरे आश्रम में जाया जाता है। वापस लौटने की इजाजत नहीं है। यही कारण है कि गुरु किसी को संन्यास की दीक्षा, जहाँ तक हो सके, आसानी से नहीं देते। लेकिन बौद्ध धर्म की दृष्टि अलग है। वहाँ माता-पिता मानते हैं कि पुत्र के सयाने होते ही उसे सर्वश्रेष्ठ भिक्षु से बौद्ध धम्म की दीक्षा देना उनका कर्तव्य है। बाद में अगर पुत्र को अनुभव हो कि यह ऊँची दीक्षा उसके लिए अनुकूल नहीं है तो वह स्वेच्छा से नीचे उतर सकता है। बौद्ध धम्म का रिवाज है कि भिक्षु-व्रत ग्रहण करने के बाद अगर किसी को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की इच्छा हो तो वह अपने धम्म गुरु की अनुज्ञा लेकर वैसा कर सकता है। धर्मानन्द जी ने वैसा ही किया।"9

धर्मानन्द कोसम्बी अपनी पुस्तक में लिखते हैं, "बुद्ध द्वारा दिए गए

अनेक उपदेश 'सुत्तपिटक' में संग्रहीत किए गए हैं। परंतु उनके धर्म का आधारभूत उपदेश यही है। अकेले 'सच्चसंयुक्त' में चार आर्यसत्यों के संबंध में कुल 131 सुत्त हैं। इसके अतिरिक्त अन्य निकायों में उनका उल्लेख बार-बार होता है। बुद्ध के अन्य सब उपदेश मानव कल्याण के हित समाहित हैं जो भविष्य की परिकल्पना को अभिव्यक्त करते हैं।"10 तमाम ऐसे तथ्य मिलते हैं कि बौद्ध साहित्य दलित का प्रस्थान है। संत साहित्य पर भी बुद्ध का प्रभाव रहा है लेकिन संतों की वाणी में बुद्ध के वचनों का सीधा अनुसरण दिखाई नहीं देता है। मनुष्यों में कालान्तर से बुद्ध का व्यापक प्रभाव जहाँ-तहां परिलक्षित होता रहा है और होता है।

अंतः लेखक पर बुद्ध के विचारों का प्रभाव ही उनकी वाणी की प्रखरता को समृद्ध करता है। दलित समाज में जड़ पड़ी मान्यताओं को खारिज करने की शक्ति लेखक के विचार से बुद्ध के वैचारिक तर्कों में है। बौद्ध धर्म समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्वता की बात करता है। इन बिंदुओं से ही लेखक के विचारों में बुद्ध सदैव विचरण करते हुए दिखाई देते हैं। लेखक को बुद्ध का प्रभाव नए आयाम की तरफ प्रेरित करता है। हर चीज को तर्क के आधार पर प्रमुखता देने के लिए स्वतंत्र करता है, काल ही जाल फेंके तो फँसे मनुष्य वरना इन्हें फँसाने वाला कोई नहीं सिवाए मनुष्य के। विचारों से पूर्ण व्यक्ति को न वर्तमान की चिंता होती है न भविष्य की व्याकुलता। लेखक के विचार में बुद्ध का सिद्धांत मानव जीवन को व्यापक परिदृश्य पर अग्रसर करना है। बाह्य अंधविश्वास, पाखंड से विमुख कर नए मार्ग पर जीवन को जानने अथवा सही अर्थों में ज्ञान प्राप्ति की नई चेतना का विकास करता है।

संदर्भ सूची :-

1) डॉ. तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2010, पृष्ठ सं. -152

2) डॉ. तुलसीराम, मणिकर्णिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला सं. 2013, पृष्ठ सं. -15

3) वही, पृष्ठ सं. -34

4) वही, पृष्ठ सं. -82

5) वही, पृष्ठ सं. -92

6) वही, पृष्ठ सं. -21

7) आचार्य चतुरसेन शास्त्री, 'बुद्ध और बौद्ध-धर्म', हिन्दी साहित्य मंडल प्रकाशन, देहली, पहला संस्करण 1940, पृष्ठ सं. 39-40

8) डॉ. बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर, 'दा बुद्धा एण्ड हीस धम्मा', ससोफ्ट ग्रुप प्रकाशन, इंडिया, दसवां संस्करण 2014, पृष्ठ सं. 34-35

9) धर्मानन्द कोसम्बी, (अनु.) श्रोपाद जोशी, 'भगवान बुद्ध', राजकमल प्रकाशन, मुंबई, पहला संस्करण 1956, पृष्ठ सं. 'ग' (भूमिका) से

10) वही पृष्ठ सं. 139-140

☆☆☆

A Theoretical Understanding of Community Organization: A Broader Perspective.

-Mr. MIGE KAMBU,
Ph.D. Scholar,
Department of Political Science,
Rajiv Gandhi University, Rono Hills,
Doimukh, Arunachal Pradesh.

-Dr. DAVID GAO,
Assistant Professor, Department of Political Science,
Rajiv Gandhi University, Rono Hills, Doimukh ,
Arunachal Pradesh

Abstract

Community Organization is a form of civil society organization (CSO) formed by a group of people having similar interests, attributes, and most importantly a common objective to promote and protect the interests pertaining to their community. It is basically a non-profit organization made up of some representatives of the community and which operates through voluntary efforts of individuals. Some of the important attributes of community organization are social welfare, inclusive participation, specific objectives etc. Being a form of civil society organization, community organization aids government in framing policies and schemes as they work with the communities and in process they accumulate information on various issues faced by communities. CBOs plays crucial roles in the field of education, health, environmental protection, sustainable development and in other spheres of the community as it is a means to promote and achieve desired objectives of the Community. Community organization is apparently an institution for social welfare activities which adheres to certain principles, methods of functioning and various models associated with it. Over the past decades the community based organizations have drastically changed the overall outlook of the community and with the respective governments delegating responsibilities has made these CBOs more participate in the policy decisions and the executions part as well. The present study attempts to analyze in detail the theoretical aspects of community organization in a broader perspective. It is pertinent for the community organizers and representatives to have knowledge about the actual meaning of community organization, its associated functions, principles, and models, in order to function as an efficient community Organization.

Key words: *Community organization, Civil Society Organizations, social welfare, inclusive participation*.

INTRODUCTION

The formation of any organization is the result of people living together, to meet the collective and individual needs. They act as a means to achieve the common goals for common good. Community organization having understood as a form of civil society organization is a non-profit body which exclusively exists and operates through voluntary efforts and cooperation by individuals, called community organizers. The formations of community organization are on the basis of locality, interest, caste, identity, function, culture etc. Murray George Ross a Canadian Sociologist define community organization as a "process by which community identifies its needs or objectives, give priority to them, develops confidence and will to carry out

work accordingly, fund resources (internal and external) to deal with, and in doing, so extends and develop cooperative and collaborative attitudes and practices in the community". Agnes Karuwesan (2005) defines community organization as an individual group trying to address various issues affecting the communities at large. He further observes that community organization activity involves community initiatives through which community organizers grasp the existing problems and needs of the community, and it ensures increase in equity, empowerment, environmental protection, and other fundamental social services. Likewise Sanjay Bhattacharya understands community organization as a body which is formed upholding the community's solidarity, solidarity, interactions, and social relationships among the members of the community. He asserts that the main aim of community organization is to assist the communities in developing social interaction among people, to make community members aware and better use available resources to fulfill their needs and mitigation. According to him one of the central aspects of a community is 'cooperative', and 'collaborative living'. Thus, it is a mechanism to promote and achieve desired objectives of the community. In the similar footing, Joseph and Das (2013) observe that community organization covers a series of activities at the community level aimed at bringing about desired improvement in the social well-being of individuals, groups and neighborhood. It is mainly concerned with bringing positive social changes in the society through analyzing the social conditions and initiating actions for the same. Hence, community organization must involve the community people democratically, in planning, execution and decision making to ensure that people's views are also taken into account.

The idea of community work and community organization emerged in England as charity organizations such as the London Society of Charitable Relief and settlement house movement. These organizations helped the poor people through fundraising and Welfare activities in the 1870s. In the United Kingdom community work was a method of social work. Gradually, community organizations in the 1920s started working closely with the Central and State government in urban development plans. With its close association with government; community work was seen as professional social work (Joseph and dash, 2013, p.25). The emergence of organization influenced the people of the United States of America to form such organizations. Consequently, organizations such as Citywide Charity organization at Buffalo USA was formed for the same cause. Charity organization was mainly concerned with providing personal services to families and individuals who were living under poverty, besides, this organization initiated collaborative work with other welfare agencies (Banasode, 2021, P. 20). In the history of community organization, it was the Lane Report (1939) that for the first time discussed the nature and attributes of community organization. This report was presented at the National Conference of Social Work New York. This report was a remarkable report as it clearly elaborated the objectives, roles, activities and methods of community organization. Recognition of community

organization as a method of social work was adopted in this report (Patil, 2013, 4). Today, community organization is widely accepted as a method and process which is of continuous nature. Adequate conceptual basis of community organization have been developed and sound theoretical foundation with the introduction of different books, authors, social workers. Some of the notable personalities who contributed to the growth of conceptual basis of community organization are Wayne Mcmilen, Murray G. Ross, Rothman, Arthur Dunham, Saul Alinsky.

Pankaj Tyagi, *How NGO and CBO differs from each other, 2020*, in his article makes a clear distinctions between CBOs and NGO on the basis of their working process, Organizational structure, legal prospects, work criteria and funding. NGOs have a broader spectrum which CBOs does not. However, in conclusion remarks author asserts that despite the differences between the two entities they have a common purpose that is to help underprivileged groups and individuals in society through various social measures. Further, Owolabi and Babantunde in their research work titled as *Assessment of Community Organization Activities towards Economic Development in Ondo State*, Nigeria, 2018, has revealed that community organization plays a crucial role in economic development. CBOs involves in providing social facilities such as schools, community halls, roads, post office etc. the study recommends that CBOs must promote organizational capacity building such as flexibility in planning, collaboration with other bodies , evaluation mechanism, funding etc. one of the significant contribution of this study is the constraints faced by CBOs such as fund, man power etc. Jesse Abrams, Autumn Ellison, Emily Jane Davis Cassandar, Mosele, and Branda Nowell, 2016, Community-Based Organization in the US West: Status, Structure and Activities. The article examines the important role played CBOs in social services, environmental issues etc. significant contribution of this study is the examination of current status of CBOs, their activities, their operation, finance, how they assist other organization. The paper concludes with major findings such as engagement of CBOs in economic development activities, natural conservation and drawbacks such as small budgets, less workers etc.

In the light of above discussion, we can conclude that community organization is an entity which is formed basically to address the socio-economic and political issues of community to enhance the quality of life and to bring social changes. In addition, it has widely become as a method of social work to carry out welfare activities; mostly beneficial to the marginalized sections of the society. So McNeil (1954) has defined it as a process by which people of communities as individuals, citizens, or as a representative of groups join together to determine social welfare need, plan ways of meeting them and mobilize the necessary actions.

Nature of community organization

Community organization is basically a method of social work through which the problems and

issues of the community are identified and subsequently a solution for the same is sought. Initiation of welfare measures hence becomes the priority of community organization. It functions as an agent to bring progressive and positive growth to the community. Hence, it involves deliberative and conscious collective efforts of the social workers and community organizers. Another striking feature of community organization is non-profit entity. Community organization being a form of civil society is a non-profit body existing solely through voluntary efforts, donation, fund raising activities and cooperation. It doesn't operate to make profit. However, grants-in-aid from the government are accepted by the community organization. The main sources of income for community organization are donation drive, membership fee, voluntary contribution etc.

Third Significant nature of Community organization is the adoption of participatory method along with democratic principles. Hence, Inclusive participation of people in decision making and problem solving becomes the true essence of community organization. Being an organization following democratic principles it must always reflect the wishes of the community people to ensure that their voices are heard to add collective strength to deal with any issues. In addition to above nature, having specific goals and objectives is very nature of community organization as every organization has goals and objectives to be achieved. Likewise community organization also has specific common goals for common good. Their nature of operation and work are determined by the way the organization sets its goals and objectives. Further, Community organization helps communities to identify their needs and problems. Once the identification of problems are done; community organizers or workers prioritize the needs accordingly and initiate action plans. In the due course of time community workers assist the community to mobilize resources through which identified problems could be solved.

Further, community organization for its existence needs to build up collaborative and cooperative attitudes. It must ensure that it collaborates and cooperates with other organizations such as NGOs, voluntary organizations, village organizations. In the society to function efficiently, without which community organization will not be able to create a positive impact on the community and its people.

Principles of Community organization

Dunham (1958) has presented 28 principles of community organization which he has further grouped into seven headings.

1. Democratic and social welfare
2. Community roots and for community pro-

grams

3. Citizen understanding, support and participation and professional services
4. Cooperation.
5. Social Welfare programs
6. Adequacy, distribution, and organization of social welfare activities.

Prevention.

Models of community organization

Models of community organization comprise of various techniques and strategies used for the accomplishments of targeted objectives. In context of model of community organization, Jack Rothman, an American Sociologist is well recognized. He has propounded three models of community organization namely; Locality Development, Social Planning, and Social Action.

Locality development is basically a model designed to work with community masses. The crux of this model is about community building. It focuses on whole community or small part of community. Further, in locality development model; leadership and education of participants are essential component. The fundamental principle of this model is that every communities has their common goal, needs and interests, which can achieved through the realization of people working in solidarity and initiate necessary steps. In this model, community organization workers must ensure people's participation and assist community to set plans to find solution to their problems. In addition, cooperation and coordination among different social agencies to ensure efficiency in providing services is an integral part of locality development (Stockdale, 1976, pp 541-542)

Social planning model is principally used to mitigate certain social issues of community. Community workers in this model, assess the welfare needs and services which are currently in operation in any particular part or area. After the evaluation, the workers put forward with certain suggestions for effective execution of services; such as education, health, women welfare, housing etc. The main goal of social planning method is to touch large population. Further, community worker represents community's needs and problems to the government. This is one of the most commonly used models by the community organization (Sharma, 2022, p.12). Social action is the third model of community organization; social action is the process through which individual in the society come together to work towards bringing improvement and to alleviate the problems being faced by the community. Social action can be any act, such as voluntary donation, physical work, community action etc. thus, it becomes sole responsibility of community organization to bring people together and to initiate social action in order to achieve the

desired goals of the community.

Steps or stages of community organizations

Besides models, there are various steps or stages community organization has to follow in order to function effectively. It requires inclusive participation as community organization is a method of solving problems of community through participatory method. According to Asha Ramagonda Patil, community organization must follow seven steps to function effectively; they are;

i. Assessing the community

ii. Formation of active functional team

ii. Initiating plan of action

iv. Mobilization of actions

v. Implementation of various programs

vi. Evaluation of executed programs

Assessing community is the first stage in community organization. It is imperative for the community organization leaders to know the status of community before initiating the process of community work. Further, gathering information about the issues community is facing is another important task of community workers. To gather accurate information it becomes essential for the workers to come in contact with the people get familiarity. In this initial stage, it is pertinent to collect information related to history, demography, social, economic and political aspects of the community, the community organization is assessing. Hence, accumulating comprehensive information before the actual work becomes a pivotal role of community organization.

After assessment of the community, subsequently leaders of community organization must form a functional team to carry out the process of addressing the issue which has been has identified after the assessment. It is encouraged to select members of all strata of the community who could represent society as a whole. While forming the functional team, community leaders must select those members who have positive and dedicated outlook, who would devote his/her time and energy. The proper execution of qualitative action in community organization solely depends upon the zest and commitment of the functional team. Thereby, forming an active functional team becomes crucial.

Developing a plan for the action is the third crucial step in which community organizers design or make a blueprint of the actions, policies to address the assessed problems of the community. Preparing a plan of action required involvement of people whose lives will be affected by the policies or actions. Consequently taking the consensus of assigning with some duties and responsibilities to those affected becomes indispensable part in this stage. Asha Ramagonda Patil in his work Community organization and Development an Indian Perspectives observes that plan of action must be flexible, feasible and realistic, with-

out which no plan of action can be implemented effectively.

Fourth significant step is Mobilization of action. Mobilization of action requires the active participation of people. People's participation is an important essence of community organization. Hence, community organization leaders must garner support and cooperation from people by the means of presentations, appeals, campaigns and meetings. For the mobilization of the action, community organization may seek assistance from the elected representatives, which will help the community organization to get support from the government in implementing the programs (Patil, 2013, p. 24). This step is followed by execution of plan. Execution simply means bringing the plan into action. Effective implementation of program is largely determined by the plan. Hence, having clarity in the plan is essential attributes in community organization. In addition, participation of people becomes integral part of the execution of the plan. Effectiveness of the plan can be examined by the outcome of the implementation.

Evaluation is the last stage of community organization, yet crucial. Its significance lies in the fact that effectiveness of any executed plan or action is ascertained by the process of evaluation. Therefore, evaluating an implemented program helps the community organizations to understand the impact a plan had on the affected people. It provides a way for the organizers to learn lessons for the future as evaluation brings out the drawbacks or positive implications in the community.

Functions of Community Organization

Further, Asha Ramagonda Patil in his work Community Organization and Development has given six major functions of community organization which they have to perform as a social welfare organization namely.

Planning is an integral part of any organization and institution. It is through planning, works are properly executed. Planning involves framing layout and outlines the activities that need to be carried out and the methods to be applied for the accomplishment of the targeted goals. Planning is the soul of community organization as it provides proper direction to start any course of action. It helps to utilize the available resources and time meticulously. In community organization planning involves the activities and programs for the specific targeted group. The effectiveness of community organization solely depends upon sound planning.

Fact finding is usually an activity of discovering a fact or discovering information. It is through fact finding and research in grassroots level community organization identifies the actual needs and problems of the community. Fact finding and research helps the community organization leaders to initiate the future course of action. It is therefore important for community organization to as-

sess the grievances and problems being faced by the community through a fact finding committee.

Maintenance of Public relations is the third important function of community organization Public relation is the dissemination of information from organization to the public domain through various means such as mass media. It is a communication process between the organization and public. Public relation in community organization also plays a very crucial role in integrating the community and its organization. It is through public relations that community organizations can be transparent and accountable. Moreover, Community organization being representative of the community has the responsibility of making its members aware about the works and activities that have been carried out or the activities that have been proposed. Public relations include interpreting social welfare needs, programs, services, developing and marinating public relations etc. (patil, 2013, p. 22)

Another significant function is fundraising and allocation; community organizations are basically a non-profit organization, which usually depend upon voluntary contribution. Raising funds and utilizing them in the right way therefore becomes an important function of community organization. Further, funds are raised through individual efforts and by donation drives among the members of the community. Subsequently, after collecting funds, budgeting and allocating them for various purposes become a crucial step in community organization.

Community development always remain an integral function of community organization working towards bringing community development is the most important function of community organization. Being a social welfare organization the main objective of community organization is to bring progress and development in the field of education, health, economy, standard of life etc. Community development is a method and a process through which actions, activities and programs are initiated to bring socio-economic changes. Therefore, community development becomes a mechanism for community organization to solve the problems of community at grassroots level. It focuses on the entire community rather than any particular area or group of people. The targeted group in community development is the community itself. In addition to that, the ultimate aim of community development is to let everyone in the community avail basic amenities to live like a dignified human being. (Patil, 2013, p.29). Hence, community organization is the means to achieve community development

Social action is always a part and parcel of community organization and it is a crucial

function of the same. Social action is the process through which individuals in the society come together to work towards bringing improvement and to alleviate the problems being faced by the community. Social action can be any act, such as voluntary donation, physical work, community action etc. thus, it becomes the sole responsibility of community organization to bring people together and to initiate social action in order to achieve the desired goals of the community.

CURRENT CHALLENGES OF COMMUNITY ORGANIZATION

However, in current scenario of community organizations, there are certain challenges that community organizations face. The emergence of dirty politics into community life have divided people into factions, communal disharmony, gender inequality, factionalism, protection of rights of marginalized groups are certain hindrances faced by community organization in their process of working (Joseph and Dash 2013. P. 81). Besides, ethical aspects of community organization remain a concern today. Besides, absence of clear vision obstruct the community organizers to perceive the totality of any situation; further absence of definite and systematic vison causes dilemmas in their working; consequently leading to instability in their working. Nevertheless these dilemmas can be minimized up to certain level through definite views and vison of long term purpose. Another significant concern of today's community organization is leadership; there are certain problems posed by the leadership, some leaders might use their power and position for vested interest in the new found status; keeping the people isolated in the state of dependence. Lack of clear identity causes CBOs predisposed to various manipulations and distortions; posing a great threat to the continuity and sustainability of CBOs (Mihanjo, 2005, p. 19). This situation is detrimental and frustrating for the aspirations of the community from the organizers. Moreover, poor resource base and financial instability causes ineffective working of CBOs; as CBOs rely mostly on free will donations, membership's fees, voluntary donations etc.Further, this situation retards the entire working process of community organization; nevertheless such challenges could be avoided if community organizers or community organizations have larger and clear visons for the community. (David, 1982 p.191). Besides, organizers purpose also serves as a way to minimize the contradictions and hindrances of their working; which can be achieved through the inculcation of ethical values or behaviors of community organizers, which could a better alternative to avoid inefficiency. In addition, constant touch and assessment of community and its people can be a reliable method for the successful operation of community organization. Relevant approaches and models could be also be applied by the community organization and organizers to find a resolute solutions for the problems faced by the community. However, lack of financial support and interference from political offices often act as an obstacle in their working; nevertheless adherence to the continual participatory evaluation and identification, mobilization and utilization of available resources of community hence, become integral part of the process of community organization (Banasode C. 11, 2021). Community organization solves the community problems and fulfills the needs of the community such as social injustice, poverty, poor nutrition, lack of health facilities, pollution, Environment, women, drug trafficking etc. These problems can be also be studied by applying medical model; study the problem first; diagnosis or findings; and treatment.

CONCLUSION

Community organization is today widely ac-

cepted as a method of social work. It is a means to achieve a progressive society and a method to achieve and promote community development as they are instrumental in dealing and addressing with various social, political and economic issues. Further, to enhance their working it is crucial for the organizers to adopt participatory method, community mobilization, awareness program and capacity building, which are essential for their effective functioning or else community organization may lost its relevance and essence. Besides, community organizers must acquire distinct attributes as the entire working of organization is largely depending upon them. Moreover, they act as a link between government and community; it is through them plights, and other socio-economic problems are brought before the government using different methods and approaches; consequently affecting the decision making of the government. In context of India, CBOs use different social action method to make their voice heard to the government such as demonstrations, non-cooperation, writing representation and memorandum; consequently affecting the decision making of the government. In order to be an effective community organization, the organizers must understand and have knowledge about the theoretical aspect of community organization such as principles, functions, models, approaches and stages, without which community organization will not be able to bring positive social changes for community. Moreover, CBOs must develop collaborative spirit to work with other agencies such as grassroots government, NGOs, and other agencies. At the heart of community organization, there must be inclusion, ownership, relationship building and leadership development (Patil 2013). In conclusion, we can assert that community organization is process that is continuous in nature, in which changes are made and remade on the basis of circumstances, situations and time. Hence, it must be an organization with flexibility, to adapt to any situation in order to eradicate all the obstacles that hinder the growth, development, utilization of resources and capacity building of community.

References

1)Andharia Janki (2009) Critical exploration of community organization in India. Oxford Journals, Oxford University Press. Vol 44, pp276-290. https://www.jstor.org/stable/44258144

2)Augusty Karimundakkal Marykutty, Dizon T josefina (2020). The role of community-based organization in addressing social equity among deprived section in the conflict vulnerable areas in Karnataka India, *Asian research journal for Arts and*

social sciences. Article number AR-JASS.56850

3)Banasode, Chandrashekar, C. (2021). *Community Organization in India*. Current Publication, Agra.

4)Eswarappa, kasi (2021). Community-based organizations (CBOs) and their role in development of women, a case study from Andhra Pradesh. Sage publication.

5)Karina, Constantino David. (1982). *'Issues in Community Organization'*. Oxford Journals. Oxford University Press, Vol.17, No.3. https://www.jstor.org/stable/44258468

6)Korten, C. David (1980) Community organization and rural development: a learning process approach Vol.40.Blackwell Publishing Vol.40, pp.480 -511. https://www.jstor.org/stable/3110204

7)Mihanjo, Karuwesa Agnes. (2005). The significance of Community Based Organization in Supporting Rural Development: A case Study in Morogoro Rural District, Matombo Divison, Tawa Ward. (Master Dissertation). Open University of Tanzania.

8)Monterio, A Alcides (2014) The active role of Community-based organization in the local redefinition of national policies. expert Project Publishing vol.46 https://www.researchgate.net/publication/286761166

9)Patil, Asha Ramagonda, (2013). *Community Organization and Development, An Indian Perspective*. PHI Learning, Delhi.

10)Sheeba, Joseph and Dash, Bishnu Mohan. (2013). *Community Organization in Social Work*. Discovery Publishing House, New Delhi.

11)Stockdale , Jerry D.. (1976). 'Community Organization Practice: An Elaboration on Rothman's Typology'. *The Journal of Sociology and Social Welfare*, Vol. 3,

12) Sharma, Shasi. (2022).*Community Organization and Social Action*. ABD Publishers, New Delhi.

⋆⋆⋆

Enhancing Familiarity with The Phenomenon of 'Employee Skill Erosion': A Closer Examination of Various Dimensions and Perspectives

-Benny Sebastian

Ph.D. Scholar,

Dept of Management, Rajiv Gandhi Central University, Doimukh-791112

Arunachal Pradesh; Email id: benny.seba123@gmail.com

Abstract

The phenomenon of 'Employee Skill Erosion' (ESE) has been a scarcely discussed concept in the labour market. Of late, the term has garnered much significance in the context of declining proficiency among employees due to both external and internal forces of the job environment. The author is evoked by the reality of soil erosion which is a geological spectacle affecting the natural environment to conclude that such a process could also be perceived in an employee subjected to the impact of various forces affecting the labour market. Every business enterprise irrespective of its size or market share cannot be immune to the changes prompted by the ever-evolving business landscape. Similarly, the employee of a firm whose specific employability skills that might have been cutting-edge for a decade or more, could gradually become irrelevant, leading to what we understand as 'skill erosion'. This could, in turn, impact the entire business in many ways. The purpose of the paper is to examine the various dimensions of the phenomenon of 'skill erosion' and to enable readers to enhance familiarity with this concept. A conceptual analysis of the term is followed by a discussion on the agents causing skill erosion as well as its impact on the employee and the business organization. Mitigation strategies proposed are proactive measures that can be adopted by companies to safeguard their existence and progress.

Keywords: *Labor skills, Skill erosion, Up-skilling. Labor market.*

Introduction

Cambridge Dictionary defines *EROSION* as "the fact of soil, stone, etc. being gradually damaged and removed by the waves, rain, or wind." What people, as common folk, understand is that erosion is the geological process in which earthen materials are altered, worn away, transported, or vanished when exposed to the cumulative battering forces of nature. Agents of erosion or factors impacting such changes can be several like winds, rain, flood, heat, cold waves, etc. If this could be a reality that affects nature and its existence the author is forced to assume that such a process can occur to the skills either inborn or attained by training, that any individual possesses.

Every business enterprise, whether big or small, cannot claim complete immunity from the transformation triggered by the ever-evolving business landscape. Employability skills possessed by the employee of a firm, which might have been cutting-edge for a decade or more, could gradually become irrelevant, leading to what we understand as 'skill erosion'. This could, in turn, affect the entire business in many ways. Though the impact of this phenomenon is widely witnessed, the reasons behind such occurrences are yet to be ascertained. For anyone in any way associated with business, a comprehensive understanding of the various nuances of the concept might benefit much. The current study is a genuine effort to enhance the familiarity of the read-

ers with the rarely discussed phenomenon of 'Employee Skill Erosion'.

Employee Skill Erosion: A Conceptual Analysis

Though the notion of 'Employee Skill Erosion' (ESE), is conceptually rather abstract, a deeper understanding of it is possible at the cost of a little effort. It is being observed that when exposed to external forces, an object could undergo alteration. Similarly, when working among people of a different language, an individual might lose proficiency in one's language, or an individual closely associated with a different culture can gradually compromise on one's own cultural identity. If this principle could be applied to one's labor skills, an employee exposed to various external or internal forces of the job environment could experience steady deterioration in acquired employability skill proficiency over a period of time. In the business scenario, it could be termed 'skill erosion' and would constitute a loss of expertise that is essential to success in business. Such a situation arises generally when technology undertakes those activities that were until now performed by human beings. As a result, people become unable to carry out tasks with the same effectiveness and precision as earlier.

The author would like to refer to employee skill erosion as a *phenomenon* rather than a *problem* in the current paper. It is affiliated with technological progress in most cases. It is only understandable that certain skills that were thought to be very essential for certain jobs are no longer required in the path of one's career progress. Some authors refer to it as 'skill obsolescence' or 'skill mismatch'. (Cedefop, 2010)

Agents of Skill Erosion

When the presence of skill erosion is acknowledged among the employees, the immediate question that arises would be 'What causes it?'. In the business context, we might identify a few reasons for this. It may be very apt to take a glance at a few agents of skill erosion in employees.

Technological Changes

Novel tools and enhanced techniques rule human existence. One innovation after another occurs at an unimaginable speed constantly challenging global businesses and markets. What was considered best practice in an industry a couple of years ago can no longer claim to be enjoying the same status. Complex works, either mental or physical, once performed by human beings are replaced by machines mostly automated, reducing their burdens to a great extent. Gradually, as automated machines execute the same functions that had been performed by humans more efficiently and productively, the skills employees had acquired for the same functions get eroded over time. The employment sector is awestruck at the so-called 'technological alarmism' (Autor, 2015), (Mokyr, 2015), the rapidity at which technology in the form of robotics and artificial intelligence (AI) is replacing human labor with increased efficiency.

In a case study conducted on an accounting firm that had experienced skill erosion among its employees over several years, it was found to have resulted from undue reliance on automation which gradually fostered complacency at the individual as well as organizational level finally weakening employees' activity awareness, competence, and output valuation. Such skill erosion may not be easily understood at the early stage either by employees or management (Rinta, 2023). Adopting and adapting to the changes

require re-skilling and up-skilling of employees to cater to the constantly changing demands of the industry. Only this can ensure an efficiency advantage that positively contributes to the growth of any organization or business.

Market Environmental Changes

Constantly evolving market trends, unpredictable consumer behavior, preferences, and business regulations that undergo periodic revisions are just a few instances that point to market changes that are witnessed currently. Decisions related to market operations, practices, and business strategies are either directly or indirectly influenced by internal or external factors.

Volatile market trends emerge due to the impact of globalization on business patterns. These business environmental changes also function as mediators contributing to skill erosion in employees. In a market scenario in which e-commerce and digital strategic operations have gained momentum unless the workforce of an enterprise is trained to adapt to these changes, the result would lead to an unimaginable decline in business.

Lack of up-skilling or re-skilling

No company would want its employees to be functioning with incompatible skills which would affect the overall performance of the organization. Upskilling employees would mean keeping pace with the signs of the times that call for the provision of ongoing skill-enhancement opportunities to the workforce (Sahana, 2023). The paper has made mention of the inevitable changes occurring in every field, particularly in the business market. In the context of the unprecedented changes in the labor environment that leave the employee with mismatched skills irrelevant to the productive process involved, employees in an industry need to be offered opportunities to enrich themselves with employability skills that would always make them relevant to the market. In short, priority should be given to up-skilling or re-skilling of employees.

Impact of Skill Erosion on Employees

Over a period of time workers realize their inability to handle certain physical, or in some cases, knowledge-related aspects of their work in the way they had performed a few years ago. This is indicative of the impact of skill erosion on the employee. As far as the employee is concerned, recognizing one's inability to perform the expected responsibility becomes disheartening and depressing. Those employees who lack the opportunity to upgrade their job skills become apprehensive of losing jobs ultimately creating a sense of job insecurity in them (McGuinness, 2019). When the various forces of change make an employee irrelevant in the particular skill that had guaranteed a space in the company, it is more than one can tolerate. Besides, constantly employing the job-specific skill that might have been in use for a longer period, numerous other complementary skills might have already vanished. As a result, the employee's service becomes irrelevant to the company which may gradually have recourse to alternatives. Thus, the employees become innocent victims of skill erosion.

Impact of Skill Erosion on Business Enterprises

Skill erosion in employees can directly affect the organization in multiple ways. The inefficiency of the employees in operating the latest machinery can lead decline in output. Those who cannot keep pace with the new digital market trends and online

business strategies can miss out on market advantage for the company. Suppose the employees are directly connected with clients as in the customer service team. In that case, their inability to adeptly and effectively handle client grievances can create a bunch of dissatisfied customers who may turn to rival companies for quicker solutions to their problems. Risks involved include loss of business, market presence, customer retention, revenue opportunities, brand image, etc. One could employ terms like revenue erosion, asset erosion, and profit erosion to mean the same. However, the ultimate impact is related to the stability of the firm.

Prevention and Mitigation Strategies

The oft-repeated idiom 'prevention is better than cure', appears to be of extreme significance at this juncture. When faced with unanticipated occurrences, proactive measures adopted by companies can go a long way to safeguard its existence and progress.

Periodic Skill Assessment

One of the primary responsibilities of the company would be to periodically evaluate the performance of the employees and to identify those areas in which they need assistance. Such a practice, on the one hand, would encourage the employees to scale up their skills periodically, and on the other, enable the organization to detect any signs of skill erosion in the employees and initiate steps to mitigate them.

On-going skill development opportunities

As mentioned elsewhere in the article, unprecedented technological growth and the latest market trends demand that companies invest largely in employee upskilling programs to keep their workforce up-to-date. This presupposes that the top team stays well-informed about the numerous changes happening in the concerned industry. Simultaneously, it would be advantageous to the company to foster cross-training in different roles so that the staff can quickly adapt to the evolving job requirements more efficiently.

Create a Culture of Learning

The initial step to create a culture of learning in the organization would be to dedicate a certain number of days or hours periodically for the employees to explore new skills or to update the old in a pattern similar to remedial sessions at educational institutions. Some authors (Pollack, 2019) suggest that improved access to skills training and developing a culture of lifelong learning will be critical to providing workers with the education and training they will need to transition and adapt effectively to new realities. This implies that companies place priority on good job openings, accessibility to skill training, and new economic opportunities. Certain private sector organizations term this process as the 'on-going formation' of the personnel. Simultaneous with lifelong learning among the employees can be placed peer mentoring that encourages knowledge sharing and mutual learning (Cedefop, 2012).

Create a Culture of Employee Recognition

It might be beneficial to the company to acknowledge and reward either in the form of bonuses or promotions, those who positively pursue skill enhancement opportunities It is to be noted that rewarding employees for their effort to skill themselves

results in a positive response on their part. Employees feel wanted and valued and this motivates them to engage productively in the functioning of the company. Such acts ensure a sense of security among the employees. (Aruna, 2018)

Invest in Technology

Any organization needs to be open to new technologies and market trends. Investing in new technology that can enhance the skills of the workforce is never to be considered an additional expenditure. Similarly, by capitalizing on emerging development opportunities offered by technology, the efficiency of the entire operational system, products, and services of the company, are guaranteed a competitive edge over other market players. (Berger, 2016) makes a comprehensive study of the impact of computer technology in labor market since the '80s. To capture the opportunities and address the challenges created by technological advancement, the authors suggest investing in training and reskilling for the workforce to help boost fluctuating productivity growth and reduce undesirable rises in inequality.

Conclusion

A company, to stay on the vanguard of progress in the current dynamic business landscape, needs to ensure that its workforce is skilled enough to handle the changes that arise from time to time. Employee skill erosion is a perilous threat that can silently creep into and impact the company's well-being and competitiveness. Early detection is only the first step to counter the problem. Inventing proper strategies to address the problem is crucial to the company's growth and existence. Spare no efforts to fortify the abilities of the company's workforce and allocate time, energy, expertise, and finance to enhance their skill and secure the future of the company.

References

Aruna, G. (2018). Impact of Rewards and Recognition on Employees. *International Journal of Creative Research Thoughts, Vol.6*(Is.1).

Autor, D. (2015). Why are there still so many jobs? The history and future of workplace automation. *The Journal of Economic Perspectives, 29*(3).

Berger, T. &. (2016). Structural transformation in the OECD: Digitalisation, deindustrialization and the future of work. Paris, France: OECD Publishing.

Cedefop. (2010). The skill mismatch challenge: Analyzing skill mismatch and policy implications.

Cedefop. (2012). Briefing note: Preventing skill obsolescence.

McGuinness, S. P. (2019). Skills-Displacing Technological Change and Its Impact on Jobs: Challenging Technological Alarmism. *Discussion Paper Series*. IZA Institute of Labour Economics.

Mokyr, M. V. (2015). The History of Technological Anxiety and the Future of Economic Growth: Is This Time Different? *Journal of Economic Perspectives, 29*.

Pollack, E. F. (2019). *Automation and a Changing Economy-part 2: Policies for Shared Prosperity.* Washington DC: The Aspen Institute's Future of Work Initiative.

Rinta, T. P. (2023). The Vicious Circles of Skill Erosion: A Case Study of Cognitive Automation. *Journal of the Association for Information Systems, 24*(5).

Sahana, G. &. (2023). A Study on the Impact of Reskilling and Upskilling for the Promotion of Employees in the Organization. *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, 10*(5).

☆☆☆

Exploring the Visual and Psychological Depths of German Expressionist Film

-Ashok Bairagi

Assistant Professor, School of Cinema

AAFT University of Media and Arts, Raipur, Chhattisgarh, India – 493225

-Shriprakash Pal,
Ph.D. Scholar,
Dept. of Mass Communication, Rajiv Gandhi University, Arunachal Pradesh
Email: shriprakash.pal@rgu.ac.in

Abstract

German Expressionist film, a movement that flourished in the early 20th century, represents a unique and influential period in cinematic history. This research article delves into the origins, characteristics, and impact of German Expressionism on filmmaking. Through an analysis of key films and critical perspectives, we explore how German Expressionist filmmakers used innovative visual techniques and thematic depth to create a distinct cinematic language. Additionally, we examine the movement's influence on subsequent filmmakers and its lasting legacy in the realms of horror, thriller, and psychological cinema.

Keywords: *German Expressionism, film, visual style, psychological depth, cinematic language, influence*

Introduction

German Expressionist film emerged in the aftermath of World War I, reflecting the social, political, and psychological upheaval of the era. Characterized by its striking visual style and exploration of existential themes, German Expressionism offered filmmakers a means to convey inner emotional states and societal anxieties through cinematic language. This research article aims to provide a comprehensive overview of German Expressionist cinema, analysing its origins, key characteristics, notable films, and enduring influence on the art of filmmaking. German Expressionist filmmakers of the early 20th century crafted a cinematic language that was revolutionary, responding to the societal upheaval following World War I with boldness and innovation. Spearheaded by directors like Robert Wiene, Fritz Lang, and F.W. Murnau, this movement departed from realism to embrace heightened emotion and psychological depth. Their distinctive visual style, characterized by exaggerated mise-en-scène and chiaroscuro lighting, created an otherworldly atmosphere, intensifying the emotional impact of their narratives. Dynamic camera angles and unconventional framing further heightened the sense of disorientation, allowing for a deeper exploration of themes such as madness, alienation, and existential angst. Films like "The Cabinet of Dr. Caligari" and "Nosferatu" presented nightmarish visions, serving as allegories for the anxieties of a post-war society. The innovative techniques of German Expressionist filmmakers influenced later movements like film noir and horror, leaving an enduring legacy in the medium of film. Their daring approach to storytelling continues to inspire filmmakers today, cementing the profound and lasting impact of German Expressionism on cinema.

Expressionism arose in Germany around the turn of the twentieth century, profoundly influencing poetry and painting by drawing on Baroque vigour, Gothic distortion, and modernist ideals. It avoids realistic depictions in favor of subjective, abstract imagery that portray the artist's inner conflicts. Despite post-war challenges, it flourished throughout the Weimar era, with a boom of creative activity. Faced with Hollywood's technological dominance, German filmmakers adopted expressionism, using symbolic imagery to convey personal realities. "Dr. Caligari" is a great example, using exaggerated acting, complex makeup, and unique set design to immerse spectators in the protagonist's mind. Expressionism manipulates reality through lighting, shadows, and cinematography, transporting viewers to a subjective realm where truth becomes malleable.

German Expressionism in filmmaking emerged in the early 20th century, primarily during the Weimar Republic era (1919-1933). It was a movement that sought to explore the inner psyche and emotions of characters through exaggerated visuals and distorted storytelling techniques. **Origin:** German Expressionism stemmed from the broader Expressionist movement in art, which originated in Germany before World War I. Artists like Edvard Munch, Wassily Kandinsky, and Ernst Ludwig Kirchner were prominent figures in this movement. The trauma of World War I and the subsequent socio-political upheavals in Germany contributed to a sense of disillusionment and despair, which found expression in the arts. Expressionist filmmakers sought to break away from the realism of mainstream cinema and instead embraced symbolic storytelling and stylized visuals to convey emotional and psychological truths.

Characteristics

Visual Distortion: Expressionist films employed distorted sets, exaggerated angles, and stark contrasts between light and shadow to create a sense of unease and psychological tension. These techniques were

often used to reflect the inner turmoil of the characters.

Symbolism: Symbolism played a crucial role in Expressionist films, with objects, settings, and characters often representing abstract ideas or emotions rather than being depicted realistically.

Subject Matter: Expressionist films frequently explored themes of madness, alienation, and the dark side of human nature. Stories often revolved around characters struggling with moral dilemmas or existential crises.

Theatrical Performances: Actors in Expressionist films often delivered highly stylized and exaggerated performances, emphasizing emotional intensity over naturalism.

Influence of German Romanticism: German Expressionism drew inspiration from the Romantic movement of the 19th century, particularly in its exploration of the sublime, the supernatural, and the irrational.

Impact: Influence on Filmmaking: German Expressionism had a profound impact on the development of cinema, both in Germany and internationally. Filmmakers like Fritz Lang, F.W. Murnau, and Robert Wiene created ground-breaking works that pushed the boundaries of cinematic storytelling.

Influence on Genres: The visual style and thematic preoccupations of German Expressionism influenced a wide range of genres, including horror, film noir, and science fiction. Elements of Expressionist aesthetics can be seen in films such as "Nosferatu" (1922), "The Cabinet of Dr. Caligari" (1920), and "Metropolis" (1927).

Legacy: The legacy of German Expressionism can still be felt in contemporary cinema, with filmmakers continuing to draw inspiration from its visual language and thematic concerns. Its influence can be seen in the works of directors like Tim Burton, David Lynch, and Guillermo Del Toro. German Expressionism in filmmaking was a ground-breaking movement that used distorted visuals, symbolic storytelling, and psychological themes to explore the human condition. Its impact on cinema continues to be felt to this day, influencing filmmakers around the world and shaping the development of various film genres.

Origins and Characteristics of German Expressionism

German Expressionism in film was influenced by the broader artistic movement of Expressionism, which originated in Germany in the early 20th century. Expressionist artists sought to convey subjective emotions and inner experiences through distorted forms, bold colors, and exaggerated imagery. In cinema, this translated into a visually stylized approach characterized by angular set designs, chiaroscuro lighting, and symbolic use of space.

Influence and Legacy

German Expressionist cinema had a profound impact on the evolution of film as an art form. Its innovative visual techniques and psychological depth inspired filmmakers around the world, particularly in the genres of horror, thriller, and psychological drama. The legacy of German Expressionism can be seen in the works of directors such as Alfred Hitchcock, Tim Burton, and David Lynch, who have drawn upon its themes and aesthetics to create enduring cinematic masterpieces.

Key Films of German Expressionism

Several seminal films exemplify the aesthetic and thematic qualities of German Expressionist cinema. "The Cabinet of Dr. Caligari" (1920), directed by Robert Wiene, is often regarded as a quintessential example. Its distorted sets and twisted narrative underscore themes of madness and manipulation. "Nosferatu" (1922) by F.W. Murnau, a haunting adaptation of "Dracula," explores themes of death and decay through its atmospheric visuals and portrayal of the vampire Count Orlok. Fritz Lang's "Metropolis" (1927) offers a critique of industrialization and class disparity through its grandiose sets and dystopian narrative. German Expressionist cinema stands as a hallmark of innovation and artistic experimentation in the history of film. Among its seminal works, "The Cabinet of Dr. Caligari" (1920), directed by Robert Wiene, emerges as a quintessential example of the movement's creative brilliance. Through an analysis of its innovative visual techniques and thematic depth, this essay delves into how "The Cabinet of Dr. Caligari" crafted a distinctive cinematic language that continues to captivate audiences and influence filmmakers to this day.

Contextualizing German Expressionism

Before delving into the intricacies of "The Cabinet of Dr. Caligari," it is imperative to understand the cultural and historical milieu that birthed German Expressionist cinema. Emerging in the aftermath of World War I, Germany was grappling with a profound sense of disillusionment and societal upheaval. This tumultuous backdrop laid the groundwork for artistic movements that sought to express the inner turmoil and existential angst of the era. German Expressionism, both in visual arts and cinema, emerged as a response to this societal unrest, characterized by its rejection of naturalistic representation in favor of distorted, exaggerated forms that mirrored the frac-

tured psyche of post-war Germany.

Visual Techniques:

A cornerstone of German Expressionist filmmaking, the visual techniques employed in "The Cabinet of Dr. Caligari" exemplify the movement's commitment to pushing the boundaries of cinematic expression. At the forefront is the film's iconic set design, characterized by angular, distorted architecture that defies conventional spatial logic. Designed by Hermann Warm, Walter Reimann, and Walter Röhrig, the expressionistic sets of "The Cabinet of Dr. Caligari" serve as physical manifestations of the characters' inner turmoil and psychological disarray. The jagged, twisted buildings and streetscapes evoke a sense of unease and disorientation, immersing the audience in a nightmarish realm where reality blurs with hallucination. The film's use of chiaroscuro lighting further accentuates its surreal atmosphere. Deep shadows and stark contrasts between light and dark amplify the sense of psychological tension, heightening the audience's emotional engagement with the narrative. The interplay of light and shadow not only serves as a stylistic flourish but also underscores the thematic underpinnings of the film, exploring the duality of human nature and the blurred boundaries between sanity and madness. Beneath its visually arresting façade, "The Cabinet of Dr. Caligari" delves into profound thematic territory, offering a critique of authoritarianism, societal conformity, and the fragility of human identity. At its core is the character of Dr. Caligari himself, a sinister figure who represents the oppressive forces of authority and control. Through his manipulation of the sleepwalker Cesare, Caligari exerts dominance over the townspeople, perpetuating a cycle of fear and submission.

"The Cabinet of Dr. Caligari," "Nosferatu," and "Metropolis" stand as monumental pillars of German Expressionist cinema, collectively embodying the movement's distinctive blend of visual innovation and psychological depth. Robert Wiene's "The Cabinet of Dr. Caligari" immerses viewers in a surreal world of twisted sets and haunting imagery, where reality merges with madness to explore themes of authority and human identity. F.W. Murnau's "Nosferatu" transports audiences to a plague-ridden town, enveloping them in an atmosphere of eerie dread through its innovative use of light and shadow, while challenging them to confront primal fears embodied by the enigmatic Count Orlok. Fritz Lang's "Metropolis" transcends mere dystopian storytelling, offering a mesmerizing exploration of societal division and individual rebellion within a futuristic cityscape, symbolizing the dehumanizing effects of industrialization. Together, these films invite viewers on a journey into the depths of the human psyche, captivating them with their visionary techniques and timeless themes.

As towering achievements of cinematic artistry, "The Cabinet of Dr. Caligari," "Nosferatu," and "Metropolis" continue to resonate with audiences, inviting them to delve into the visual and psychological complexities of the human experience. Each film stands as a testament to the enduring power of German Expressionist cinema, inspiring generations of filmmakers and challenging viewers to confront the darkest corners of the human psyche. Through their innovative techniques and profound thematic resonance, these masterpieces invite audiences to explore the complexities of the modern world, encouraging reflection on the enduring relevance of their messages in today's society.

However, the film's narrative takes a twist with its revelatory ending, where the true nature of reality is called into question. The revelation that Francis, the protagonist, is a patient in an asylum subverts audience expectations and challenges the notion of objective truth. This narrative ambiguity reflects the existential uncertainty of the post-war era, where reality itself seemed to be in flux.

"The Cabinet of Dr. Caligari" stands as a seminal work not only within the realm of German Expressionist cinema but also in the broader landscape of film history. Its innovative visual techniques and thematic depth have left an indelible mark on subsequent generations of filmmakers, inspiring countless homages, adaptations, and reinterpretations. From the expressionistic horror of films like "Nosferatu" to the psychological complexities of works like "Inception," the influence of "The Cabinet of Dr. Caligari" reverberates throughout cinematic history. Moreover, the film's exploration of themes such as the nature of reality and the fragility of human sanity continues to resonate with contemporary audiences, offering a timeless commentary on the human condition. In an age marked by political upheaval and social discord, the allegorical power of "The Cabinet of Dr. Caligari" remains as potent as ever, reminding us of the enduring relevance of German Expressionist cinema.

"The Cabinet of Dr. Caligari" stands as a masterpiece of German Expressionist cinema, showcasing the movement's penchant for innovative visual techniques and thematic depth. Through its surreal set design, chiaroscuro lighting, and thought-provoking narrative, the film crafts a distinctive cinematic lan-

guage that continues to fascinate and inspire audiences nearly a century after its release. As a testament to the enduring power of artistic expression, "The Cabinet of Dr. Caligari" remains a timeless classic, inviting viewers to explore the depths of the human psyche and confront the complexities of the modern world.

German Expressionist cinema stands as a testament to artistic innovation and experimentation, and among its most iconic works is "Nosferatu" (1922), directed by F.W. Murnau. Through an exploration of its innovative visual techniques and thematic depth, this essay seeks to unravel how "Nosferatu" crafted a cinematic language that remains influential and captivating over a century after its release. To comprehend the significance of "Nosferatu," it is vital to contextualize it within the broader landscape of German Expressionist cinema. Emerging in the aftermath of World War I, German society was steeped in disillusionment and societal unrest. This tumultuous backdrop provided fertile ground for artistic movements seeking to express the inner turmoil of the era. German Expressionism rejected conventional realism, favoring distorted forms and exaggerated visuals to mirror the fractured psyche of post-war Germany.

At the core of "Nosferatu" lies its groundbreaking visual techniques, emblematic of German Expressionist filmmaking. The film's iconic imagery, from the eerie landscapes to the haunting portrayal of the vampire Count Orlok, exemplifies the movement's commitment to pushing the boundaries of cinematic expression. Murnau's use of light and shadow creates a sense of foreboding, immersing the audience in a world of darkness and dread. The film's stark contrasts and angular compositions evoke a sense of unease, heightening the atmosphere of terror and suspense. Moreover, "Nosferatu" employs innovative production design to evoke a sense of otherworldly horror. The expressionistic sets, with their twisted architecture and distorted perspectives, serve as physical manifestations of the characters' psychological turmoil. From the ominous castle of Count Orlok to the desolate streets of Wisborg, each setting contributes to the film's eerie ambiance, enveloping viewers in a realm of gothic horror and macabre beauty.

Beneath its chilling exterior, "Nosferatu" delves into profound thematic territory, exploring themes of fear, desire, and the human condition. At its core is the enigmatic figure of Count Orlok, a symbol of primal terror and forbidden desire. Through his nocturnal prowling and insatiable thirst for blood, Orlok embodies humanity's darkest impulses, confronting viewers with the primal fears that lurk within us all. Moreover, "Nosferatu" offers a poignant commentary on the clash between modernity and tradition, as represented by the character of Thomas Hutter and his wife Ellen. Hutter's journey to the remote castle of Count Orlok mirrors the encroachment of modernity upon the ancient traditions of the past. As Hutter grapples with the horrors he encounters, the film explores the fragility of civilization in the face of primal instinct and supernatural evil.

"Nosferatu" stands as a landmark achievement not only within the realm of German Expressionist cinema but also in the broader history of film. Its innovative visual techniques and thematic depth have left an indelible mark on subsequent generations of filmmakers, inspiring countless adaptations, homages, and reinterpretations. From the atmospheric horror of "Dracula" to the psychological depths of "Let the Right One In," the influence of "Nosferatu" reverberates throughout cinematic history. Furthermore, the film's enduring resonance with audiences speaks to its timeless appeal. As society grapples with its own fears and uncertainties, the allegorical power of "Nosferatu" continues to captivate viewers, offering a chilling reminder of the darkness that resides within us all. "Nosferatu" stands as a testament to the creative genius of German Expressionist cinema, showcasing its innovative visual techniques and thematic depth. Through its haunting imagery and profound exploration of fear and desire, the film crafts a distinctive cinematic language that continues to captivate and inspire audiences. As a timeless masterpiece of horror cinema, "Nosferatu" invites viewers to confront the primal terrors that lurk in the shadows, reminding us of the enduring power of artistic expression to illuminate the darkest corners of the human psyche.

"Metropolis" (1927), directed by Fritz Lang, stands as a towering achievement of German Expressionist cinema, renowned for its innovative visual techniques and thematic depth. This essay endeavors to dissect how Lang's masterpiece crafted a cinematic language that remains influential and mesmerizing nearly a century after its release. To grasp the significance of "Metropolis," it's essential to contextualize it within the tumultuous post-World War I era. Germany was grappling with social and economic upheaval, providing fertile ground for artistic movements like German Expressionism. Rejecting realism, Expressionist artists sought to convey the inner turmoil of the era through distorted forms and exaggerated visuals, a backdrop against which "Metropolis" emerged. At the heart of "Metropolis"

lies its ground-breaking visual techniques, which redefine the possibilities of cinematic expression. Lang's meticulous attention to detail is evident in every frame, from the towering skyscrapers of the futuristic city to the labyrinthine depths of its underground catacombs. The film's use of light and shadow creates a stark contrast between the gleaming surfaces of the upper city and the oppressive darkness below, symbolizing the stark divide between the privileged elite and the oppressed masses. "Metropolis" showcases Lang's mastery of scale and composition, with sweeping camera movements and elaborate set designs that transport viewers into a world of staggering grandeur and opulence. The film's iconic imagery, from the Moloch machine to the robot Maria, epitomizes the Expressionist aesthetic, blending futuristic visions with timeless archetypes to create a visually stunning and thematically rich cinematic experience. Beneath its dazzling exterior, "Metropolis" delves into profound thematic territory, exploring themes of class struggle, technological progress, and the human condition. At its core is the conflict between the ruling elite, represented by the city's mastermind, Joh Fredersen, and the oppressed workers who toil beneath the surface. Lang's critique of capitalism and industrialization is palpable, as he exposes the dehumanizing effects of unchecked power and exploitation. "Metropolis" offers a nuanced exploration of the nature of humanity itself, as seen through the character of the robot Maria. Created in the image of the virtuous Maria, the robot becomes a symbol of both humanity's potential for greatness and its capacity for destruction. Through the robot's manipulation by the villainous Rotwang, Lang probes the depths of human desire and the consequences of playing god with technology.

"Metropolis" stands as a landmark achievement not only within German Expressionist cinema but also in the broader history of film. Its innovative visual techniques and thematic depth have left an indelible mark on subsequent generations of filmmakers, inspiring countless homages, adaptations, and reinterpretations. From the dystopian landscapes of "Blade Runner" to the futuristic cityscapes of "The Matrix," the influence of "Metropolis" reverberates throughout cinematic history. Furthermore, the film's enduring relevance speaks to its timeless appeal. As society grapples with issues of inequality, technological progress, and the human cost of industrialization, "Metropolis" remains a powerful reminder of the dangers of unchecked power and the importance of compassion and empathy in shaping a better future. "Metropolis" stands as a testament to the creative genius of Fritz Lang and the enduring power of German Expressionist cinema. Through its innovative visual techniques and thematic depth, the film crafts a distinctive cinematic language that continues to captivate and inspire audiences. As a timeless masterpiece of science fiction and social commentary, "Metropolis" invites viewers to contemplate the complexities of the human condition and the moral dilemmas of progress, reminding us of the enduring relevance of artistic expression in illuminating the darkest corners of the human psyche.

Conclusion

German Expressionist film remains a vital and influential chapter in the history of cinema. Its exploration of visual and psychological depths continues to captivate audiences and inspire filmmakers to push the boundaries of storytelling and expression. By understanding the origins, characteristics, and impact of German Expressionism, we gain insight into the power of cinema as a medium for exploring the complexities of the human experience. This research article provides a comprehensive overview of German Expressionist cinema, analysing its origins, key characteristics, notable films, and enduring influence on the art of filmmaking. Through an exploration of its visual and thematic elements, we gain insight into the movement's significance and legacy in the history of cinema.

References

Eisner, L. (2008). The haunted screen: Expressionism in the German cinema and the influence of Max Reinhardt. University of California Press.

Elsaesser, T. (2000). Weimar cinema and after: Germany's historical imaginary. Routledge.

Kracauer, S. (2002). From Caligari to Hitler: A psychological history of the German film. Princeton University Press.

Naremore, J. (2000). Film noir and American society. In R. Maltby, G. Leggott, & S. Palmer (Eds.), The British film industry in the 1970s: Capital, culture, and creativity (pp. 247-261). Edinburgh University Press.

Ott, F. (2007). The Cabinet of Dr. Caligari. British Film Institute.

Elsaesser, T. (2019). Weimar cinema and after: Germany's historical imaginary. Routledge.

Parkinson, D. (1997). History of film. Thames & Hudson.

Prawer, S. S. (1996). Nosferatu: Phantom der Nacht. British Film Institute.

Rentschler, E. (1996). The ministry of illusion: Nazi cinema and its afterlife. Harvard University Press.

Rotha, P. (2010). The Film Till Now: A Survey of World Cinema. Dover Publications.

Sabine, H. (2012). Metropolis. British Film Institute.

***

THE EFFECTS OF FITNESS TRAINING ON THE KINEMATICAL VARIABLES OF OBESE PEOPLE DURING RUNNING

-Satish Kumar
Research Scholar,
MATS School of Physical Education,
MATS University, Raipur,
Chhattisgarh, India.

-Dr. Alok Kumar Singh,
Assistant Professor,
MATS School of Physical Education,
MATS University, Raipur,
Chhattisgarh, India.

Abstract

The purpose of the study was to examine the effects of fitness training on the kinematical variables of obese people during running. For the purpose of this study, (N=200) male and female obese from Chhattisgarh state were selected on purposive basis as subjects for this study. The age of the subjects was 35 to 45 years. Random Sampling design was used to select the subjects of this study. Selected subjects were underwent for six week fitness training (Endurance training, strength training, circuit training, plyometric training and speed training) by taking into the consideration of the subjects. In this study the investigator analysed the sagittal plane movement, selected variables were stride length during running, Hip Joint Angle during running, all these two variables were tested during running between pretest and posttest, through Kinovea software. The obtained data were subjected to statistical treatment using Descriptive (Mean ± SE) and inferential (ANOVA) statistics was employed to analyse the data obtained from the subjects. For this the research scholar used the Micro-Soft Excel and SPSS statistical tool to analyze the data. In all cases 0.05 level of significance was fixed to test the hypothesis of this study. Result indicates that the effect of treatment (comparison between pre and post data) on stride length of the both the groups significant (p<0.01) difference was seen, The stride length during running after training was found to be significantly longer than that of before training for pooled subjects, The hip Joint angle during running after training was found to be significantly greater than that of before training for pooled subjects.

Key words: Fitness training, Biomechanical analysis, sagittal plane, joint angle, Kinematical variables, 2D Analysis, Kinovea.

Introduction

Obesity is a medical condition in which excess body fat has accumulated to an extent that it may have a negative effect on health. People are generally considered obese when their body mass index (BMI), a measurement obtained by dividing a person's weight by the square of the person's height, is over 30 kg/m2; the range 25–30 kg/m2 is defined as overweight.

Obesity is most commonly caused by a combination of excessive food intake, lack of physical activity, and genetic susceptibility. A few cases are caused primarily by genes, endocrine disorders, medications, or mental disorder. The view that obese people eat little yet gain weight due to a slow metabolism is not medically supported. On average, obese people have a greater energy expenditure than their normal counterparts due to the energy required to maintain an increased body mass. Obesity, which is defined as the excessive accumulation of adipose tissue in the body, has become a significant public health concern in the 21st century. The World Health Organization (WHO) reports a significant increase in obesity rates, which have nearly quadrupled since 1975. This phenomenon has impacted individuals across many age groups and social strata. The ongoing global pandemic not only gives rise to a multitude of detrimental health consequences but also imposes a significant strain on healthcare systems across the globe (Haslam and James, 2005; Peeters et.al., 2003; Whitelock et.al., 2009).

Several open-source platforms for markerless motion capture offer the capacity to monitor 2-dimensional (2D) kinematics using inexpensive digital video cameras, derived from an Open-Source Markerless Motion Capture Platform and Manual Digitization. We wanted to see how well one of these platforms, DeepLabCut, performed. The researchers looked at 84 runners who had sagittal plane recordings of their left lower leg taken. A deep neural network was trained for 2D pose estimation of the foot and tibia segments using data from 50 people. For continuous 2D coordinate data, the trained model was employed to analyse novel films from 34 people. The train/test errors were used to assess the overall network accuracy. Manual digitization and markerless methods were used to compute foot and tibia angles for 7 strides. Mean absolute differences and intraclass correlation coefficients were used to determine agreement. To examine systematic bias, Bland–Altman plots and paired t tests were performed. The trained network's train/test errors were 2.87/7.79 pixels (0.5/1.2 cm), respectively. The markerless method

was found to overestimate foot angles and underestimate tibial angles (P<.01, d = 0.06–0.26) when compared to manual digitization. However, the segment computation methods had excellent agreement, with mean differences of ≤1° and intraclass correlation values of ≥.90. Overall, these findings show that markerless, open-source approaches are a viable new tool for assessing human mobility. **Caleb D. Johnson et al. (2022)**

The impact of a commercially available variable stiffness shoe (VSS) on 3-dimensional ankle, knee, and hip mechanics as well as predicted knee contact forces when compared to a control shoe. After providing informed consent, fourteen subjects (10 females) with knee osteoarthritis underwent gait analysis. Control shoe (New Balance MW411v2) and VSS were the shoe conditions tested (Abeo SMART3400). To calculate knee contact forces, an OpenSim musculoskeletal model with static optimization was employed. No variations in joint kinematics or knee adduction or flexion moments were found (P =.06; P =.2). For VSS versus control, there were increases in knee internal and external rotation (P =.02; P =.03), as well as hip adduction and internal rotation moments (P =.03; P =.02). Although the calculated contact forces did not differ across shoes (total P =.3, medial P =.1, and lateral P =.8), contact force changes were linked with changes in the knee adduction moment (medial r2 =.61; P<.007). Estimated contact forces did not decrease due to high variability in knee flexion moment changes and increases in the internal rotation moment mixed with minor decreases in the knee adduction moment. These findings show that assessing VSS only based on the knee adduction moment may be insufficient in capturing its impact on osteoarthritis. **Ethan Steiner et al. (2022)**

Methodology

The purpose of this study is to find out the effects of fitness training on the kinematical variables of obese people during running. The research scholar reviewed the available scientific literature pertaining to biomechanics, kinetics and kinematics of obese consulted with experts and faculty members regarding the selection of variables for the present study

To achieve the purpose of these study (N=200) male and female obese people from Chhattisgarh state were selected on purposive basis as subjects for this study. The age of the subjects was 35 to 45 years. Selected subjects were underwent for six-week fitness training (Endurance training, strength training, circuit training, plyometric training and speed training) by taking into the consideration of the subjects, Static group design was adopted by the research scholar. In this study KINOVEA software (Version 0.9.5) were used to measure all the kinematical variables such as stride length of the obese during running, angle of stride length from hip joint of the obese during running, all these two variables were tested during running between pretest and posttest.

Analytical Procedure

The data were analyzed by using Descriptive (Mean ± SE) and inferential (ANOVA) statistics was employed to analyse the data obtained from the subjects. For this the research scholar used the Micro-Soft Excel and SPSS statistical tool to analyze the data.To test the hypothesis the level of significance was set at 0.05 level of significance, which was considered adequate for the purpose of this study.

Results

Table 1: Showing the comparison of Stride Length during Running between pre and post test

Gender	Pre Test		Post Test		ANOVA	
	Mean ± SE	SD	Mean ± SE	SD	F-value	P-value
Male	61.40 ± 0.46	4.67	77.74 ± 0.34	3.4	797.383	p<0.01
Female	49.60 ± 0.28	2.89	59.60 ± 0.50	5.07	292.899	p<0.01

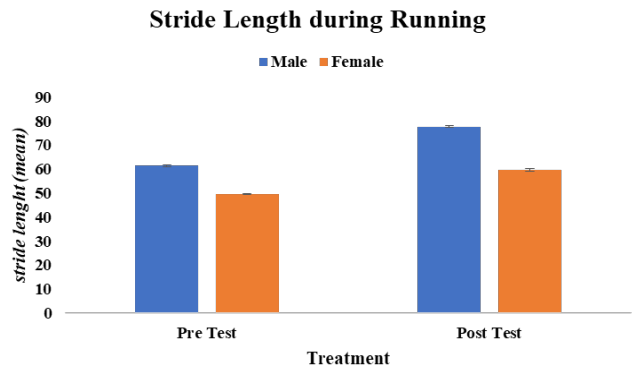

Figure 1: Showing the comparison of Stride Length during Running before and after training of obese male and female subjects

The table 1 and figure 1 demonstrated the comparison of stride length during running before training and after training for obese male and female subjects. The mean value for stride length before training was found to be (61.40 ± 0.46) and after training was found to be (77.74 ± 0.34) for male subjects. The standard deviation was found 4.67 and 3.4 for before training and after training respectively. The inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p <0.01) significant difference amongst the studied groups i.e. before training and after training for male subjects (table 1 and figure 1). The stride length during running after training was found to be significantly longer than that of before training for male subjects (table 1 and figure 1). Similarly, for female subjects The mean value for stride length before training was found to be (49.60 ± 0.28) and after training was found to be (59.60 ± 0.50) for female subjects. The standard deviation was found 2.89 and 5.07 for before training and after training respectively. The inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p <0.01) significant difference amongst the studied groups i.e. before training and after training for female subjects (table 1 and figure 1). The stride length during running after training was found to be significantly longer than that of before training for female subjects (table 1 and figure 1).

Table 2: Showing the comparison of Hip Joint Angle during Running between pre and post test

Gender	Pre Test		Post Test		ANOVA	
	Mean ± SE	SD	Mean ± SE	SD	F-value	P-value
Male	37.96 ± 0.23	2.31	39.33 ± 0.33	3.32	11.38	p<0.01
Female	37.03 ± 0.20	2.02	39.30 ± 0.30	3.03	38.613	p<0.01

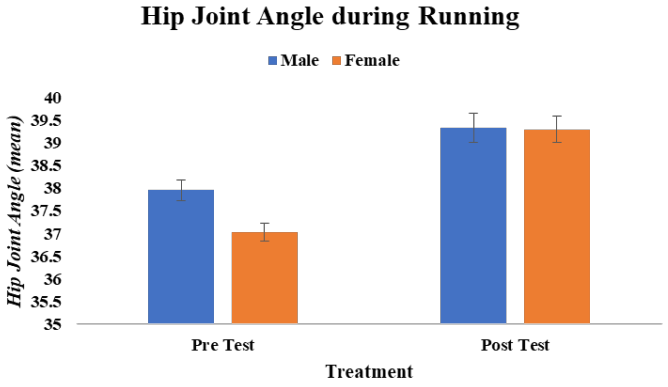

Figure 2: Showing the comparison of Hip Joint Angle during Running before and after training of obese male and female subjects.

The table 2 and figure 2 demonstrated the comparison of Hip Joint Angle during Running before training and after training for obese male and female subjects. The mean value for Hip Joint Angle before training was found to be (37.96 ± 0.23) and after training was found to be (39.33 ± 0.33) for male subjects. The standard deviation was found 2.31 and 3.32 for before training and after training respectively. The inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p<0.01) significant difference amongst the studied groups i.e. before training and after training for male subjects (table 2 and figure 2). The Hip Joint Angle during Running after training was found to be significantly greater than that of before training for male subjects (table 2 and figure 2). Similarly, for female subjects The mean value for Hip Joint Angle before training was found to be (37.03 ± 0.20) and after training was found to be (39.30 ± 0.30) for female subjects. The standard deviation was found 2.02

and 3.03 for before training and after training respectively. The inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p<0.01) significant difference amongst the studied groups i.e. before training and after training for female subjects (table 2 and figure 2). The Hip Joint Angle during Running after training was found to be significantly longer than that of before training for female subjects (table 2 and figure 2).

Discussion

The study's results demonstrate statistically significant The inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p <0.01) significant difference before training and after training. The stride length during running after training was found to be significantly longer than that of before training for pooled subjects. Similar result was seen in male group. Statistically (p <0.01) significant difference between pre training and post training was found in male subjects. The stride length during running after training was found to be significantly longer than that of before training for male subjects. For female subjects the inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p <0.01) significant difference in between before training and after training for female subjects. The stride length during running after training was found to be significantly longer than that of before training for female subjects.

The inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p <0.01) significant difference before training and after training. The hip joint angle during running after training was found to be significantly longer than that of before training for pooled subjects. Similar result was seen in male group. Statistically (p <0.01) significant difference between pre training and post training was found in male subjects. The hip joint angle during running after training was found to be significantly longer than that of before training for male subjects. For female subjects the inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p <0.01) significant difference in between before training and after training for female subjects. The hip joint angle during running after training was found to be significantly longer than that of before training for female subjects. Following are the some of the studies in which a significant results was found with related to the running style.

The effects of wobbling mass components on Joint Dynamics was the subject of a study. During movement, soft tissue moves in relation to the underlying bone. Soft tissue motion has been proven to affect parts of running dynamics; however, little is known about the impact of soft tissue motion on joint kinetics. Soft tissue motion was modelled utilising wobbling components in an inverse dynamics analysis for a single individual in the current study to explore the impacts of the soft tissue on joint kinetics at the knee and hip. The additional wobbling components had a minor impact on knee joint kinetics but a significant impact on hip joint dynamics. When the model without wobbling components was compared to the model with wobbling components, the hip joint power and net negative and net positive mechanical effort at the hip were considerably overestimated. For low-frequency wobbling situations, the amplitude of peak hip joint moments was 50 percent greater when computed using the wobbling masses compared to a rigid body model, but the peaks were within 15% for high-frequency wobbling conditions. Soft tissue motion should not be overlooked in inverse dynamics assessments of running, according to this study. **Samuel E. Masters et al. (2022)**

The Use of the Hip and Knee Extensors During Athletic Movements Using 2D Video. There is a need for a practical approach to define movement behaviour indicative of how individuals use the hip and knee extensors during dynamic tasks, given that higher usage of the knee extensors relative to the hip extensors may contribute to various knee ailments. The goal of this research was to see if the difference in sagittal plane trunk and tibia orientations from 2D video (2D trunk–tibia) could be utilised to predict the average hip/knee extensor moment ratio during athletic motions. Six tasks were completed by 39 healthy athletes (15 males and 24 females) (step down, drop jump, lateral shuffle, deceleration, triple hop, and side-step-cut). Simultaneously, lower-extremity kinetics (3D) and sagittal plane video (2D) were captured. To see if the 2D trunk–tibia angle at peak knee flexion predicted the average hip/knee extensor moment ratio during the deceleration phase of each task, researchers used linear regression analysis. When body mass was controlled for, an increase in the 2D trunk–tibia angle predicted an increase in the average hip/knee extensor moment ratio (all P<.013, R2 =.17–.77). The 2D trunk–tibia angle is a realistic way to assess movement behaviour that reflects how people use their hip and knee extensors during dynamic tasks. **Rachel K. Straub et al. (2021)**

The 2D Kinematical analysis of upper extremity of obese during walking with implementation of fitness training, In this study the researcher found that Result indicates that the effect of treatment (comparison

Figure 2: Showing the comparison of Hip Joint Angle during Running before and after training of obese male and female subjects.

The table 2 and figure 2 demonstrated the comparison of Hip Joint Angle during Running before training and after training for obese male and female subjects. The mean value for Hip Joint Angle before training was found to be (37.96 ± 0.23) and after training was found to be (39.33 ± 0.33) for male subjects. The standard deviation was found 2.31 and 3.32 for before training and after training respectively. The inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p<0.01) significant difference amongst the studied groups i.e. before training and after training for male subjects (table 2 and figure 2). The Hip Joint Angle during Running after training was found to be significantly greater than that of before training for male subjects (table 2 and figure 2). Similarly, for female subjects The mean value for Hip Joint Angle before training was found to be (37.03 ± 0.20) and after training was found to be (39.30 ± 0.30) for female subjects. The standard deviation was found 2.02 and 3.03 for before training and after training respectively. The inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p<0.01) significant difference amongst the studied groups i.e. before training and after training for female subjects (table 2 and figure 2). The Hip Joint Angle during Running after training was found to be significantly longer than that of before training for female subjects (table 2 and figure 2).

Discussion

The study's results demonstrate statistically significant The inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p <0.01) significant difference before training and after training. The stride length during running after training was found to be significantly longer than that of before training for pooled subjects. Similar result was seen in male group. Statistically (p <0.01) significant difference between pre training and post training was found in male subjects. The stride length during running after training was found to be significantly longer than that of before training for male subjects. For female subjects the inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p <0.01) significant difference in between before training and after training for female subjects. The stride length during running after training was found to be significantly longer than that of before training for female subjects.

The inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p <0.01) significant difference before training and after training. The hip joint angle during running after training was found to be significantly longer than that of before training for pooled subjects. Similar result was seen in male group. Statistically (p <0.01) significant difference between pre training and post training was found in male subjects. The hip joint angle during running after training was found to be significantly longer than that of before training for male subjects. For female subjects the inferential analysis (ANOVA) revealed statistically (p <0.01) significant difference in between before training and after training for female subjects. The hip joint angle during running after training was found to be significantly longer than that of before training for female subjects. Following are the some of the studies in which a significant results was found with related to the running style.

The effects of wobbling mass components on Joint Dynamics was the subject of a study. During movement, soft tissue moves in relation to the underlying bone. Soft tissue motion has been proven to affect parts of running dynamics; however, little is known about the impact of soft tissue motion on joint kinetics. Soft tissue motion was modelled utilising wobbling components in an inverse dynamics analysis for a single individual in the current study to explore the impacts of the soft tissue on joint kinetics at the knee and hip. The additional wobbling components had a minor impact on knee joint kinetics but a significant impact on hip joint dynamics. When the model without wobbling components was compared to the model with wobbling components, the hip joint power and net negative and net positive mechanical effort at the hip were considerably overestimated. For low-frequency wobbling situations, the amplitude of peak hip joint moments was 50 percent greater when computed using the wobbling masses compared to a rigid body model, but the peaks were within 15% for high-frequency wobbling conditions. Soft tissue motion should not be overlooked in inverse dynamics assessments of running, according to this study. **Samuel E. Masters et al. (2022)**

The Use of the Hip and Knee Extensors During Athletic Movements Using 2D Video. There is a need for a practical approach to define movement behaviour indicative of how individuals use the hip and knee extensors during dynamic tasks, given that higher usage of the knee extensors relative to the hip extensors may contribute to various knee ailments. The goal of this research was to see if the difference in sagittal plane trunk and tibia orientations from 2D video (2D trunk–tibia) could be utilised to predict the average hip/knee extensor moment ratio during athletic motions. Six tasks were completed by 39 healthy athletes (15 males and 24 females) (step down, drop jump, lateral shuffle, deceleration, triple

hop, and side-step-cut). Simultaneously, lower-extremity kinetics (3D) and sagittal plane video (2D) were captured. To see if the 2D trunk–tibia angle at peak knee flexion predicted the average hip/knee extensor moment ratio during the deceleration phase of each task, researchers used linear regression analysis. When body mass was controlled for, an increase in the 2D trunk–tibia angle predicted an increase in the average hip/knee extensor moment ratio (all P<.013, R2 =.17–.77). The 2D trunk–tibia angle is a realistic way to assess movement behaviour that reflects how people use their hip and knee extensors during dynamic tasks. **Rachel K. Straub et al. (2021)**

The 2D Kinematical analysis of upper extremity of obese during walking with implementation of fitness training, In this study the researcher found that Result indicates that the effect of treatment (comparison between pre and post data) left hand backward swing shoulder joint angle of the both the groups significant (p0.05) difference was seen, The Right Hand Forward Swing Shoulder Joint Angle during walking after training was found to be significantly greater than that of before training for pooled subjects. **S Kumar et al. (2023)**

Biomechanical analysis of walking style of obese with implementation of fitness training. In this study the researcher found that Result indicates that the effect of treatment (comparison between pre and post data) on stride length of the both the groups significant (p0.05) difference was seen, The stride length during walking after training was found to be significantly longer than that of before training for pooled subjects, The hip Joint angle during walking after training was found to be significantly greater than that of before training for pooled subjects, shoulder height during walking of the both the groups significant (p0.05) difference was seen. **S Kumar et al. (2023)**

In summary, this study provides insights into the possible efficacy of Fitness training as an intervention approach to improve the kinematical variables of running style of obese men and women. The findings of this study have significant difference in running style of obese in terms of stride length, angle of the stride length. However, it is necessary to conduct additional research with bigger sample sizes and longer intervention durations in order to validate and build upon these encouraging findings.

Reference:

Caleb D. Johnson., Jereme Outerleys., and Irene S. Davis. (2022) Agreement Between Sagittal Foot and Tibia Angles During Running Derived from an Open-Source Markerless Motion Capture Platform and Manual Digitization. Journal of Applied Biomechanics, 38(2), pp. 111–116.

Ethan Steiner., and Katherine A. Boyer. (2022) Variable Stiffness Shoes for Knee Osteoarthritis: An Evaluation of 3-Dimensional Gait Mechanics and Medial Joint Contact Forces. Journal of Applied Biomechanics, 38(2), pp. 117–125

Samuel E. Masters., and John H. Challis. (2022) The Effects of Wobbling Mass Components on Joint Dynamics During Running. Journal of Applied Biomechanics, 38(2), pp. 69-77.

Satish Kumar and Dr. Alok Kumar Singh. (2023) 2D Kinematical analysis of upper extremity of obese during walking with implementation of fitness training. Journal of Clinical Otorhinolaryngology, Head, and Neck Surgery, 27(2), pp. 2287-2293.

Satish Kumar and Dr. Alok Kumar Singh. (2023) Biomechanical analysis of walking style of obese with implementation of fitness training. Journal of Clinical Otorhinolaryngology, Head, and Neck Surgery, 27(2), pp. 2279-2286.

Rachel K. Straub., Alex Horgan., and Christopher M. Powers. (2021) Clinical Estimation of the Use of the Hip and Knee Extensors During Athletic Movements Using 2D Video. Journal of Applied Biomechanics, 37 (5) pp. 458–462.

Ahalee C. Farrow., and Ty B. Palmer. (2021) Age-Related Differences in Hip Flexion Maximal and Rapid Strength and Rectus Femoris Muscle Size and Composition. Journal of Applied Biomechanics, 37 (4) pp. 311–319.

Kevin Alan Valenzuela., Songning Zhang., Lauren Elizabeth Schroeder., Joshua Trueblood Weinhandl., Jeffrey Reinbolt., Rebecca Zakrajsek., and Harold Earl Cates. (2021) Overground Walking Biomechanics of Dissatisfied Persons With Total Knee Replacements. Journal of Applied Biomechanics, 37 (4) pp. 365–372.

Peeters A, Barendregt JJ, Willekens F, Mackenbach JP, Al Mamun A, Bonneux L (January 2003). "Obesity in adulthood and its consequences for life expectancy: a life-table analysis" (PDF). Annals of Internal Medicine. 138 (1): 24–32.

Whitlock G, Lewington S, Sherliker P, Clarke R, Emberson J, Halsey J, Qizilbash N, Collins R, Peto R (2009). "Body-mass index and cause-specific mortality in 900 000 adults: collaborative analyses of 57 prospective studies". Lancet. 373 (9669): 1083–96.

The return to fitness for athletes during COVID-19 pandemic

-Dr.ALOK KUMAR SINGH
Assistant Professor,
Deptt. of Physical Education,
MATS University Raipur

-SEVEN DAS MANIKPURI
Scholar, Deptt. of Physical Education
MATS University, Raipur

Abstract: The sports community suffered significant obstacles due to COVID-19. The athletes who were COVID-19 positive displayed a significant amount of varying clinical features developing mild to severe symptoms which could lead to intensive care and hospitalization. The immune system is negatively affected by lack of exercising thus increasing the chances of body getting affected by comorbidities and infections. Sports medical professionals found that it is extremely difficult to make a safe return in physical activities. If the athlete really wants to get their former fitness before COVID back for sports it's crucial that they are under the supervision of a trained sports medical professional. Low intensity should be the start of an individual training program would be increased slowly in accordance to the metabolic equivalent. Thus, it's clear that one should take opinions of medical professionals' prior of returning to training post infection.

Keywords: COVID-19; Coronavirus; Exercise; Athletes; Return to Sports.

1. INTRODUCTION:

On December of 2019, the WHO (World Health Organization) noticed that the city of Wuhan in china had a rise in pneumonia cases. The Chinese government in the first week January of 2020 officially acknowledged the existence of a new virus which we know as COVID-19. Approximately around March 10, 2020 the WHO announced that COVID-19 outbreak is considered a global pandemic.[1]Within a few months, the COVID-19 virus become a global wide issue that has more than 153,517 cases recorded and nearly 10,000 global mortality rate.[2]As the war against the virus raged on, the world of sports faced the greatest health warfare that was waged in recent times. In spite of the athletes who satisfied the following conditions:

(i) Eager to train,

(ii) Participation in sporting events, and

(iii) Being a member in a sporting association,

Being not highly susceptible to COVID-19, they still have a chance of getting infected by COVID-19 ,3,4As hypnotized, a majority sportsmen was infected with the COVID-19 virus or were close to someone who turned out to be positive with COVID-19.[5,6] Athletes have to follow the suggested strategies of infection prevention for general public, that includes self-isolation throughout symptomatic periods, for limiting the spread of corona virus and keeping yourself safe along with your family and neighbourhood.[6]

The public health advices were significantly important, as an example the world wide lockdown of health clubs, gyms and stadiums along with the rule of being quarantined or athletes self-isolating themselves for 2 weeks after discovering that they were positive from the tests. [6,7] The intention of the suggestions was limiting the spread of the virus along

with ensuring the safety of individuals and their communities. Even though as a result various daily life activities being interrupted including physical activity in general along with sports. These sudden changes to the style of living caused by self isolation and inactivity led to the increased danger of negative, acute and potentially long term health issues for the sportsmen. .[7,8] There was the issue of grave implications for athlete's Immunity system along with their mental and physical health which was a result of lacking in fitness routines and participation in sporting activities, this also led to provocation of pre-existing pathologies or them developing newer pathologies.[7]

2. THE PROBLEM

A way to explain physical inactivity is having an increased susceptibility to infections due to disrupting your exercise regimen and insufficient daily activity; it does not matter if you are an athlete or not because dysfunction and harm to the components of your immunity system and increase in your susceptibility will over time cause you to develop additional comorbidities.[7] additionally. The physical activities being limited can still negatively affect the physical performance of an athlete due to loosing the skeletal muscle mass along with decline in the strength of associated muscle.[9,10]We have already described how metabolic pathways were negatively affected by physical inactivity. [7,9]as an example, for two weeks low walking activity (reducing 10,000 steps per day to 1,000) may cause or assist in causing metabolic changes, including decreasing the peripheral sensitivity for insulin, lipid profile being altered, and higher fat deposition.[8,11] they documented the reduced physical activity of athlete infected with COVID-19 during the self-isolation. The reaction and recovery of every athlete was different and some might have difficulty trying to return to the documented activities[7]. Thus it's very important that COVID-19 positive athletes are safely instructed back to training.

3. GENERAL RECOMMENDATIONS FOR ATHLETES WITH COVID-19

Consequently, a global panel of classified professional athletes where diagnosed COVID-19 positive were separated into five distinct groups which are as follows:

(i) Asymptomatic;

(ii) People who showed mild symptoms;

(iii) People who showed moderate symptoms;

(iv) People who showed severe symptoms without mechanical ventilation; and

(v) Individuals with extreme symptoms who require mechanical ventilation and/or suffer with myocardial injury.[5,6,8]

Furthermore They provided suggestions explicit to groups for returning safely to exercising.[5,6,8] whilst most COVID-19 positive athletes remained asymptomatic or if they showed mild symptoms, they are recommended a full medical evaluation before resuming exercising. In particular, for patients who are asymptomatic and have been confirmed to be positive of COVID were provided two weeks of self-isolation post workout combined with rest, leading to a steady comeback to physical activity while acting according to the medical team directions.

Sportsmen who displayed mild signs but doesn't re-

quire hospitalization were recommended another two weeks of social distancing, followed by tests on their condition by sampling their blood (brain natriuretic peptide, troponin and C-reactive protein) and a 12-lead Echocardiography and if its medically suggested a electrocardiogram. A steady comeback to physical activities according to the medical team directions was also suggested for this group.

A more complex test protocol recommends that athletes who display moderate to severe indications need to be hospitalized. A multidisciplinary evaluation that is comprehensive is recommended to athletes who were hospitalized with respiratory issues and myocardial damage prior to resume their exercise.

Ideally, a team which consists of a sports medicine physician, a sports cardiologist, a pulmonologist, and a professional athletic coach have to carry out the individual assessment.[5,6] Barker-Davies *et al*. recommended an extended duration of three-six months abstinence of exercise in athletes who were confirmed to have myocarditis along with the adjustment of rest period should be based on the clinical severity and duration of the underlying illness.[13]Verwoert*et al*. Suggested a wide-ranging plan for rehabilitation of athletes, including a comprehensive cardiovascular evaluation before returning to fitness and sport, additionally cardiac complications will also be intensively monitored.[6]carefully observing patients under hospitalization due to COVID-19-related respiratory symptoms is generally warranted. Moreover it's recommended that people suffering from critical levels of respiratory problems are seen by a pulmonologist in spite of it steadily making a return to exercising while they are recovering.[8]

4. EXERCISE AND VIRAL INFECTIONS

A majority of viral infections results in the inflammatory cells being employed and activated for example macrophages and neutrophils, which release an array of molecules (cytokines, metalloproteinase, and oxygen burst apparatus) which were in relation to tissue damage and dysfunction[11]. The protective immunity and inflammatory response having a great balance leads to both infection resolution and virus elimination.

Exercising acts as the modulator of immune system, both decreasing the danger of developing an systemic inflammatory processes and increasing the cell-mediated immunity.[15] it was suggested by many researchers that there is a direct relation between exercise and reduction of death toll resulted by pneumonia and influenza along with bettering the effects on cardio respiratory function and metabolic profile, including faster blood pressure, blood glucose, cholesterol, triglycerides in addition to the waist circumference[7,9–11,16]. Among the various other advantages of physical activity mainly at low to moderate intensity, involves a reduced recovery rate from viral infection.[16]

On top of its useful impact on the metabolic and cardiovascular function overall, exercising has also showcased decrease in various problems related to mention health mainly decreasing anxiety and depression due to it better self-esteem and cognition.[16]its also showcased by previous research that exercise can lower symptoms such as lower self-esteem in addition to reduction of harmful effects from self-isolation in quarantine.[15,16]

Endogenous opioids for example a significant role is

played by endorphins when it comes to hormonal and metabolical changes with exercising meanwhile being associated to euphoria, which showcased important growth after running/exercising.[7] better overall health in COVID-19 victims (physiological and psychological) could assist them in completing the daily activities required which enabling them to return back to working.[16]

After the pandemic is over and athletes of all skill levels return to training, special attention should be given to the intensity and volume of the training. The act of getting back to the training can prove to be difficult for people who are recovering from the COVID-19 virus. Regarding this, clinical diagnosed symptoms should be the basis for coming back to exercise and patients showcasing symptoms should be encouraged to follow a training program of low-intensity while being self-isolated for the duration 72 hours after recovering from the symptoms.

This regime can be customized to the equipment available such as an treadmill and/or ergo meter, and might also include resistance exercises.[8,13]They must also keep away from High-intensity training because of it being associated with a greater threat of getting infected in upper respiratory tract and further issues, including unexpected cardiac arrest.[7,10,11]Past research has also showcased that exercises of low- to moderate-intensity makes the immunity system stronger, meanwhile high-intensity training makes the immunity system weaker in addition to growing vulnerable to getting sick.[7,10]

It should also be taken into consideration that a combination of high- and low-intensity training is a important factor in allowing the advance sportsmen to improve their aerobic ability and achieving a higher score in performance during training.[19]its also significant for sportsmen to conclude the perfect timing before you could start exercising again with/or high-intensity exercise after getting infected. Returning to the intense training while the athlete is still suffering from a systemic infection that is commonly associated persistent high fever and coughing in addition to breath shortness is significantly linked to a grave danger of critical complications such as myocarditis.[20]

Sportsmen diagnosed with COVID-19 should choose for gradual return to the physical activity once symptoms were resolve so they can gain their former fitness levels before the pandemic.[7,8] even though information on coming back to physical activity post COVID-19 is restricted, individuals should at least perform a week of low-intensity exercise prior to doing more intense and/or more straining training. Due to long-lasting periods physical inactivity (atleast a two weeks of rest with exercising), athlete performing a recuperation from the symptoms may be at greater risk of getting injured.[8]To avoid these injuries, Three metabolic equivalents (METs) were suggested by Barker-Davies et al. For the duration of two-three weeks.[13] for Physical activity there are 3 classification which are as follows low-intensity (<3 METs), moderate-intensity (3–6 METs) and high-intensity (>6 METs).[17,18] exercising on a treadmill (walking speed 3.2 km/h) with the ergometer (and lt;50W) in addition to/or instead do resistance training using light weights corresponding to the three METs and thus are the potential options for starting a exercising program [18]. Low intensity training program should be the starting point which can be steadily increased.[17, 18]

Additionally, a healthy COVID-19 positive athlete after seven days of being symptom-free could continue their training at half the intensity and volume of a standard training.[8]It's significant to consider the current suggestions for various athletes reporting COVID-19 related symptoms after recovering from the disease, in particular through the high-intensity training.[7,16]They might involve runners who suffer from persisting fatigue and swimmers who also show persistent symptoms If symptoms such as shortness of breath, cough, extreme tiredness, fever and tachycardia arise[8].the training must be discontinued along with talking to a sports medical professional, as these symptoms can be associated with a recurrence or reactivation of the COVID-19 virus. It is also significant to consider that starting the training at a normal intensity and volume before making full recovery can increase the risk of getting a severe injury along with otherwise / illness.[7] The risk persists during moments of high intensity. Primarily this is a problem issue for sporting athletes and non-professional.[11]Most can make a complete recovery with a individualized, progressive training program.[6,7]

5. CONCLUSION

COVID-19 is a global pandemic that affected everyone to varying degrees and ranges from mild symptoms which last only a few days due to myocardial damage, fatality and respiratory failure; Even athletes were not safe from the danger of getting COVID-19. Unprecedented challenges were faced by healthcare workers in relation to the COVID-19 virus and its complications. Thus, it's very significant to follow and consider the rapid changing scientific scene of who are coming back to sport in one piece after being COVID-19 positive. It's understandable why developing these basic recommendations is important the securing the return of sportsmen to training.

References

Cucinotta D, Vanelli M. WHO declares COVID-19 a pandemic. Acta Biomed 2020; 91:157–60. https://doi.org/10.23750/abm.v91i1.9397.

Araújo CG, Scharhag J. Athlete: A working definition for medical and health sciences research. Scand J Med Sci Sports 2016; 26:4–7. https://doi.org/10.1111/sms.12632.

Löllgen H, Bachl N, Papadopouloou T, Shafik A, Holloway G, Vonbank K, et al. Infographic. Clinical recommendations for return to play during the COVID-19 pandemic. Br J Sports Med 2020; 55:344–5. https://doi.org/10.1136/bjsports-2020-102985.

Verwoert GC, de Vries ST, Bijsterveld N, Willems AR, vdBorgh R, Jongman JK, et al. Return to sports after COVID-19: A position paper from the Dutch Sports Cardiology Section of the Netherlands Society of Cardiology. Neth Heart J 2020; 28:391–5. https://doi.org/10.1007/s12471-020-01469-z.

Metzl JD, McElheny K, Robinson JN, Scott DA, Sutton KM, Toresdahl BG. Considerations for return to exercise following mild-to-moderate

COVID-19 in the recreational athlete. HSS J 2020; 16:1–6. https://doi.org/10.1007/s11420-020-09777-1.

Booth FW, Roberts CK, Laye MJ. Lack of exercise is a major cause of chronic diseases. ComprPhysiol 2012; 2:1143–211. https://doi.org/10.1002/cphy.c110025.

Gentil P, de Lira CAB, Souza D, Jimenez A, Mayo X, de Fátima PinhoLinsGryschek AL, et al. Resistance training safety during and after the SARS-Cov-2 outbreak: Practical recommendations. Biomed Res Int 2020; 2020:3292916. https://doi.org/10.1155/2020/3292916.

Krogh-Madsen R, Thyfault JP, Broholm C, Hartvig Mortensen O, Olsen RH, Mounier R, et al. A 2-wk reduction of ambulatory activity attenuates peripheral insulin sensitivity. J ApplPhysiol (1985) 2010; 108:1034–40. https://doi.org/10.1152/japplphysiol.00977.2009.

Phelan D, Kim JH, Chung EH. A game plan for the resumption of sport and exercise after Coronavirus Disease 2019 (COVID-19) infection. JAMA Cardiol 2020; 5:1085–6. https://doi.org/10.1001/jamacardio.2020.2136.

Barker-Davies RM, O'Sullivan O, Senaratne KPP, Baker P, Cranley M, Dharm-Datta S, et al. The Stanford Hall consensus statement for post-COVID-19 rehabilitation. Br J Sports Med 2020; 54:949–59. https://doi.org/10.1136/bjsports-2020-102596.

Rouse BT, Sehrawat S. Immunity and immunopathology to viruses: What decides the outcome? Nat Rev Immunol 2010; 10:514–26. https://doi.org/10.1038/nri2802.

Lega S, Naviglio S, Volpi S, Tommasini A. Recent insight into SARS-CoV2 immunopathology and rationale for potential treatment and preventive strategies in COVID-19. Vaccines (Basel) 2020; 8:224. https://doi.org/10.3390/vaccines8020224.

Toresdahl BG, Asif IM. Coronavirus Disease 2019 (COVID-19): Considerations for the competitive athlete. Sports Health 2020; 12:221–4. https://doi.org/10.1177/1941738120918876.

Baggish AL, Levine BD. Icarus and sports after COVID 19: Too close to the sun? Circulation 2020; 142:615–17. https://doi. org/10.1161/CIRCULATIONAHA.120.048335.

Hull JH, Loosemore M, Schwellnus M. Respiratory health in athletes: Facing the COVID-19 challenge. Lancet Respir Med 2020; 8:557–8. https://doi.org/10.1016/S2213-2600(20)30175-2.

Wilson MG, Hull JH, Rogers J, Pollock N, Dodd M, Haines J, et al. Cardiorespiratory considerations for return-to-play in elite athletes after COVID-19 infection: A practical guide for sport and exercise medicine physicians. Br J Sports Med 2020; 54:1157–61. https://doi.org/10.1136/bjsports-2020-102710.

González K, Fuentes J, Márquez JL. Physical inactivity, sedentary behavior and chronic diseases. Korean J Fam Med 2017; 38:111–15. https://doi.org/10.4082/kjfm.2017.38.3.111.

Pate RR, Pratt M, Blair SN, Haskell WL, Macera CA, Bouchard C, et al. Physical activity and public health. A recommendation from the Centers for Disease Control and Prevention and the American College of Sports Medicine. JAMA 1995; 273:402–7. https://doi.org/10.1001/jama.273.5.402.

****

Effect of Yoga and Strength Training Intervention on body composition and physiological variable of sedentary population

-Vidya Kumari
Research Scholar,
MATS School of Physical Education,
MATS University, Raipur, Chhattisgarh,
India

-Dr. Alok Kumar Singh
AssistantProfessor, MATS
School of Physical Education,
MATS University,Raipur,
Chhattisgarh, India.

Abstract

Present study aimed to see the effects of a Yoga and Strength training on various body composition and physiological parameters namely body weight (W), body fat (F), body impedance (I), body mass index (BMI), basal metabolic rate (BMR), lean body mass (LBM), heart rate (HR), systolic blood pressure (SBP), diastolic blood pressure (DBP), double product (DP), and pulse pressure (PP) of obese sedentary population. Total 400 subjects were chosen after their informed consent from Raipur. Out of 400 subject all were categorized as 100 were yoga experimental group, 100 were yoga control group, 100 were strength training experimental group, and 100 were strength training control. Descriptive and comparative analysis were performed to see the effect of training intervention. Result of the present study demonstrated significant changes in weight ($p<0.05$), fat mass ($p<0.05$), impedance ($p<0.05$), BMI ($p<0.05$), BMR ($p<0.05$), and LBM ($p<0.05$) following the intervention. In conclusion, the findings of this study underscore the effectiveness of the intervention in inducing significant changes in various physiological parameters related to health and fitness. These results contribute to our understanding of the effects of targeted interventions on overall well-being and highlight avenues for further research in this area.

Key words: yoga, strength training, BMI, BMR, LBM, SBP, DBP, PP,

Introduction

In recent years, there has been a growing recognition of the significance of maintaining optimal health and fitness. Interventions focused on improving physiological parameters have become essential for establishing successful strategies to promote health and prevent disease (Qiu et.al., 2023). These physiological indicators, such as body composition, metabolic rate, cardiovascular function, and muscular strength, are examined in this study to assess the effects of a particular intervention. The objective of this study is to provide a comprehensive understanding of the efficacy of the intervention in enhancing overall health outcomes.

Effective weight control is essential for promoting good health, since an excessive amount of body weight raises the likelihood of developing chronic ailments such as cardiovascular disease, diabetes, and specific types of cancer. The distribution of body composition, encompassing both fat and lean mass, exerts a substantial influence on the general state of health (Lin and Li, 2021; Kim, 2021). Alterations in body composition can have significant consequences for metabolic well-being, physical prowess, and susceptibility to diseases. The basal metabolic rate (BMR) is a crucial component of physiological functioning, serving as an indicator of metabolic rate (Farhana and Rehman, 2023; Vybornaya et.al., 2017).

The implementation of interventions targeting the enhancement of cardiovascular parameters has the potential to mitigate the likelihood of cardiovascular disease and augment overall cardiovascular fitness. Muscle strength, endurance, and general physical performance can be strengthened by the use of strength training programs, hence leading to improved health and well-being. The results can guide the creation of evidence-based approaches to enhance health, avoid illness, and optimize overall welfare (Khadanga et.al., 2019; Franklin et.al., 2022).

Methodology

In the present study four hundred obese subjects were selected. Mainly all subjects were classified into four groups namely yoga experimental group, Yoga control subject, strength training experimental group, and strength training control groups. Out of two hundred obese subjects each group consist of hundred subjects namely yoga experimental group (hundred subjects), yoga control subjects (hundred subjects), strength training experimental group (hundred subjects), strength training control subjects (hundred subjects). All the subjects for this study were selected after their inform consent from Raipur, Chhattisgarh, India. All the experimental subjects were regularly participated in the training given by the research scholar. The concept of fitness is different from the participating in the sports. Sports participation required combination of magnitude of factors. The study was taken on the basis analysis of scientific literature available on body composition and Cardiovascular profile such as body weight (W), body fat (F), body impedance (I), body mass index (BMI), basal metabolic rate (BMR), lean body mass (LBM), heart rate (HR), systolic blood pressure (SBP), diastolic blood pressure (DBP), double product (DP), and pulse pressure (PP) of obese sedentary population as well as on the basis of tests findings of the related research studies. Purposive Sampling method was adopted for the present study. Weighing machine is used measured body weight, and body composition analyzer is used to measure the other variables of body composition. Systolic Blood Pressure (mmHg), Diastolic Blood Pressure (mmHg) and Heart Rate (beats/minute) monitored with the help of digital Blood Pressure Monitor in the present study.

Analytical Procedure

All statistical analysis was performed in computer in MS Excel and SPSS-27. Analysis of data was done by using descriptive method where mean, standard error, and standard deviation (SD) for each group was calculated. The inferential analysis or Comparative analysis (one way ANOVA) was applied to observe differences between pre-test and post-test data for all studied variables in both experimental namely yoga and strength training groups. The level of significance was set at 0.05 to validate the difference, if any.

Result

Table 1: Showing the characteristic of body weight (kg), fat (kg), impedance, BMI (kg), BMR (Kcal), LBM (kg), HR, SBP, DBP, DP, and PP of obese subjects between pre and post yogic training intervention.

Variable	Pre Test		Post Test		ANOVA	
	Mean ± SE	SD	Mean ± SE	SD	F-value	P-value
Weight	62.24 ± 0.72	7.29	58.32 ± 0.59	5.98	17.30	$p<0.01$
Fat (kg)	13.21 ± 0.35	3.59	11.76 ± 0.35	3.61	8.32	$p<0.004$
Impedance	628.34 ± 7.11	71.10	699.33 ± 9.02	90.28	38.15	p<0.001
BMI	24.69 ± 0.31	3.14	23.15 ± 0.25	2.59	14.41	$p<0.001$
BMR	1423.97 ± 9.22	92.24	1600.36 ± 21.40	214.02	57.28	$p<0.001$
LBM	49.02 ± 0.68	6.76	46.55 ± 0.54	5.44	8.12	$p<0.001$
HR	75.51± 0.20	2.06	75.22 ± 0.19	1.83	1.104	*NS*
SBP	114.4± 0.54	5.47	115.79 ± 0.45	4.57	3.807	*NS*
DBP	72.41± 0.29	2.97	73.11 ± 0.23	2.37	3.383	*NS*
DP	86.39± 0.49	4.92	87.13 ± 0.47	4.70	1.175	*NS*
PP	41.99± 0.35	3.50	42.68 ± 0.29	2.98	2.246	*NS*

Table 1 depicted the result the study. significant changes were observed in weight, fat mass, impedance, BMI, BMR, and LBM from pre-test to post-test, while no significant changes were found in heart rate (HR), systolic blood pressure (SBP), diastolic blood pressure (DBP), mean arterial pressure (DP), and pulse pressure (PP). It is observed from the table that there was a significant ($p<0.05$) difference in body weight from pre-test (62.24 ± 0.72) to post-test (58.32 ± 0.59). Similar result has been found in body fat of the subjects. A significant ($p<0.05$) dicrease (11.76 ± 0.35) in body fat was found in fat mass from pre-test (13.21 ± 0.35). Body impedance remarkly ($p<0.05$) increased from pre test (628.34 ± 7.11) to post-test (699.33 ± 9.02). A significant difference was observed in BMI from pre-test (24.69 ± 0.31) to post-test (23.15 ± 0.25). There was a significant difference in basal metabolic rate (BMR) from pre-test (1423.97 ± 9.22) to post-test (1600.36 ± 21.40). in contrast to BMR the lean body mass (LBM), a significantly lowere mass is observed in post test (46.55 ± 0.54) body mass. Rest of the physiological variable did not reveal significant difference in the study.

Table 2: Showing the characteristic of body weight (kg), fat (kg), impedance, BMI (kg), BMR (Kcal), LBM (kg), HR, SBP, DBP, DP, and PP of obese subjects between pre and post strength training intervention.

Variable	Pre Test		Post Test		ANOVA	
	Mean ± SE	SD	Mean ± SE	SD	F-value	P-value
Weight	60.68± 0.64	6.47	59.52 ± 0.49	4.88	2.068	*NS*
Fat	15.52 ± 0.34	3.39	12.32 ± 0.31	3.03	49.58	$p<0.01$
Imped-ance	621.6 ± 7.86	78.61	642.69 ± 6.67	66.70	4.184	$p<0.05$
BMI	24.66 ± 0.39	3.83	21.93 ± 0.30	3.06	31.37	$p<0.01$
BMR	1414.31 ± 8.68	86.75	1460.36 ± 12.24	122.38	9.425	$p<0.01$
LBM	45.18 ± 0.67	6.66	47.20 ± 0.43	4.27	6.66	$p<0.05$
HR	72.93± 0.38	3.72	75.24 ± 0.19	1.85	30.95	$p<0.001$
SBP	117.17± 1.02	10.19	117.52 ± 0.97	9.70	0.062	*NS*
DBP	74.93± 0.65	6.59	75.34 ± 0.65	6.44	0.198	*NS*
DP	85.39± 0.79	7.89	88.42 ± 0.75	7.55	7.657	$p<0.01$
PP	42.24± 0.87	8.64	42.18 ± 1.10	11.02	0.002	*NS*

Table 2 depicted the result the study. significant changes were observed in fat mass, impedance, BMI, BMR, LBM, HR, and DP from pre-test to post-test, while no significant changes were found in body fat, systolic blood pressure (SBP), diastolic blood pressure (DBP), mean arterial pressure (DP), and pulse pressure (PP). It is observed from the table that there was a significant ($p<0.05$) difference in body fat from pre-test (15.52 ± 0.34) to post-test (12.32 ± 0.31). Body impedance remarkly ($p<0.05$) increased from pre test (621.60 ± 7.86 to post-test (642.69 ± 6.67). A significant difference was observed in BMI from pre-test (24.66 ± 0.39) to post-test (21.93 ± 0.30). There was a significant difference in basal metabolic rate (BMR) from pre-test (1414.31 ± 8.68) to post-test (1460.36 ± 12.24). The lean body mass (LBM), a significantly increased in post test (47.20 ± 0.43) body mass from (45.18 ± 0.67) . Heart rate of post test (75.24 ± 0.19) was found to be higher as compared to that of pre test (72.93± 0.38). similarly, the post strength training double product (88.42 ± 0.75) significantly ($p<0.05$) increased from pre training intervention double product (85.39± 0.79). rest of the variable did not show significant difference in the study.

Discussion

The research revealed notable alterations in multiple physiological markers subsequent to an intervention, so offering valuable insights into the impact of the program on the health and physical fitness of the participants. The program's effective contribution to weight loss and fat reduction is indicated by the decrease in weight and fat mass observed after the intervention. The observed rise in impedance and decline in BMI could potentially indicate modifications in body composition, encompassing shifts in muscle mass and distribution of fat. The observed substantial rise in basal metabolic rate (BMR) indicates the possibility of metabolic adjustments triggered by the program, which could have consequences for the participants' long-term weight control and energy usage. The interpretation of the decrease in lean body mass (LBM) following the intervention is of utmost importance; however, more study is required to ascertain whether this decrease is indicative of genuine muscle loss or if it is influenced by other variables. The study additionally observed no statistically significant alterations in cardiovascular indicators, indicating that the intervention may not have exerted a substantial influence on cardiovascular well-being within the designated period of the study. Subsequent studies should examine the enduring consequences, identify possible factors that influence the response to treatment, and evaluate the durability of reported alterations over an extended period.

Reference:

1)Farhana A, Rehman A. Metabolic Consequences of Weight Reduction. [Updated 2023 Jul 10]. In: StatPearls [Internet]. Treasure Island (FL): StatPearls Publishing; 2024 Jan-. Available from: https://www.ncbi.nlm.nih.gov/books/NBK572145/

2)Franklin BA, Eijsvogels TMH, Pandey A, Quindry J, Toth PP. Physical activity, cardiorespiratory fitness, and cardiovascular health: A clinical practice statement of the ASPC Part I: Bioenergetics, contemporary physical activity recommendations, benefits, risks, extreme exercise regimens, potential maladaptations. Am J Prev Cardiol. 2022 Oct 13;12:100424. doi: 10.1016/j.ajpc.2022.100424.

3)Khadanga S, Savage PD, Ades PA. Resistance Training for Older Adults in Cardiac Rehabilitation. Clin Geriatr Med. 2019 Nov;35(4):459-468. doi: 10.1016/j.cger.2019.07.005.

4)Kim JY. Optimal Diet Strategies for Weight Loss and Weight Loss Maintenance. J Obes Metab Syndr. 2021 Mar 30;30(1):20-31. doi: 10.7570/jomes20065.

5)Lin X, Li H. Obesity: Epidemiology, Pathophysiology, and Therapeutics. Front Endocrinol (Lausanne). 2021 Sep 6;12:706978. doi: 10.3389/fendo.2021.706978.

6)Qiu Y, Fernández-García B, Lehmann HI, Li G, Kroemer G, López-Otín C, Xiao J. Exercise sustains the hallmarks of health. J Sport Health Sci. 2023 Jan;12(1):8-35. doi: 10.1016/j.jshs.2022.10.003.

7)Vybornaya KV, Sokolov AI, Kobelkova IV, Lavrinenko SV, Klochkova SV, Nikityuk DB. [Basal metabolic rate as an integral indicator of metabolism intensity]. Vopr Pitan. 2017;86(5):5-10. Russian. doi: 10.24411/0042-8833-2017-00069.

Opium addiction in Colonial Assam: A Preliminary Investigation

-Kishor Goswami
Assistant Professor
Department of History
Jagannath Barooah College
Jorhat:Assam
Email id: goswami.du@gmail.com

Introduction:

The paper intends to study Assam's history through the prism of opium, particularly the interplay between state and society during the 19th and early 20th century. The paper also highlights the spread of opium production and consumption in colonial Assam. As a social biography of opium in colonial Assam, the study addresses deficiencies in our understanding of opium in interpreting Assam's unique encounter with colonialism.

During the period 1860s–1920s opium contributed more than a fifth of the total provincial revenue in Assam. Interestingly, in spite of the wide consumption of opium historical scholarship on it in Assam is virtually absent.1 Historians of Assam while dealing with the question of opium often face two challenges, first, of opium being regarded within the pathways of Indian history as an export commodity yoked to the China trade and the Chinese experience of addiction, and, second, opium's understanding in terms of the Benares–Bihar belt as a production hub, with Calcutta acting as the auctioning centre. The lack in the historical understanding of domestic consumption in India has meant that despite pervasive opium addiction in Assam as well as the region's experience with opium possessing considerable economic, social and political significance, scholarship has been negligible. The existing literature completely overlooks the impact on British India's opium exports from the 1870s onwards which prompted the need for alternate markets leading to the evolution of a more aggressive domestic policy, especially in provinces like Assam where opium use was virtually universal.

There are contradictory theories on the roots of opium eating in Assam. The origins of the practice has been traced to Assam's historic trading links with China as well as the province's contact with the Mughal army among whom opium use was common during the incursions into western Assam in the mid-seventeenth century.2 Local histories suggest that opium was known to the Assamese and used primarily in rituals and quasi-religious rites as well as for its medicinal properties during the Ahom period, but use was limited to the upper classes.3 Evidence from the buranjis (official chronicles) which are rich in historical information and present an accurate account of social life in the province during the medieval period suggest that Ahom ruler Gadadhar Singha (r.1681–1696) stigmatised and penalised opium users but during the reign of Gaurinath Singha (r.1780–1795), an opium addict himself, the social stigma of opium use faded and Gaurinath is credited with popularising opium smoking as a leisure and social activity.4 Despite evidence of use by the late eighteenth century, nationalist historians have underplayed the existence of opium use in pre-colonial Assam and have posited that opium use was negligible and confined only to the royal court and the nobility.5 These accounts

maintain that widespread opium addiction was the consequence of the colonial state's calculated policy to inflict the 'vice' on the general population as an important device of colonial rule which suggest that a conspiracy to drug the masses in order to make them willing participants of rule was at play.6 This narrative also connected opium addiction neatly with the argument about the loss of "self-respect and self-realisation" amongst the Assamese which was resolved by the intervention of Gandhi and the Congress during the nationalist struggle.

The narrative of addict as a victim of colonial polity flattens the richness of the opium discourse in nineteenth century Assam that was defined by "complex connections between the conditions of pleasure, labor and fatigue".7 It is therefore crucial to focus on the 'interplay' between these features and recognize that the evolution of the opium question involved the redrawing and readjustment of the boundaries between these facets of opium use by different players at different times. Kaushik Ghosh's critique of colonial capitalism's stake on the civilisational principle highlights that "the rationality of opium and the opium of rationality interplayed ceaselessly to define the wildness and indolence of the Assamese" and this offers an effective paradigm to approach the issue of opium addiction in Assam.8

The colonial archive, on the other hand, is also guilty of fostering an exaggerated version of dependence on opium as well as encouraging the narrative of 'improvement' till the mid nineteenth century. It needs to be highlighted that the narrative changed dramatically in the late nineteenth century and the official position upheld the view that abuse of opium was virtually absent in the province (as well as the rest of India) as the British government faced pressure from the local and transnational anti-opium lobby to impose prohibition. In the 1840s and 1850s, however, accounts of colonial administrators, planters, missionaries as well as doctors routinely attributed the lassitude and indifference to work on the part of the local people to opium and the memoir of Major John Butler typified the British view about opium addiction in Assam.9

Butler also highlighted that "two-thirds of the population are addicted" and addiction was also associated with "nine out of ten crimes", especially "larceny and burglary".10 We need to exercise caution in accepting the 'authenticity' of these accounts given that they were produced at a time when efforts to encourage tea plantations in the region were at their peak. Although the official position on the origins of opium cultivation and consumption posited that opium was originally cultivated at Beltola, near Guwahati, and was believed to have been used as a medicinal drug, by the time the annexation in 1826, opium cultivation and consumption was widespread.11 The view that opium was grown in the province was corroborated in late-eighteenth and early-nineteenth century accounts like Captain Thomas Welsh's 1794 report which indicated that poppy grew "in luxuriance" in most of western Assam.12 However, Welsh's report also highlighted that although opium was consumed by the natives, they were "as yet unacquainted with the manufacture of merchantable opium, which might be procured in considerable quantity" indicating that use might not have been as pervasive in the late eighteenth century.13

There is, however, greater agreement about the fact that opium use in the province spread and grew in the

aftermath of the British annexation in 1826. Widespread addiction in the region was corroborated in official documents and the general impoverishment of the indigenous population was widely consigned to the pervasive use of the drug.14 The abolition of the EIC's commercial monopoly in 1833 opened up prospects for private capital and the tea plantation enterprise resulted in the transition from a traditional rice growing, sustenance economy to a cash economy which induced peasants to cultivate cash crops such as mustard, jute and opium.15 Links between the growth of a cash economy and opium addiction has been suggested by Jayeeta Sharma who has argued that the "absence of a rice market" limited the cash-earning potential of the peasants and opium emerged as the viable option due to "a readily expanding demand" and high profitability triggering opium use.16 Another factor that promoted opium use in the province in the 1840s onwards was the introduction of cheap Company opium (or excise opium) in 1843 which was sold through licensed shops, which made the drug available in standardised ball form that could be readily made into a smoking preparation.

The Journal of the Asiatic Society of Bengal (JASB) published some of the earliest essays or articles on Assam and these pieces provide insights into opium use in Assam during formative years of British rule in Assam and William Griffith's article published in 1836 established that the opium poppy grew extensively in the Assam valley (also Brahmaputra valley).17 The first record of opium consumption in Assam in the pages of the JASB dated back to 7 August 1844 when J. Owen, tea planter and resident of Assam, presented the Society with a gift of "two balls of the opium-rags as prepared by the ryots of Assam [for] sale and common consumption", or kanee in the vernacular.18 Although the report highlighted that opium was the most profitable crop for farmers and was widely available and sold in all the markets, no reference was made to the addiction aspect, especially the pervasive depravity of the kania that populated the colonial documents in the period beginning with the late 1850s.19 Another contemporary journal, The Calcutta Review, also published observations of military men and administrators who visited the region, but they were mostly mundane administrative reports. An article written by William Robinson, an English missionary working in upper Assam, stood out as it provided a historical narrative of the province that drew attention to the social life of the people for the first time.20 Despite multiple references to the depravity of Assamese ways and the profligacy of its society that emphasised the need for the spread of Christianity, the account was oddly silent on the issue of opium use among the Assamese. These articles suggest that the process of creating 'difference' had not solidified in the mid-nineteenth century and the colonial project of 'knowing' the kania (opium addict) was still in process as the economic potential of the tea industry developed.

Reference:

1) Amalendu Guha, "Colonisation of Assam: Second Phase 1840–1859", *Indian Economic and Social History Review* (hereafter, *IESHR*), Vol. 4, No. 1 (1967), pp. 289–317; John F. Richards, "Opium and the British Indian Empire: The Royal Commission of 1895", *Modern Asian Studies*, Vol. 36, No. 2 (May 2002), pp. 412.
2) The Mughals were known to have used opium for "recreational purposes" and "narcotics in the Mughal state induced acculturation, negotiations, social interactions and entertainment". Meena Bhargava, "Narcotics and Drugs: Pleasure, Intoxication or Simply Therapeutic—North India, Sixteenth–Seventeenth Centuries", The Medieval

History Journal, Vol. 15, No. 1 (2012), p. 104.
3) H.K. Barpujari, Assam in the Days of the Company, 1826–1858 (Guwahati, 1980 [1963]), pp. 42–65.
4) Benudhar Kalita, The Uprising of Phulaguri (Nagaon, 2006), pp. 48–50.
5) Shrutidev Goswami, "The Opium Evil in Nineteenth Century Assam", Indian Economic and Social History Review (hereafter, IESHR), Vol. 19, No. 1 (January 1982), p. 366.
6) Amalendu Guha's ecumenical From Planter Raj to Swaraj: Freedom Struggle and Electoral Reform in Assam (New Delhi, 1977), also exhibits this predilection.
7) Bodhisatva Kar, "Energizing Tea, Enervating Opium: Culture of Commodities", in Manas Ray (ed.), Space, Sexuality and Postcolonial Cultures (Calcutta, 2002), p. 356.
8) Kaushik Ghosh, "A Market for Aboriginality: Primitivism and Race Classification in the Indentured Labour Market of Colonial India", in Gautam Bhadra, Gyan Prakash and Susie Tharu (eds), Subaltern Studies X: Writings on South Asian History and Society (Delhi, 1999), p. 15.
9) John Butler, Travels and Adventures in the Province of Assam, During a Residence of Fourteen Years (London, 1855), p. 244.
10) John Butler, Travels and Adventures in the Province of Assam, During a Residence of Fourteen Years (London, 1855), p. 244.
11) B.C. Allen, Assam District Gazetteers: Vol. VI, Nowgong (Calcutta, 1905), p. 196.
12) "Welsh's Report on Assam, 1794", in A. Mackenzie, History of the Relations of the Government with the Hill Tribes of North-East Frontier of Bengal (Calcutta, 1884), p. 388.
13) "Welsh's Report on Assam, 1794", in A. Mackenzie, History of Hill-Tribes, p. 388.
14) "[O]pium eaters spend nearly one half or even as much as two-third of his earning upon opium. They often went without a meal to supply themselves with opium". C. J. Simons, Notes on the Baneful Effects on the Natives of Assam, from the Excessive Use of Opium (Calcutta, 1860), p. 3.
15) The debate among political economists on the development of capitalism in India does not affect this discussion on opium's impact in Assam; for, whatever their analysis of the impact of colonialism on India's transition from feudalism to capitalism, there is wide agreement that colonialism held the promise of modernity and inspired a critical self-examination of indigenous society and culture. See A.K. Bagchi, "De-industrialization in India in the Nineteenth Century: Some Theoretical Implications", Journal of Development Studies, Vol. 12 (1975–76), pp. 135–64.
16) Jayeeta Sharma, "'Lazy' Natives, Coolie Labour, and the Assam Tea Industry", Modern Asian Studies (hereafter, MAS), Vol. 43, No. 6 (November, 2009), p. 1295.
17) William Griffith, "Remarks on a Collection of Plants Made at Sadiya, Upper Assam", Journal of the Asiatic Society of Bengal (hereafter, JASB), Vol. 5 (1836), pp. 806–13.
18) "Proceedings of the Asiatic Society", JASB, Vol. 13 (August 1844), p. lxxxi.
19) "Proceedings of the Asiatic Society", JASB, Vol. 13 (August 1844) pp. lxxxi–lxxxii.
20) "Assamese Matters, Past and Present: Article II—Robinson's History of Assam", Calcutta Review (hereafter, CR), Vol. 23, No. 45 (July–December 1854), pp. 38–65.

☆☆☆

C M OF THE VILLAGE

CHARACTERS
Saty Narayan Tripathi
Dr.Joravar Singh
Jitendra Yadav
Sunayana
Sankata Prasad Khatik
SDM
Kala Bachcha
And
Others

(Scene -1)

(There is a big farmhouse of Satynarayan Tripathi.Inside the big room there is a mattress of carpet . Satynarayan Tripathi the Village Head ,Dr.Joravar Singh of the Primary Health Centre and Mr Jitendra Yadav the Head Master of the Junior High School are eating roasted chickens and fried fished in their big plates.Their's pegs are full of alcohol of Mahua.The atmosphere of laughter continued.)

Satynarayan Tripathi - Doctor, tell the news of your Primary Health Centre.

Dr. JoravarSingh- (Moving the glass of wine in the fingers of his hand of his hand)

From your blessings the medicines of the Primary Health Centre are being dissolved in our glasses of alcohol.If we have good health then the people of the Village will have also good health.

Satynarayan Tripathi - No other Doctor can run this Health Primary Centre better than. you.

Jitendra Yadav -Hey! Tripathi Sir ,you should praise my work which I am performing in Junior High School.Please mark me with full points (All laugh loudly).

Satynarayan Tripathi - I'll get asleep after drinking the tonic of medicines.You arranged the furnitures in our houses from the money which was allotted to the Junior High School for purchasing it.I grant you full credit to be a successful Head Master of the School

(All guys laugh bitterly.The same movement Satynarayan Tripathi called on a Dalit girl whom he had made captive in his house. Sunayana comes out of the room)

Sunayana-(Gesturing her hand .She has tears in her eyes)

Part 2

Sunayana - Let me go to my parent's house.

Satynarayan Tripathi - Hey! foolish girl, you like to live in cottage but you won't prefer to live in the palace.What facilities will be provided by your poor parents to you in that cottage ?

Sunayana -I'll not live in your hostage.The cottage of my poor parents is better than this place.

Satynarayan Tripathi -(With full proud)- I am providing you delicious dishes here.You were eating bread with salt only there.

Sunayana- You rape with me every day.You are always injuring my honour and prestige.My parents are helpless.After threatening us you made me your kept.

Satynarayan Tripathi -(After putting figures on his moustaches)

The man who is powerful that enjoys all the Worldly things.It has happened in all the times.You are a most beautiful.I am a king of this Village.I have right to use everything.

Sunayana- (Having with courage)- There are so many beautiful girls amongst the Backwards and upper castes communities.You have no courage to watch towards those girls.They are powerful than you. If you do such activities with them.You will be assassinated.

Satynarayan Tripathi - I have hanged to death fifteen men who were against me in my fifteen years of Village Headship.The whole Village can't face me.I am the emperor of this Village.

Sunayana-(Being angry)- I'll certainly go .Who dares to stop me,? (She moves fastly towards the door).Dalit girls are not weak.We are the generations of the martyred of Jhalkari Bai.

Satynarayan Tripathi (To doctor and Head Master)-Hold the bitch! Don't allow her to march outside from the house.(They held Sunayana firmly with their hands.Satynarayan Tripathi puts many slaps on her cheeks.In this struggle Sunayana became half naked.They all watched her with defective eyes.

(The same time a retired soldier named Kala Bachcha from the army came there.His long hairs are open.He jumps on the ground.His hairs are flying in the air)

Kala Bachcha (He utters in anger)- Bastards! All of you teasing the girl.The master is educating the girl at night.Wicked Master does you teach your daughter in the night in such manners?you don't teach the students of the Village.Hey! ediot doctor,you are injecting Sunayana.Do you inject your sisters.

Satynarayan Tripathi (To doctor and Master)- From where this mad man has come?This Bastard! has disturbed us our enjoyment.

Dr . Joravar Singh ((To Master)- Hold this crazy.I'll inject him.

Kala Bachcha (He runs around the house) - Tripathi, you have killed my father and brother.You will die with Doctor and Master.

(They held Sunayana and Kala Bachcha.Thry beat both)

Maina (The sister of Sunayana entered into the house with holding Sickle in her hands)

Let free my sister and this army man Kaka Bachcha now.If all of you fail to do so then I'll attack over all of you with this pointed sharp sickle.

Satynarayan Tripathi -Don't attack on us.We let free

Sunayana and Kala Bachcha.(All three wicked men are full of fear .They freed Sunayana and Kala Bachcha)

PART 3

SCENE 2

(Mr.Sankta Prasad Khatik has topped in MA Sociology from the University of Allahabad.He has come to his village Vikatpuri.He goes to the office of Village Head Satynarayan Tripathi with some people of the Village)

Sanktaprasad Khatik - Good morning Village Head Sir.

Saty Narayan Tripathi - Hey! Sankta Prasad Khatik,good morning.When did you come from Allahabad? Have you completed your education.?

Sankta Prasad Khatik -A week back I came from Allahabad to here Sir.I want to put some grievances of the villagers before you .The medicines about the cost of rupees ten lakhs have been sent to this Primary Health Centre by the Government of the State.Dr. Joravar Singh is denying it.

A Villager- The Villagers are bound to purchase the medicines from the city.

Second Villager- The Malaria is spreading among the people.There are no tablets of kunine.The dogs are biting the Villagers but there are no anti-rabies medicines in the Primary Health Centre.

Sankta Prasad Khatik -The numbers of Villagers are dying due to not availability of medicines.

Satynarayan Tripathi -There are no medicines in the stock then how the Doctor will supply the patients? Don't make false illegations to a noble and honest Doctor.Sanktaprasad Khatik you have come here with highest degrees of the University.You don't get involved in these useless things.

Sanktaprasad Khatik - These are not false things.I am coming from the Ministry of the Health.Medicines were sent to this Primary Health Centre two months back.Dr. Joravar Singh recieved those medicines.

Satynarayan Tripathi - You have come here now from the city I suggest you to mind your business.

Sanktaprasad Khatik -Village Head sir,follow me ,there is a Primary Health Centre ten yards distance from here..

(Both of them go to the Primary Health Centre with Villagers.Dr. Joravar Singh is sitting in the chair without dress.He is treating the patients carelessly.He is not supplying the medicines to the patients from the stock of the Primary Health Centre.He writes down the prescriptions on papers and direct them to purchase it from the Chemical Stores from the city.All the patients are crying of pains.

Dr.Joravar Singh- (To Sanktaprasad Khatik)-

After having some education from the city,you are tracing out the faults in our superb functioning.

Sanktaprasad Khatik -Doctor Sir,I am not counting any defect in your working.The patients are sighing due to not getting the medicines from here.I am requesting you to distribute the medicines to the sick people.

Dr. Joravar Singh- Are you my CMO? Who has authorised you for inspecting our Primary Health Centre.

Sanktaprasad Khatik -As a citizen of India,I have right to know all these things.I can get all the details of medicines through the right of information act. In the huge quantity of medicines have been supplied by the Health Department to this Primary Health Centre Where these medicines disappeared.This Doctor sales out those medicines in the medical store of the city.

Part 4

Satynarayan Tripathi - It is a false.You labelled the rootless allegations against this honest Doctor.

Sanktaprasad Khatik - It is a one hundred percent true.The Villagers have sent the complaint letters to the CMO and DM about this corruption.The District Magistrate has conducted a raid against that medical store.The medicines of this Primary Health Centre are being recovered from there.The owner of the medical store has accepted that Dr.Joravar Singh,Jitendra Yadav and you have been selling the medicines of this Primary Health Centre to his private medical store.All of you been digesting the money for almost many years.

Satynarayan Tripathi (Showing off)- Speak consciously otherwise the result will be bad.

Sanktaprasad Khatik -You will not be absolved of the crimes after abusing me.You have to answer District Magistrate.You watch carefully this Junior High School (Indicating towards the school).The children are studying on the ground.There are no tables and chairs for them .Remember after independence the children were studying in the same manners.you didn't allow any development in the field of education for seventy five years.The rupees six lakhs were allotted to this school for purchasing the furnitures.All of you have shared it amongst themselves.The Government has set -up an inquiry against all of you.

Satynarayan Tripathi (Showing off) Don't let me fear.We'll see.Whoever Bastard!has come in our way.We have put him to death. So far I have killed fifteen of my opponents.I'll have to kill one more.

Sanktaprasad Khatik -An atmosphere of terror and fear have been created by all of you.Now It's about to end .You people have disturbed this peaceful Village .All of you torn apart the culture and civilization of this Village.All the bad things have started happening here.You have put the Villagers into drugs addiction.

Satynarayan Tripathi (To Dr.JoravarSingh and Master Jitendra Yadav)-Write down the name of Sanktaprasad Khatik in the list of martyred

(They started beating to him . Sanktaprasad Khatik faced lonely to them.The Villagers interfere in this struggle)

*****

75 Years of Independence: The Changing Landscape of India

Dr.Umadevi
Associate Professor & H.O.D
Department of Political Science
Govt.First Grade College, Vijayanagar
Bangalore -104

There is an old saying that India is a new country but an ancient civilization, and this civilization has seen tremendous changes throughout its history.

From being an education hub of the world in ancient times to becoming the IT hub of the world today, the Indian landscape has come a long way. Taking 15th August 1947 as our frame of reference, we find that there are several fields like Science and Technology, economy, and human development where India has shown remarkable progress. However, some fields like health and education still seem to be taken care of. Let us look at these aspects of Indian development individually.

The Landscape of Science and Technology

When the Britishers left India, they left behind a broken, needy, underdeveloped, and economically unstable country. After independence, India prioritized scientific research in its first five-year plan. It paved the way for prestigious scientific institutes like IITs and IISC. After just three years of independence, the Indian Institute of Technology has established in 1950. These institutions promoted research in India with the aid of foreign institutions. From launching its first satellite Aryabhatta in 1975 to being the first country to reach the orbit of Mars, India has taken confident strides in the field of space research technology, thanks to the Indian Space Research Organisation (ISRO). We can proudly state that India is standing at par with countries like USA and China, same goes with the field of biotechnology also where India is producing vaccines for the entire world. The success of UPI is also a case study for the world with 9.36 billion transactions worth Rs. 10.2 trillion in Q1 of 2022 only.

Economic Landscape

India faced several issues following its independence, including illiteracy, corruption, poverty, gender discrimination, untouchability, regionalism, and communalism. Numerous issues have acted as major roadblocks to India's economic development. When India declared its independence in 1947, its GDP was mere 2.7 lakh crore accounting for 3% of the world GDP. In 1965, the Green Revolution was started in India by M. S. Swaminathan, the father of the Green Revolution. During the Green Revolution, there was a significant increase in the crop area planted with high-yielding wheat and rice types. From 1978–1979, the Green Revolution led to a record grain output of 131 million tonnes. India was then recognized as one of the top agricultural producers in the world. With the construction of linked facilities like factories and hydroelectric power plants, a large number of jobs for industrial workers were also generated in addition to agricultural workers.

Today India is the 5th largest economy in the world with 147 lakh crore GDP, accounting for 8% of global GDP. In recent years, India has seen a whopping rise of 15,400% in the number of startups, which rose from 471 in 2016 to 72,993 as of June 2022. This phenomenal rise in startups has also produced millions of new jobs in the country.

Infrastructure

The India of today is different from India at the time of freedom. In the 75 years of independence, Indian Infrastructure has improved drastically. The overall length of the Indian road network has grown from

0.399 million km in 1951 to 4.70 million km as of 2015, which makes it the third largest roadway network in the world. Additionally, India's national highway system now spans 1, 37, 625 kilometres in 2021, up from 24,000 km (1947–1969).

After over 70 years of independence, India has risen to become Asia's third-largest electricity generator. It increased its ability to produce energy from 1,362 MW in 1947 to 3, 95, 600 MW. In India, the total amount of power produced increased from 301 billion units in 1992–1993 to 400990.23 MW in 2022. The Indian government has succeeded in lighting up all 18,452 villages by April 28, 2018, as opposed to just 3061 in 1950, when it comes to rural electrification.

The Landscape of Human Development

In 1947 India had a population of 340 million with a literacy rate of just 12%, today it has a population of nearly 1.4 billion and a literacy rate of 74.04%. The average life expectancy has also risen from 32 years to 70 years in 2022.

The Landscape of Education and Health

In 1947, India had a population of 340 million with a literacy rate of just 12%, today it has a population of nearly 1.4 billion and a literacy rate of 74.04%. The average life expectancy has also risen from 32 years to 70 years in 2022. Though India has shown remarkable progress In terms of literacy rate, the quality of higher education is still a cause of major concern. There is not a single Indian University or Institute in the top 100 QS World University Ranking. With the largest youth population in the world, India can achieve wonders if its youth get equipped with proper skills and education. The health, sector is also worrisome. The doctor-to-patient ratio is merely 0.7 doctors per 1000 people as compared to the WHO average of 2.5 doctors per 1000 people. A recent study shows that 65% of medical expenses in India are paid out of pocket by patients and the reason is that they are left with no alternative but to access private healthcare because of poor facilities in public hospitals.

The Political Landscape

Jawaharlal Nehru was appointed as India's first prime minister in 1947, following the end of British rule. He promoted a socialist-economic system for India, including five-year plans and the nationalization of large sectors of the economy like mining, steel, aviation, and other heavy industries. Village common areas were taken, and a massive public works and industrialization drive led to the building of important dams, roads, irrigation canals, thermal and hydroelectric power plants, and many other things. India's population surpassed 500 million in the early 1970s, but the "Green Revolution" significantly increased agricultural productivity, which helped to end the country's long-standing food problem.

From 1991 to 1996, India's economy grew quickly as a result of the policies implemented by the late Prime Minister P. V. Narasimha Rao and his Finance Minister at the time, Dr Manmohan Singh. Poverty had decreased to about 22%, while unemployment has been continuously reducing. Growth in the gross domestic product exceeded 7%.

India's first female Prime Minister, Indira Gandhi, held office from 1966 until 1977 for three consecutive terms before serving a fourth term (1980–84). India elected PratibhaPatil as its first female president in 2007.

India's economy has expanded significantly in the twenty-first century. Under the Prime ministership of Narendra Modi (BJP), many significant changes have taken place like the scraping of Section 370, strengthening the Defence systems, creating a startup -friendly environment and much more. To expand infrastructure and manufacturing, the Modi administration launched several programs and campaigns, including "Make in India", "Digital India", and the

"Swachh Bharat project."

The Legal Landscape

Before independence, the Privy Council was the highest appellate authority in India. This Council was abolished as the first action following independence. The abolition of the Privy Council Jurisdiction Act was passed by the Indian Constituent Assembly in 1949 to eliminate the Privy Council's authority over appeals from India and to make provisions for outstanding appeals. It was B. R. Ambedkar's sharp legal intellect to draft a constitution for the newly sovereign country. In all executive, legislative, and judicial matters in the nation, the Constitution of India serves as the supreme law. The Indian legal system has developed into a key component of the largest democracy in the world and a pivotal front in the fight to protect constitutional rights for all citizens. Since it was first adopted in 1950, the Indian Constitution has had 105 modifications as of October 2021. The Indian Constitution is divided into 22 parts with 395 articles. Later, through various changes, further articles were added and amendments were made. According to the online repository maintained by the Legislative Department of the Ministry of Law and Justice of India as of July 2022, there are around 839 Central laws. The Indian legal system has a promising and forward-thinking future, and in the twenty-first century, young, first-generation lawyers are entering the field after graduating from the best law schools.

The Landscape of the Defence Sector

The Indian military ranked 4 of 142 out of the countries considered for the annual GFP review. From being defeated by the Chinese army in 1962 to becoming one of the largest defence systems in the world, India has surely learnt from its past errors. One of the reasons the Indian defence system has been able to attain its present reputation is the Defence Research and Development Organization (DRDO) which was established in 1958. Since its founding, it has created many significant programs and critical technologies, including missile systems, small and big armaments, artillery systems, electronic warfare (EW) systems, tanks, and armoured vehicles. India began working on nuclear energy in the late 1950s and had indigenous nuclear power stations by the 1970s. India had also begun developing nuclear weapons and producing fissile material concurrently, which allowed for the purportedly harmless nuclear explosion in Pokhran in 1971. The Integrated Guided Missile Development Program (IGMDP), under the direction of APJ Abdul Kalam and with the support of the Ordnance Factories, was established in 1983. In 1989, the longer-range Agni was independently designed and tested. Later, India and Russia collaborated to design and produce the Brahmos supersonic cruise missile. India currently leads several other nations in the production of defences. India is one of about a dozen nations that have built and produced their fighter jets, helicopters, submarines, missiles, and aircraft carriers.

Analyzing the different landscapes of India we find that we have come a long way in our journey but still, there is a lot to be done if we want to make India a 'super power'. A lot will depend on our people's willingness to change, ensuring the equal participation of women in the workforce, including marginalized communities in our economic growth, and last but not least is having a liberal and progressive and unbiased mindset.As we are celebrating "AzaadikaAmritMahotsav", the completion of 75 years of independence can be taken as a new opportunity to build an India of our aspirations and make positive contributions to the changing landscape of India.

References:

-Chandra, Bipan, et al. India since Independence. New Delhi, Penguin Books, 2008.
-mookherji, kalyani .India at 75. Rupa Publications India (June 5, 2022).
-Ray, Sibnarayan. "India: After Independence." Journal of Contemporary History, vol. 2, no. 1, 1967, pp. 125–41. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/259721. Accessed 12 Apr. 2023.
-Kochhar, Rajesh. "Science and Domination: India before and after Independence." Current Science, vol. 76, no. 4, 1999, pp. 596–601. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/24100769. Accessed 10 Dec. 2023.
-Spry, Graham. "The Independence of India." International Journal, vol. 1, no. 4, 1946, pp. 288–301. JSTOR, https://doi.org/10.2307/40194242. Accessed 02 Jan. 2024.
-Prasad, Pradhan H. "India after Four Decades of Independence." Economic and Political Weekly, vol. 23, no. 14/15, 1988, pp. 693–94. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/4378331. Accessed 12 Apr. 2024.
-SINGH, YOGENDRA. "Modernization and Its Contradictions: Contemporary Social Changes in India." Polish Sociological Review, no. 178, 2012, pp. 151–66. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/41969438. Accessed 12 Feb. 2024.
-Jones, John P. "The Present Situation in India." The Journal of Race Development, vol. 1, no. 1, 1910, pp. 86–109. JSTOR, https://doi.org/10.2307/29737849. Accessed 01 Mar. 2024.

Women Empowerment: Role of Government, Women Empowerment Schemes in India:

Dr.Nanjundamurthy
Associate Professor & H.o.D
Govt.First Grade College
Jayanagar-560070

The term **Women Empowerment** is concerned with giving equal rights to women for their growth and development in society as given to men. In other words, it means giving women equality on all grounds of society. From decision-making processes to contribute to society's growth and development, women should be given equal and fair chances to prove their efficiencies. Article 15(3) of the constitution of India talks about the Welfare of women and children. Over the years, the ***central and state governments have launched many women empowerment schemes in India***, which are listed below in this article.

This issue has not just been confined to the boundaries of the country or traditional powers; it has also held its speed in the digital world. In November 2019, the Ministry for women and child development tied up with Facebook to promote the concept of digital literacy and women's safety in India in the spirit of Women Empowerment.

What is Women Empowerment?

The freedom or the liberty to make decisions about themselves, their health, career, education, and, more importantly, their life and choice is known as **Women Empowerment**. It means that women should be treated equally to men in social, economic, and political fields. It is essential for the overall development of a country. Empowering women also helps them to feel more confident, as it enhances their decision-making power.

Women Empowerment Schemes in India

Name of the Scheme	Launch Year	Objectives
SWADHAR Greh	2018	– Provide legal aid and guidance to women. – Cater to the primary need for food, shelter, clothing, and health of women.
Mahila Shakti Kendras (MSK)	2017	– Create a positive environment for women with access to basic healthcare, education, employment, etc. – Provide these opportunities at the block and district level in the country.
Women Helpline Scheme	2016	– Provide 24-hour telecom service to women suffering from violence and assault. – Facilitate appropriate and required intervention from agencies such as Hospitals/police/District Legal Service Authority (DLSA)/Protection Officer (PO)/OSC. – Spread information about the necessary support services, government schemes, and programs available for women affected by violence.
Ujjawala Scheme	2016	– Prevent women and children trafficking. – Rescue victims and put them in safe custody. – Provide rehabilitation services to the victims
Mahila Police Volunteers	2016	– To fight crime against women. – Report incidents of violence against women, such as child marriage, dowry harassment, and domestic violence, faced by women in public spaces.
Nari Shakti Puraskar	2016	– Strengthen the place of women in society. – Create and assist institutions that work toward women empowerment in society.
Mahila E-Haat	2016	– Providing online entrepreneurship opportunities for women. – Educate women on various aspects of online business
BetiBachaoBetiPadhao Scheme	2015	– Ensure survival and protection of the girl child – Ensure quality education for the girl child
One-Stop Centre Scheme	2015	– Provide assistance to women affected by violence. – To facilitate them in filing FIR against crime – Provide psycho-social support and counselling to them
NIRBHAYA	2012	– Ensure safety and security for women. – Ensure confidentiality of women's identity.

The following table presents various women empowerment schemes in India initiated by the Government in the past decade:

Women Empowerment Issues in India

Demographic Imbalance

Female Foeticide – Though abortion is legal still, this legality is widely used for sex-selective abortions.

Female Infanticide.

Maternal Mortality Rate – This is the result of absolute neglect on our part with reference to health and lack of health education.

Infant Mortality Rate – This is due to neglect of girl children; from every 15 infant deaths, 14 are girls.

Death because of Dowry issues and domestic violence.

Teenage pregnancy.

Skewed sex ratio.

Health Problems

India has issues related to basic health amenities because the resources and infrastructure are limited, and within that, the situation is worse for marginalized people, including women. Health problems remain a very important issue for India as a whole, and when it comes to women, in particular, the situation is even more difficult. For example, even if a woman is killed, it is not taken seriously. Because of a certain kind of conditioning, the culture of silence predominates among women, which serves as an obstacle to promoting women empowerment.

Neglect of Female Education

It is not only related to enrollment but also to the way female education is perceived. Women are not enrolled equally as men. Even when they are enrolled, there is a very high dropout rate because even if there is a certain kind of problem at home, it is a girl child that has to stay back. There is also a lack of infrastructure supporting girls' needs in schools, causing dropout rates, like no separate toilets for girls.

Insufficient economic and political partnership

While there is a lot of emphasis on education these days, it is still a matter of concern due to the lower participation of women in the workforce. For example, if one has to quit the job in a couple, it is invariably the woman who has to quit because it is considered unmanly for a man to stay at home. In any case, if the man stays back, it is considered as going against Indian culture. The same is the case with political participation, where we see very few women. People are still not willing to concede to the reservation that has taken place at the panchayat level.

Violence

It includes not only physical violence but also emotional and psychological violence. The understanding of violence is changing, and it is now more comprehensive. Example: At present, verbal abuse is also violence. Various acts of violence include harassment, dowry death, rape, murder, wife battering, infanticide, eve teasing, forced prostitution, trafficking, stalking, acid attacks, etc. Reducing the rate of crime against women also comes under Women empowerment in India.

Women Empowerment – Latest Updates

The world is not on track to achieving gender equality by 2030. The Human Development Reports Gender Inequality Index shows that overall progress in gender inequality has declined in recent years. For instance, it would take about 250 years to close the gender gap in economic opportunity based on current trends.

India has fallen to 28th position in the World Economic Forum's global gender gap report 2021 and is now one of the worst performers in South Asia, trailing behind neighbours Bangladesh, Nepal, Bhutan, Sri Lanka, and Myanmar; it is now ranked 140th among 156 countries.

The report estimates it will take South Asia 195.4 years to close the gender gap, while Western Europe will take 52.1 years.

Challenges and Prospects to Women Empowerment

The challenges to women empowerment are as follows:

Due to the patriarchy in the later Vedic period, the status of women started to decline due to the emergence of a new socio-cultural system.

According to the World Economic Forum, the Global Gender Gap Report 2021, India has declined on the political empowerment index by 13.5% points, and there has been a decline in the number of women ministers, from 23.1% in 2019 to 9.1% in 2021.

According to the National Family Health Survey 5, 23.3% of girls were married before the legal age.

Women's safety (increasing rape cases) and issues of marital rape.

Prospects:

The change of legislation in isolation will never be able to stop child marriage unless there is a socio-behavioural change among the parents and community. There is also a need to strengthen families by providing appropriate livelihood opportunities.

The Delhi government argued in favour of retaining the marital rape exception.

The constitutional rights provided under articles 15, 16, 23, 39, 42, and 51(A)e also help in women empowerment.

Women empowerment programs in india:
BetiBachaoBetiPadhao – A campaign to generate awareness and improve the efficiency of welfare services intended for girls in India. It aims to address the issues of decline in child sex ratio image.
Janani Suraksha Yojana – It was launched to reduce maternal and neonatal mortality.
AnemiaMukt Bharat – It aims to make an anaemia-free India.
PoshanAbhiyan – It is a Government of India flagship program to improve nutritional outcomes for children, pregnant women, and lactating mothers.
Mahila E Haat – It is a direct online marketing platform to support women entrepreneurs, self-help groups (SHG), and non-government organizations (NGO) to showcase products made and services rendered by them.
The Swadhar scheme- Was launched by the Ministry of Women and Child Development in 2002 to rehabilitate women in difficult circumstances.
Women Empowerment in Panchayati Raj Institutions
With the enactment of the 73rd Constitutional Amendment Act 1992, there were steps taken for women empowerment to strengthen their position in local governance. Women will be given one-third of the total number of seats to be filled by direct election in each panchayat. In addition, one-third of the number of chairperson seats must be reserved for women. The economic survey for 2017-18 states that there is 13.72 lakh elected women representatives in Panchayati Raj Institutions. This constitutes about 44.2% of the total number of elected representatives.
Women Empowerment and Gender Equality
Due to gender inequality, reverse migration, and job loss for men, rural jobs have shifted from women to men, as men are given higher priority for work in our society. Gender roles dictate a position of submission to women. Hence, power gaps still exist between men and women in our economic, political, and corporate systems.
The SDG gender index says that despite the higher number of women in Parliament, their influence is limited.
Types of Women Empowerment
Women Empowerment can be understood in different spheres, such as social, economic, and political.
The types of women empowerment in India are as follows:

There is social inequality in which the resources in a given society are distributed unevenly, typically through the norms of allocation. It is needed to remove the social inequality as it is against the idea of meritocracy to empower women.
It is seen that some jobs, like the beauty industry, air hostesses, nursing, teaching, etc., have been meant for women. As they are female-dominated, they are paid less as they have less bargaining power. To change this mindset in society, women have to be empowered economically.
Although there are provisions for women empowerment in the political sphere, they are unable to achieve the purpose.
Self-Help Groups and Women Empowerment
Self Help Groups (SHGs) are small groups of people facing similar problems, and the members of a group help each other to solve their problems. Self Help groups play a major role in empowering women as these are important for the following reasons:
To promote income-generating activities.
For removal of poverty.
To generate employment.
To raise the status of women in society.

Reference:

Duflo, Esther. "Women Empowerment and Economic Development." Journal of Economic Literature, vol. 50, no. 4, 2012, pp. 1051–79. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/23644911. Accessed 12 Jan. 2024.
Mehra, Rekha. "Women, Empowerment, and Economic Development." The Annals of the American Academy of Political and Social Science, vol. 554, 1997, pp. 136–49. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/1049571. Accessed 10Jan. 2024.
Misra, Jugal Kishore. "EMPOWERMENT OF WOMEN IN INDIA." The Indian Journal of Political Science, vol. 67, no. 4, 2006, pp. 867–78. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/41856270. Accessed 12 Feb. 2024.
MISHRA, NRIPENDRA KISHORE, and TULIKA TRIPATHI. "Conceptualising Women's Agency, Autonomy and Empowerment." Economic and Political Weekly, vol. 46, no. 11, 2011, pp. 58–65. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/41151972. Accessed 11Jan. 2024.
Natasha Primo. "Women's Emancipation: Resistance and Empowerment." Agenda: Empowering Women for Gender Equity, no. 34, 1997, pp. 31–44. JSTOR, https://doi.org/10.2307/4066241. Accessed 02 Jan. 2024.
https://wcd.nic.in/
https://www.un.org/sustainabledevelopment/gender-equality/

The Influence of Patriarchal Society on the Reconstruction of Feminine Identity in the Selected Novels of R. K. Narayan and Mulk Raj Anand: A Comparative Study

PRADEEP KUMAR SINGH
Research Scholar, Deptt. Of English Shri Venkateshwara University, Gajraula, Amroha, UP
Dr. ANIL SIROHI
SUPERVISOR
Deptt. Of English Shri Venkateshwara University, Gajraula, Amroha, UP

Abstract—The study compares how patriarchal culture affects the reconstruction of the feminine self in several novels by top Indian authors R.K. Narayan and Mulk Raj Anand. The writers examine social dynamics and cultural influences to highlight the difficulties women face when redefining themselves in patriarchal societies. In The Guide and The Dark Room, R.K. Narayan portrays women within Indian culture. Rosie and Savitri show how women struggle to escape cultural norms. Rosie breaks patriarchal norms by becoming a dancer, and Savitri's journey from modest housewife to confident woman illustrates women's challenges. Mulk Raj Anand's Untouchable and Two Leaves and a Bud graphically show how patriarchy affects women. Female tea plantation workers, Bakha's sister, and other Anand characters represent women's oppression and exploitation due to class hierarchies and societal norms. The characters' fight for equality and dignity is shaped by class and gender relations. The study uses secondary and qualitative research methods and pragmatism to understand the reconstruction of the feminine character in these two authors' novels. As the discussion and analysis section shows, both authors wanted to show women's efforts to escape their misery by empowering them because they could not make independent decisions. Both authors discuss how patriarchal ideas and social norms shape feminine identity and women's struggles for self-discovery, independence, and empowerment. Narayan and Anand's female protagonists challenge social norms and fight for equality.

Index Terms—feminine identity, patriarchy, feminism, pragmatism

I. INTRODUCTION

Famous Indian authors R.K. Narayan and Mulk Raj Anand both frequently explore the societal dynamics and cultural influences of respective eras in their writing. Both authors have highlighted the impact of patriarchal culture on the rebuilding of feminine identity in their novels, which is a prominent literary issue. While the present study has been aimed at the determination of the influence of the patriarchal society on the feminine identity, the use of comparison is done in the present case where some selected novels of the two authors are compared to determine the main aspect of the novel. In the Literature review section, a comparative evaluation of the different themes arising from the selected novels of the two authors and the main influence of the patriarchal society on the reconstruction of the feminine identity within the novel are described through the same. A. Character Portraying of the Two Authors In the novels of the author R.K. Narayan, the women characters are portrayed as typical conservative Indian women where the presence of a head character in the family in the form of male has been evident. In his fictitious hamlet of Malgudi, R.K. Narayan frequently depicts the archaic and conservative social conventions that influence women's life. One of his well-known works, "The Guide," sheds light on Rosie's hardships as a gifted actor and dancer. A patriarchal culture rejects Rosie's efforts to defy norms and follow her passion and judges her for doing so. Her journey serves as a metaphor for the difficulties women have while attempting to reimagine their feminine selves outside of the traditional roles (Akhter & Devi, 2022). Savitri, a character in "The Dark Room," is a lady stuck in an unpleasant marriage. Narayan emphasised how Savitri's attemptd to show her uniqueness are impeded by society conventions and how her identity is defined by her roles as a wife and mother. The novel has illustrated how patriarchy affects women's decisions and agency, which results in a struggle for self-awareness and empowerment.

B. Comparison of Similarity and Differences Between the Two

In general, R.K. Narayan and Mulk Raj Anand use their works to highlight how patriarchal ideals and societal conventions define and limit feminine identity. They show how women must

overcome obstacles and exercise their agency in order to reimagine who they are in the face of these limitations. These authors provide insights into the continuous battle for gender equality and empowerment through their writing, which also illuminates the complexity of the female experience in a patriarchal culture.

C. Main Revelations in the Study

The present study is developed based on the comparative analysis of the impact of the patriarchal society on the women in their novels. The literature review section aims to determine the aspect of reconstruction of the feminine identity and in the Indian context. As indicated in the present section, it can be described that there has been an impregnable impact of the patriarchal society on women and their freedom. The methodology section describes the process of the secondary data collection and comparative analysis where the research objectives are stated before that. From the understanding of the different aspects of the selected novels of the two writers, the description of the results based on the discussion is presented in the results and discussions.

II.REVIEW OF LITERATURE

A. Definition of Reconstruction of Feminine Identity

The term "reconstruction of feminine identity" refers to the process of redefining and remaking women's roles, representations, and societal perceptions during a certain historical period or cultural setting. The "Reconstruction of Feminine Identity" refers to the changes and developments in how women were regarded and presented in society, particularly in theatre and public life. Women's responsibilities and visibility changed during this time period. Following a period of Puritan rule in which women's engagement in theatre and public life was restricted, the Restoration ushered in a period in which women began to participate more actively in the theatrical scene, serving as actresses and playwrights (Meena, 2023).

B. The Concept of Reconstruction Feminine Identity in the Context of India

The concept of reconstruction of feminine identity in the particular context of India has always been perceived in the social, political and economic context in which the particular piece of literature is written. For example, the concept of reconstructing feminine identity especially those relating to the restoration of women's rights, representation, emancipation and social outlook have always been challenged by both male and female writers (Kumar, 2022).

Indian literature has definitely played its due importance in reflecting how some cultural norms and dynamics about the role and responsibility of a woman in regards to her social identity have faced barriers and oppression through the ages. The limitations of social and political rights, orthodox social constraints have been reflected mostly in stories dealing with rustic Indian life (John, 2023). The requirement for recreating feminine identity in the light of that of western philosophy was the common practice among various Indian English authors. However, in the works of both R K Narayan and Mulk Raj Anand the characters always borrow from the mythological archetypes from that of Indian epics like Ramayana and Mahabharata.

C. The Influence of Patriarchal Society on Feminine Identity

The majority of the Indian novelists and authors had very diverse views on the subject of representation of female identity and the "restoration" on the different levels of social hierarchies. R. K. Narayanan and Mulk Raj Anand are among the most notable authors in Indian English literature who have actively sought out interesting and insightful female characters in their works time and time again. The influencer of social perception of patriarchy is in full exposure in both of their work with an undertone that delves into character study. R. K. Narayan's writings, notably his handling of female characters and their changing positions, can be called feminist in nature (Garg, 2023). Despite openly labelling himself as a feminist, his paintings show female characters gradually evolving from traditional, submissive positions to more aggressive and autonomous ones, often questioning societal conventions and expectations. In Narayan's novels, two generations of women are depicted: the elder generation, which adheres to conventional values, conventions, and taboos, and the newer generation, which breaks free from these limitations.

D. Reconstruction of Feminine Identity in Indian Literature

The reconstruction of feminine identity in Anand's work comes in multiple ways. For example, the struggle against patriarchy, superstition and oppression, gender double standards and resistance and self-affirmation. Feminism is a driving force in literary criticism, bringing insights on society standards and women's rights. Women's struggles for identification and uniqueness are portrayed in

Indian English literature, frequently through the portrayal of oppressed female characters.

The main objectives of the research are:

· to understand the basic commonalities of feminine identity with a comparative evaluation of both RK Narayanan and Mulk Raj Anand.

· to identify possible areas of differences between the two authors when dealing with the subject of Patriarchal Society and its variable impact on feminine identity.

III.METHODS

The present study is conducted based on the novels of Mulk Raj Anand and R.K. Narayan where the women characters are portrayed through the discussion of the patriarchy in Indian society. As discussed in the earlier section, both the authors have given subtle explanations of how patriarchal standards mould and deform feminine identity. In their writing, women frequently try to overcome cultural restrictions in search of self-discovery, independence, and autonomy. While criticising the effects of patriarchal society on women's life, Narayan and Anand also show moments of empowerment, resiliency, and resistance.

A. Research Philosophy

The process of pragmatism research philosophy is chosen here in the present research as it enables the researcher to choose the philosophy as per the research problem (Kothari, 2004). The same allows the researcher to understand the aspect of feminine character reconstruction from different angles and the influence of patriarchal society on it.

B. Research Approach

The study employs a qualitative approach. The collection of the data from the different novels like the dark room, the old woman and the cow, guide, and others are described qualitatively in order to portray the typical influence of patriarchal society on the women and their liberty.

C. Sources of Data

The data are collected from both primary and secondary sources. The collection of the different novels in the present study is done based on the central characters of the same where it has been a woman. As an example, the character of Savitri in the dark room has been the central character of the novel who has faced the dominant maltreatment by her husband. The same has been followed in the selection of novels of both the authors.

D. Data Analysis Method

The study is done based on the portrait of the female characters in these novels and the influence of the patriarchal society on their reconstruction. The analysis is employed through the qualitative descriptive method.

IV.RESULTS AND DISCUSSIONS

A. Perspective on Patriarchal Society and Feminism in Novels by Two Writers

Colonial power and the rise of the capitalist economy were mainly led by males in ancient India, as portrayed in "The Guide" by R. K. Narayanan, which had a tremendous impact on the lives of women. In the pre-colonial era, indigenous males and females had different roles in society but those roles were valuable. A patriarchal society is a society where the supreme authority lies at the hand of males in a family or society (Saikia, 2020). A hierarchical and hegemonic relationship is built between males and females over time. Women in a patriarchal family and society are observed as sexual objects their desire, feelings, and wishes are not valued significantly. In "The Guide", it is found that women characters are submissive and they give themselves away to be a mere puppet at the hand of males who hold the authority. The submission of women is the act responsible for empowering the existing system of patriarchal dominance: "My daughter is married to my own sister's son, and so there is no problem. I often visit my sister and also my daughter, and so no one minds it".

B. The Writing Style Used by Anand and Narayan

Anand's writing style is committed to exposing injustice and justice in contemporary Indian society. His writing has touched on several crucial themes such as the distress of suppressed lower casts, economic exploitation, and the plight of women. Photographic description and presentation of his writing style make his themes universally appealing. His "Two Leaves and a Bud" and "Untouchable" are not merely Indian literary pieces, but rather have become universal for their character portrayal. The writer has dealt with the loss of identity for his characters and shown how the characters thrive to regain their existence through prolonged struggle.

"Two Leaves and a Bud" is written on the ground of contemporary social realism which enlightens the inhuman behaviour committed to the labour class and women. The plantation workers expose psychological stigma for surviving over-exploitation. Anand's writing also touches on nature and scenic descriptions of the tea garden at Assam (Khasa, 2023).

C. Feminine Character Development by Two Writers

"The dark room" is a special novel because it deals with women's worries and domestic violence in Indian marital institutions. Narayan has made Savitri, the main female protagonist struggling, who tries hard to gain her own freedom and identity (Madhavaiah, 2022). In Savitri's words, "Men are impetuous. One moment they are all in temper and the next all kindness. Men have to bear many worries and burdens, and you must overlook it if they are sometimes unreasonable."

These lines show the perspective of men at that time. The character development of Savitri raises respect for the character in the mind of the audience. Savitri chastises her husband Ramani for committing an extra-marital affair by calling him impure and dirty. Another work of Narayan, "the guide" is also a masterpiece from the point of view of female characterisation. In this novel, the main character Raju finds comfort in the presence of his mother. Raju's mother, as a typical Indian woman, is careful of daily expenses and rebukes her husband for wasting money on horses (Eve, 2021). Another female character is Rosie who is full of aesthetic traits and loves dancing. Both the characters continue their journey simultaneously with the male characters. Though they are shadowed by their husbands and sons, these female characters contribute to the plot development of the writing of Narayan.

V.CONCLUSION

The study here has effectively highlighted the nature of the patriarchal society in India. The works of the authors who are being considered here for the study shed light on the fact that Indian society is strongly patriarchal in nature. Women in the society have been represented as inferior and largely subjugate its community. This is the core manner in which women characters of the novels of these writers have been portrayed initially. Largely owing to the patriarchal nature of the society, it has been highlighted and underpinned in the study here that women have to suffer immensely and the men and have to face daily torments and issues. Men on the other hand, have the upper hand in the day to day lives, and largely impact the lives of women. It has been shown that initially, women were largely subjugated and controlled by men. Nevertheless, the evolution of women and their journey from being subjugated to being free have been portrayed effectively in the stories of both the authors.

Besides, both these authors have been effectively portraying the plight of women in the society of India. The kind of torture that individual women have had to face from there and sympathetic husbands and her in-laws has been effectively portrayed in the works of Mulk Raj Anand. Further, the works of R. K. Narayan has highlighted the issues that women have to face as a result of them being completely controlled by their male counterparts. The quotations that have been placed above have highlighted the fact that the women had no decision-making powers of their own and had to follow the orders of their male counterparts. In this regard, the authors have highlighted that despite such atrocities and subjugation, the women are able to break through the shackles and succeed in their lives. This is a portrayal of the grit and strength of womankind, which shows that the mean tone of the stories is largely feminist in nature. They completely portray the feminist nature and the feminist notion of freedom of women.

Finally, one of the main themes that have been understood from the narration above is the fact that a juxtaposition of male perspectives and feminine identities are a crucial part of the overall stories of both these authors. These authors make use of male narrators to identify and highlight the plight of women and the issues that are being faced by the feminine gender. Therefore, an appropriate phone is set, which aligns with the requirements of the leaders. This creates a greater impact as well, which is largely a necessity in the storyline. Therefore, through their works, the feminist ideals, and effectively portrayed, as women are shown as representatives of strength and validity, who have the ability to stand against all kinds of cruelty and yet evolve.

REFERENCES

[1]Adhikary, R. P. (2020). Existential Maturity of Savitri in the Dark Room by RK Narayan. UJAH: Unizik. Journal of Arts and Humanities, 21(1), 138-155.

[2]Akhter, T., & Devi, S. (2022). A Perspective of Indian Culture. Culture and Literature, 4(2), 142-160.

[3]Alam, M. N. (2021). Unfold Diary of Downtrodden. Shree Vinayak Publication.

[4]Anand, M. R. (1935). Untouchable. Penguin India; New edition.

[5] Eve, K. R. J. (2021). A Study of Women in RK Narayan's 'The Guide'andChinua Achebe's 'Things Fall Apart'. Turkish Journal of Computer and Mathematics Education, 12(7), 2628-2631.

[6] Garg, S. (2023). Redemption 'As the Main Theme of the Novel the Guide by RK Narayan'. So-

cial Sciences, 1(1), 1002-1004.
[7] Goel, A. (2023). Existential Crisis in RK Narayan's The Dark Room and Mulk Raj Anand's Untouchable. Centre for Language Studies, 4(7), 52-67.
[8] Jarin, T., & Zahin, A. U. R. (2023). Gender Performativity in Inter-Caste Relationship in the Indian Hindu Culture: A Postcolonial Gender Study in Mulk Raj Anand's Untouchable and Arundhati Roy's the God of Small Things. Journal of Women Empowerment and Studies, 3 (2), 23-32.
[9] Jarin, T., & Zahin, A. U. R. (2023). Inter-Caste Gender Performativity in Indian Hindu Culture: A Postcolonial Gender Study in Mulk Raj Anand's Untouchable and Arundhati Roy's The God of Small Things. Zakariya Journal of Social Science, 2(1), 11-22.
[10] John, M. E. (2023). Discrepant dislocations: Feminism, theory, and postcolonial histories. Univ of California Press.

पौड़ी जनपद में माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन जनपद पौड़ी के दुगड्डा, जयहरीखाल, नैनीडांडा विकास खण्ड क्षेत्र के माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास में सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जानेवाली विभिन्न पदों में धनराशि का वर्षवार अध्ययन''

-नीरज कुमार कमल
शोधकर्ता, शिक्षा विभाग,
हिमगिरी जी विश्वविद्यालय देरहादून उत्तराखण्ड।

-डॉ.अनूप कुमार पोखरियाल,
शोध निर्देशक, सहायक प्रोफेसर
शिक्षा विभाग, हिमगिरी जी
विश्वविद्यालय देहरादून, उत्तराखण्ड।

शोध का उद्देश्य

सारांश- शोधार्थी द्वारा जनपद पौड़ी के दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र में सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली विभिन्न योजनान्तर्गत धनराशियों का वर्षवार अध्ययन करने की दिशा में एक सार्थक कदम उठाने का प्रयास किया गया है। शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा सन् 2010-11 से 2019-2020 तक राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अन्तर्गत सरकार द्वारा पौड़ी जनपद के माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास हेतु दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र के समस्त माध्यमिक विद्यालयों को विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत धनराशियों का अध्ययन किया गया है। न्यायदर्श के रूप में शोधार्थी द्वारा छः विकास खण्ड क्षेत्र (दुगड्डा, जयहरीखाल, नैनीडांडा, बीरोंखाल, द्वारीखाल, रिखणीखाल) के समस्त माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में 100 अध्यापकों तथा 100 अभिभावकों का चयन उपलब्धता के आधार पर किया गया है। शोधार्थी द्वारा अध्ययन का परिसीमन उत्तराखण्ड राज्य के जनपद पौड़ी के माध्यमिक स्तर विद्यालयों तक ही किया है। जनपद पौड़ी के अन्तर्गत तीन विकास खण्ड क्षेत्रों (दुगड्डा, जयहरीखाल, नैनीडांडा) के माध्यमिक स्तर के चार विद्यालयों में 100 अध्यापकों तथा 100 अभिभावकों के विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से निष्कर्षों के अधार पर यह कहा जा सकता है कि तीनों विकास खण्ड क्षेत्रों में दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र के माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास के लिए सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जा रही राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अन्तर्गत वर्षवार धनराशि सार्थक रूप से अधिक है।

मूल शब्द-

1.जनपद पौड़ी के (दुगड्डा, जयहरीखाल, नैनीडांडा) विकास खण्ड क्षेत्रों के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की शिक्षा व्यवस्था के विकास का राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विश्लेषणात्मक अध्ययन।

2.जनपद पौड़ी मंे माध्यमिक स्तर की शिक्षा के तीन विकास खण्ड क्षेत्रों (दुगड्डा, जयहरीखाल, नैनीडांडा) में अध्यापकों तथा अभिभावकों द्वारा बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

प्रस्तावना- शिशु जन्म से ही हर वस्तु से अनजान होता है। वह हर वस्तु को स्पर्श करके उसकी पहचान करना सीखता है। जन्म के दौरान ही उसकी शिक्षा की शुरूआत उसके परिवार से होती है। परिवार में उसके माता-पिता ही उसके प्रथम शिक्षक होते हैं जिनकी सहायता से वह स्वयं को समाज व वातावरण के अनुसार अपने को ढ़ालना अर्थात अपने व्यवहार में परिवर्तन तथा समायोजन करना सीखता है जिसे औपचारिक शिक्षा कहते है। सीखने की इस प्रक्रिया को ही शिक्षा कहा जाता है। मनुष्य के जीवन में यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य का सर्वांगींण विकास सम्भव हो सकता है क्योंकि बिना शिक्षा के मनुष्य का जीवन निराधार होता है। शिक्षा को ही मनुष्य जीवन की आधारशिला माना गया है। शिक्षा से ही मनुष्य की आदतों, सीखने के कौशलों, शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक तथा व्यक्तित्व विकास किया जाता है।

प्राचीन काल में विद्वानों द्वारा मनुष्य के विकास के लिए शिक्षा को अनिवार्य माना गया है। मनुष्य को ही समाज का निर्माणकर्ता स्वीकारा गया है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते है कि मनुष्य और समाज दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं, जो एक दूसरे के बिना अधूरे माने जाते हैं। इन दोनों के सहयोग से ही समाज एवं सुयोग्य राष्ट्र की कल्पना की जा सकती है। यही शिक्षा का एक मूल उदाहरण है। मनुष्य शिक्षा ग्रहण करके समाज में रहकर अपने व्यवहारों में परिवर्तन लाकर ही सुयोग्य समाज एवं कुशल राष्ट्र का निर्माण करने में अपनी अहम भूमिका निभा सकता है।

मनुष्य सुख और शान्ति के लिए जन्म से ही प्रयास करता आया है। अपनी उन्नति के लिए सृष्टि की शुरूआत से ही वह प्रत्यन्तशील है। उसे पूर्ण मानसिक संतुष्टि शिक्षा द्वारा ही प्राप्त हुई

है। शिक्षा के अभाव में मनुष्य का जीवन पशु के समान है। सचमुच शिक्षा से ही मनुष्य को अपने कर्तव्यों का ज्ञान होता है। बिना शिक्षा के वह अपनी अन्तः एवं बाह्य शक्तियों का विकास नहीं कर सकता है। शिक्षा से ही उसे सत् और असत् का ज्ञान होता है। शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन करके उसे अज्ञान से ज्ञान, अंधेरे से रोशनी की ओर अग्रसर करना था।

इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न योजनाओं को गति प्रदान की जा रही है जिसमें राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, मध्याह्न भोजन योजना, विज्ञान सामग्री, विद्यालय की व्यवस्था को चुस्त दुरूस्त बनाए रखने के लिए विद्यालय अनुदान, शैक्षिक भ्रमण, एस0एम0डी0सी0 प्रशिक्षण, गणित किट, अध्यापक प्रशिक्षण, बालिका अभिप्रेरणा, खेलकूद, मार्शल आर्ट, शालासिद्धि, ईको क्लब, एस्ट्रोनॉमी क्लब, एन0एस0एस0, भारतीय रेडक्रॉस समिति आदि प्रमुख हैं।

इतिहास इस बात का गवाह है कि आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक मनुष्य विकास के मार्ग पर लगातार अग्रसर हो रहा है। उसकी प्रगति का आधार शिक्षा को माना गया है। शिक्षा का अधिकार 1 अप्रैल 2010 से भारत में लागू हुआ, जिसमें कक्षा 1 से कक्षा 8 तक (6 वर्ष से 14 वर्ष) की आयु के सभी छात्र-छात्राओं को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है अर्थात् जिसका उद्देश्य सभी छात्रों को प्राथमिक शिक्षा का ज्ञान कराना है।

शोध अध्ययन में शोधार्थी के द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि माध्यमिक स्तर पर जनपद पौड़ी के विद्यालयों में ऐसे कौन से तत्व हैं जो शिक्षा के विकास को प्रभावित कर सकते हैं तथा किस प्रकार उनसे निजात पायी जा सकती है। उन सभी कारकों की पूर्ति करके ही शिक्षा के विकास में वृद्धि सम्भव की जा सकेगी।

डॉ0 आर0के0 मुखर्जी- शिक्षा पूर्णतया सैद्धान्तिक और साहित्यक नहीं थी, वरन किसी न किसी कला से सम्बद्ध थी।

मानव को ईश्वर की सर्वोत्तम छवि माना गया है। आज के युग को विज्ञान का युग कहा जाय तो यह अतिश्योक्ति नहीं होगी।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों का स्पष्टीकरण-

1. तकनीकी शब्दों का प्रयोग किया जाना आवश्यक होता है क्योंकि एक ही शब्द भिन्न-2 अर्थों में प्रयोग किया जाता है।

2. माध्यमिक स्तर- माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का अर्थ है विश्वविद्यालयी शिक्षा की तैयारी करना। माध्यमिक स्तर की शिक्षा को 14 वर्ष से 18 वर्ष तक की आयु के छात्र-छात्राओं द्वारा ग्रहण करने का एक मात्र साधन है।

माध्यमिक स्तर की शिक्षा को दो स्तरों में वर्गीकृत किया जाता है। प्रथम स्तर में कक्षा 9 से 10 तक की शिक्षा (उच्च माध्यमिक) तथा द्वितीय स्तर में, कक्षा 11 से कक्षा 12 तक की शिक्षा को (उच्चतर माध्यमिक) कहा जाता है।

क) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार-

कक्षा 9 से कक्षा 12 तक अर्थात् 14 वर्ष से 18 वर्ष तक की आयु वाले छात्र-छात्राओं को शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों को उच्चतर माध्यमिक विद्यालय का दर्जा प्रदान किया गया है।

ख) माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53)-

23 सितम्बर 1952 को मद्रास विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ0 लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया था। माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च प्राथमिक शिक्षा के बाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने से पूर्व की शिक्षा है।

11 वर्ष से 17 वर्ष तक की आयु के समस्त छात्र-छात्राओं द्वारा माध्यमिक स्तर की शिक्षा ग्रहण की जाती है।

ग) भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66)-

सन् 1964 में डॉ0 दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में भारत सरकार द्वारा भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया था जिसने अपने प्रतिवेदन को 1966 में जमा किया था। इसमें मानव संसाधनों के विकास, परिवारों की उन्नति, छात्र-छात्राओं के चरित्र निर्माण तथा विशेषकर बालिकाओं की शिक्षा पर अधिक बल दिया गया था।

घ) नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार-

इस नीति के अन्तर्गत मानव संसाधन मंत्रालय का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है। इस नीति का उद्देश्य 2030 तक स्कूली शिक्षा में पूर्व विद्यालय से माध्यमिक स्तर की शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य रखा गया है। इस नीति के तहत 5 $ 3 $ 3 $ 4 डिजाइन वाले शैक्षणिक संरचना का प्रस्ताव किया गया है जिसमें 3 वर्ष से 18 वर्ष की आयु वाले बच्चों को शामिल किया गया है। 4 वर्ष का उच्च चरण (या माध्यमिक) ग्रेड 9, 10, 11, 12 की कक्षाओं में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों को

शामिल किया गया है।

3. अध्ययन का महत्व- एक लम्बे वर्षों के संघर्ष व बलिदानों के बाद 15 अगस्त 1947 को भारत विदेशी हुकुमत से आजाद हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत ने विभिन्न क्षेत्रों में विकास के प्रयास किये जिनका परिणाम सार्थक सिद्ध हुआ। जैसे-

विज्ञान के क्षेत्र में उच्च तकनीकी विकास, ज्ञान के क्षेत्र में नवीन योजनाओं का विकास, उत्तम शिक्षा हेतु सरकार द्वारा संचालित की जा रही विभिन्न योजनाओं का विकास आदि इस बात का संकेत देती है कि भारत ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में दिन-रात प्रतिदिन चौगुनी प्रगति करता जा रहा है।

इसी क्रम में हमारे उत्तराखण्ड राज्य ने माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व विकास किया है। इसलिए शोधार्थी ने जनपद पौड़ी के दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र के माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास हेतु राज्य सरकार द्वारा राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के तहत उपलब्ध कराई गई विभिन्न मदों में धनराशियों का वर्षवार विवरण क्या है, को जानने के लिए यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

☐शोध समस्या कथन-

''पौड़ी जनपद के माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन।''

☐शोध अध्ययन के उद्देश्य-

1.माध्यमिक विद्यालयों की बुनियादी सुविधाओं की वर्तमान स्थिति का अध्ययन।

2.माध्यमिक विद्यालयों में सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली रमसा व समग्र की विभिन्न योजनान्तर्गत धनराशि का वर्षवार अध्ययन करना।

सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन-

मनुष्य की दिन प्रतिदिन नवीन ज्ञान की खोज लगातार उपयोगी व सार्थक सिद्ध हुई है। उसको प्राप्त करना कोई सरल कार्य नहीं ह, कड़ी मेहनत की आवश्यकता होती है। सम्बन्धित साहित्यों का अध्ययन परिकल्पनाओं व उपकल्पनाओं के निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। इससे शोधकर्ता को शोधकार्य की भूमिका बनाने में मदद मिलती है। शोधकर्ता को सही दिशा में क्रमबद्ध कार्य करने में सम्बन्धित साहित्य सहायक एवं सार्थक सिद्ध होता है।

☐दास, 1971-

माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास का अध्ययन किया उनके द्वारा अपने अध्ययन का मुख्य उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा के विकास में बाधाओं का अध्ययन जानना था। उन्होंने निष्कर्ष में पाया कि माध्यमिक विद्यालयों के शैक्षिक विकास में सरकार कहीं हद तक संचालित योजनाओं का अभाव था।

☐भार्गव, 1981-

माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास का अध्ययन किया गया इनके द्वारा निष्कर्ष में पाया गया है कि माध्यमिक विद्यालयों में सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की सरकारी योजनाएं कार्यरत तो हैं लेकिन उन योजनाओं का सफल संचालन नहीं हो पा रहा है। जिस कारण माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति दयनीय है।

☐डॉ0 रमन के अनुसार-

कोई भी शोधकार्य का लिखित विवरण नियमानुसार तक तक उपयुक्त नहीं माना जाता है जब तक उस शोध से सम्बन्धित साहित्य को आधार उस लिखित विवरण मं न हो।''

☐डब्ल्यू आरबन के अनुसार-

किसी भी क्षेत्र का साहित्य उस आधारशिला के सम्मान ही जिस पर सारा भावी शोध कार्यक्रम आधारित रहता है क्योंकि बिना सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण द्वारा नींव मजबूत नहीं हो सकती है। शोधकार्य के प्रभावित होगे की सम्मानता बढ़ सकती है।

☐राठौर अनीता (2004)-

माध्यमिक स्तिर के विद्यार्थियों के समन्वय व शैक्षिक उपलब्धि का विद्यार्थियों के समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन किया गया। निष्कर्ष ने पाया गया कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के समन्वय व शैक्षिक उपलब्धि का विद्यार्थियों के समायोजन पर प्रभाव पड़ता है। जिन विद्यार्थियों के समन्वय क्षमता अधिक थी उनमें शैक्षिक उपलब्धि अधिक पाई गई तथा जिनकी समन्वय समता कम थी उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर समायोजन का आंशिक प्रभाव पाया गया अर्थात् माध्यमिक स्तर की शिक्षा की विकास पर आंशिक प्रभाव देखने का मिला।

☐एन0सी0ई0आर0टी0 (2006)

माध्यमिक स्तर की शिक्षा को विकास का अध्ययन करने पर पाया कि विद्यार्थियों का मूल्यांकन न केवल उच्च शिक्षा में प्रवेश कराने वाला घेरा चाहिए बल्कि उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्रदान कराने वाला होना चाहिए।

☐अर्जुन लाल (2015)-

अपने शोध अध्ययन ''इफेक्टिव सी0सी0ई0 इन गर्वनमेंट स्कूल्स

ऑफ उत्तराखण्ड के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि शिक्षा माध्यमिक स्तर पर शिक्षण अधिगम शिक्षा के विकास हेतु प्रक्रिया के लिए सतत् व व्यापक मूल्यांकन अत्यधिक प्रभावशाली है।

4. अध्ययन की अवधारणाएं-

1.दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र के माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास हेतु सरकार द्वारा संचालित राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के तहत विभिन्न योजनान्तर्गत धनराशियों का वर्षवार अध्ययन करना।

2.दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विकास हेतु अध्यापकों एवं अभिभावकों की सहभागिता का सरकार द्वारा संचालित योजनाओं में सक्रियता का अध्ययन करना।

5. शोध उपकरण-

शोधार्थी द्वारा आंकड़ों को संकलित करने हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावलियों का निर्माण किया गया है, जिसमें सरकार द्वारा संचालित राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के तहत विभिन्न योजनाओं की धनराशियों का वर्षवार अध्ययन किया गया है। शोधार्थी द्वारा प्रदत्तों का संकलन करने हेतु आवश्यक मानवीयकृत अथवा स्वनिर्मित उपकरणों का किया जायेगा।

6. शोध अध्ययन विधि-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया है।

7. समष्टि-

शोध अध्ययन की समष्टि के अन्तर्गत जनपद पौड़ी के दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों का अध्ययन किया गया है जिनकी कुल सं0 34 है।

8. अध्ययन के चर-

प्रस्तुत शोध में चर के रूप में केवल सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनान्तर्गत धनराशियों का वर्षवार विवरण ही लिया गया है।

9. न्यायदर्श-

शोधकार्य में न्यायदर्श का चयन उद्देश्यपरक न्यायदर्श विधि से किया गया है जिसमें पौड़ी जनपद के दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र के 34 राजकीय विद्यालयों में से चार विद्यालयों का चयन किया गया है। चयनित विद्यालयों में विभिन्न योजनाओं का चयन न्यायदर्श के रूप में किया गया है।

10. साख्यिकीय प्रविधियाँ-

शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत अध्ययन मंे सांख्यिकीय के अन्तर्गत विश्वसनीय परिणाम निश्चित करने हेतु मध्यमान, प्रतिशत या आवश्यकतानुसार अन्य सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

11. शोध परिसीमन-

प्रस्तुत शोध अध्ययन उत्तराखण्ड राज्य के जनपद पौड़ी के अन्तर्गत दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र के कुल 4 विद्यालयों में 100 अध्यापकों व 100 अभिभावकों का चयन सर्वेक्षण विधि द्वारा किया गया है।

12. शोध सीमाकंन-

☐प्रस्तुत शोध उत्तराखण्ड राज्य तक ही सीमित किया जाएगा।

☐प्रस्तुत शोध उत्तराखण्ड राज्य में स्थिति पौड़ी जिले के माध्यमिक विद्यालयों तक ही सीमित किया जाएगा।

☐प्रस्तुत शोध पौड़ी जनपद के 6 विकास खण्डों तक ही सीमित किया जाएगा।

13. आंकडों का सारणीयन एवं विशलेषण-

विकास खण्ड क्षेत्र-दुगड्डा

	GIC Kumbhichaur	GIC Sigaddi	GGIC Ghamdan-pur	GIC Kanvghati	GIC Jhandi-chaur
	(Amount in %)	Amount in %)	Amount in %)	Amount in %)	Amount in %)
2010-11	16.2			25.8	
2011-12	26.3		8.5	87.9	
2012-13	92.5		59.3	45.9	
2013-14	93.8	18.0	61.8	33.1	
2014-15	18.8	17.7	31.0	33.9	35.0
2015-16	6.25	38.2	24.3	10.0	55.8
2016-17	17.6	69.8	16.7	32.1	44.1
2017-18	22.8	2.8	23.1	45.6	25.0
2018-19	25.6	67.8	81.0	41.0	69.8
2019-20	44.7	77.00	63.8	40.4	76.9
2020-21	50.9	67.4	67.6	50.4	97.5
2021-22	26.3	67.8	67.9	50.8	72.2

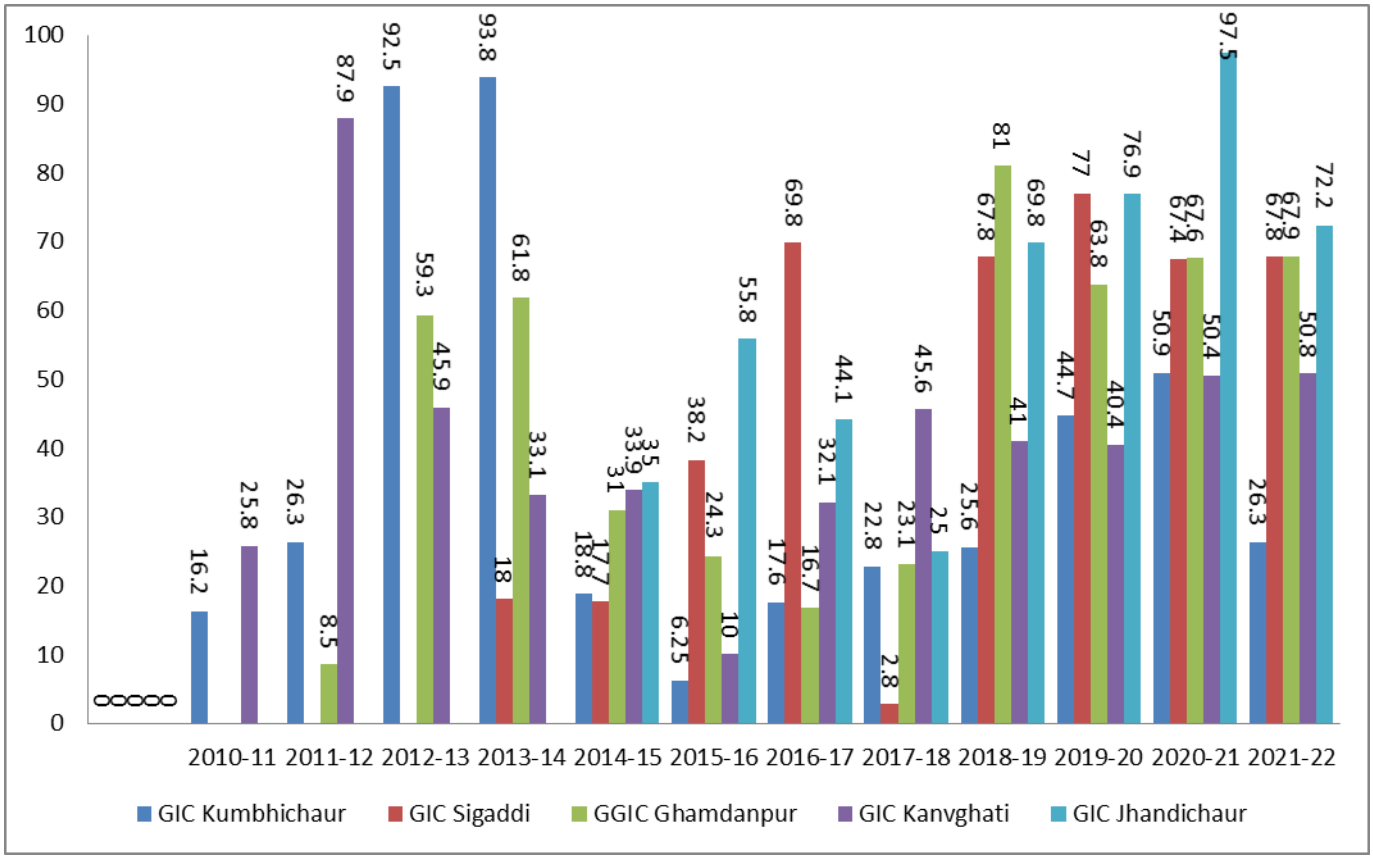

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालयों को प्राप्त धनराशियों का वर्षवार विवरण (प्रतिशत में)

विकास खण्ड क्षेत्र–जहयरीखाल

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालयों को प्राप्त धनराशियों का वर्षवार विवरण (प्रतिशत में)

Year	GIC Thalda	GIC Sauli	GIC Jaiharikhal	GGIC Lalnsdowne	GIC Sumari
	(Amount in %)	Amount in %)	Amount in %)	Amount in %)	Amount in %)
2010-11	14.2			35.8	
2011-12	24.3		9.5	89.9	
2012-13	72.5		49.3	47.9	
2013-14	83.8	15.0	62.8	37.1	
2014-15	18.8	14.7	34.0	43.9	25.0
2015-16	8.25	28.2	27.3	20.0	50.8
2016-17	16.6	79.8	20.7	42.1	45.1
2017-18	20.8	5.8	25.1	47.6	30.0
2018-19	27.6	77.8	85.0	45.0	79.8
2019-20	45.7	79.00	60.8	43.4	89.9
2020-21	49.9	70.4	77.6	55.4	90.5
2021-22	25.3	78.8	87.9	60.8	80.2

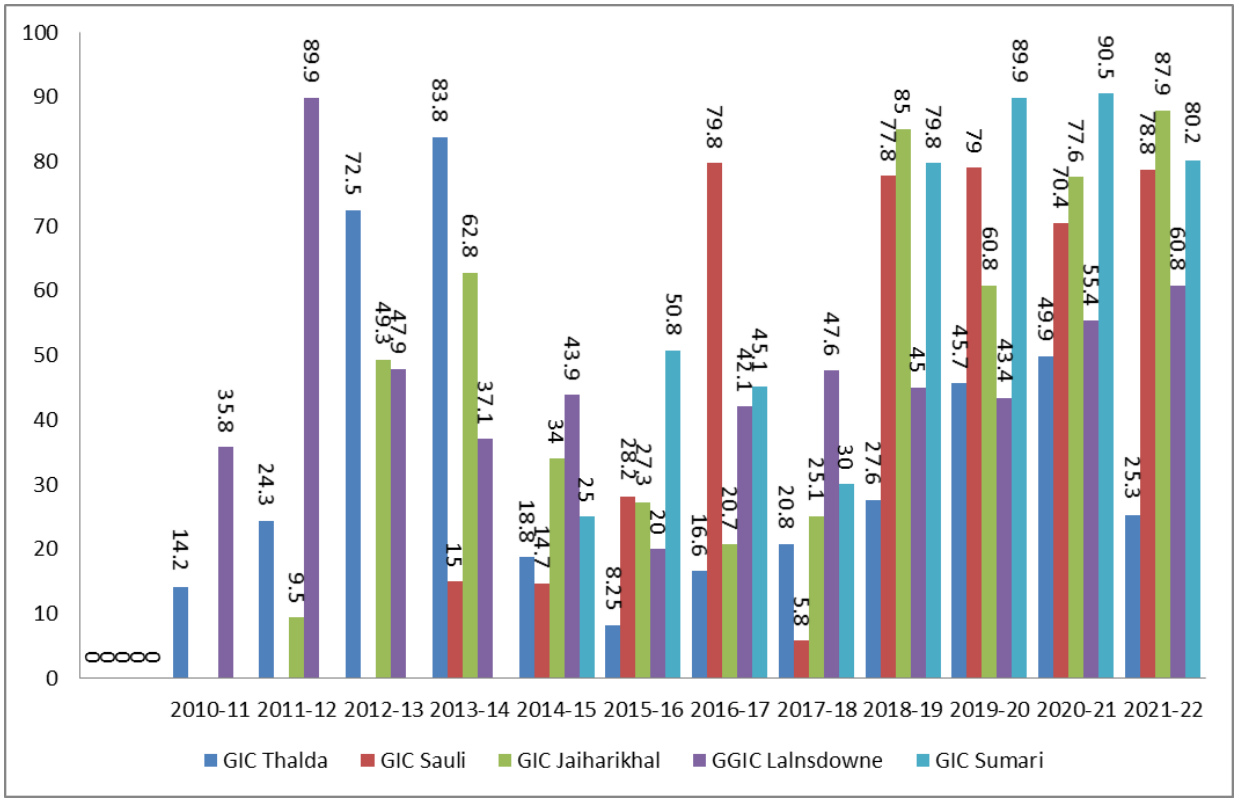

विकास खण्ड क्षेत्र-नैनीडाण्डा

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालयों को प्राप्त धनराशियों का वर्षवार विवरण (प्रतिशत में)

Year	GIC Kahli-yonkhet	GIC Dhumakot	GIC Haldukhal	GHSS Mok-shan	JIC Androli
	(Amount in %)	Amount in %)	Amount in %)	Amount in %)	Amount in %)
2010-11	14.2	20.0			
2011-12	20.3	25.0			
2012-13	82.5	30.0	49.3		
2013-14	80.8	34.0	51.8		
2014-15	20.8	37.7	41.0	23.9	25.0
2015-16	8.25	38.2	34.3	12.0	45.8
2016-17	21.6	69.8	26.7	32.1	34.1
2017-18	25.8	12.8	33.1	35.6	15.0
2018-19	30.6	57.8	71.0	40.0	59.8
2019-20	44.7	67.00	53.8	42.4	66.9
2020-21	50.9	77.4	57.6	48.4	87.5
2021-22	56.3	87.8	66.9	50.8	62.2

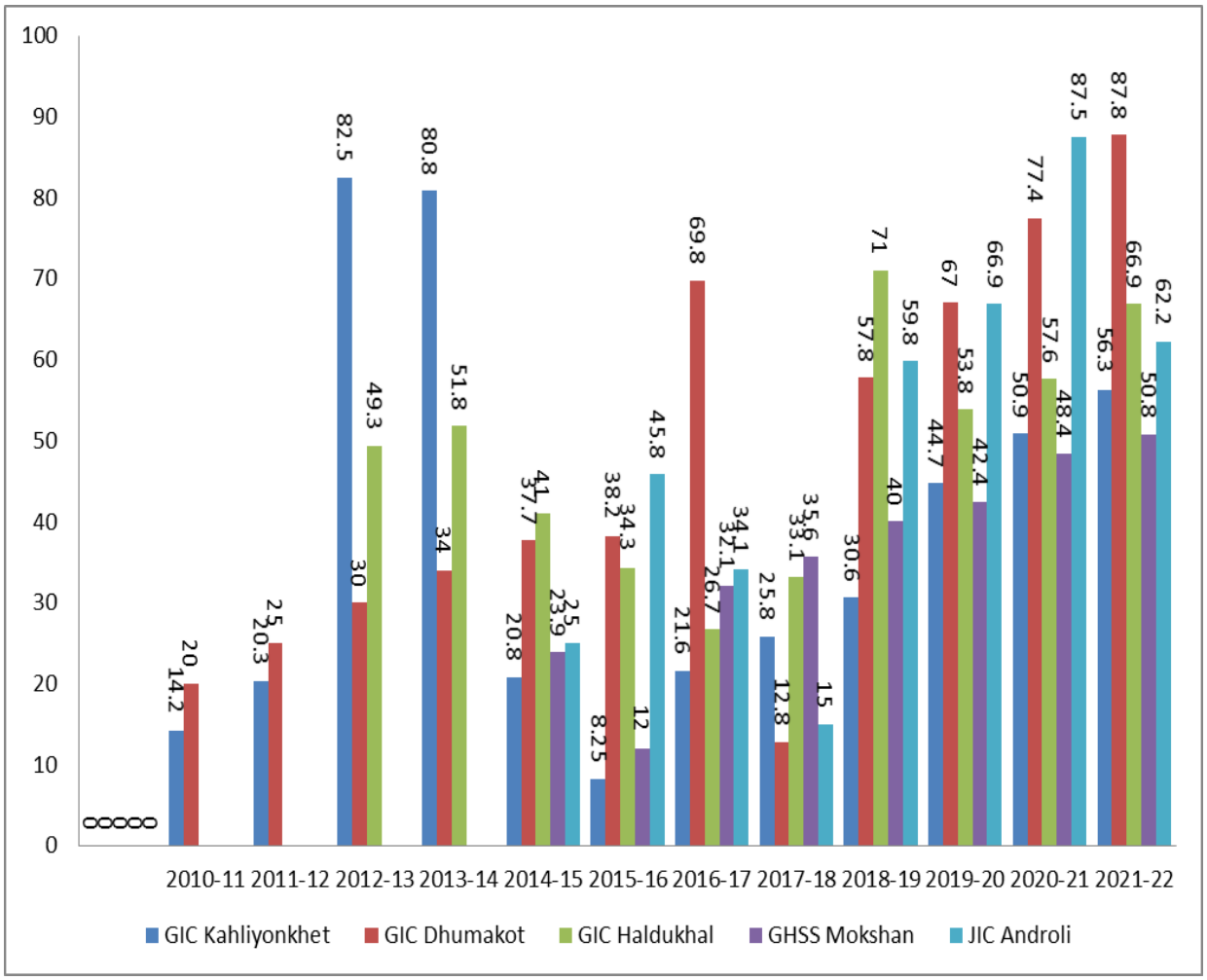

विकास खण्ड क्षेत्र-दुगड्डा

100 अध्यापकों के सर्वेक्षण द्वारा शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालयों को प्राप्त बुनियादी सुविधाओं की वर्तमान स्थिति (प्रतिशत में)

प्र0–1 विद्यालय की वर्तमान स्थिति?

विकल्प	दुगड्डा	
	अध्यापकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
बहुत अच्छी	85	85%
अच्छी	10	10%
दयनीय	5	5%

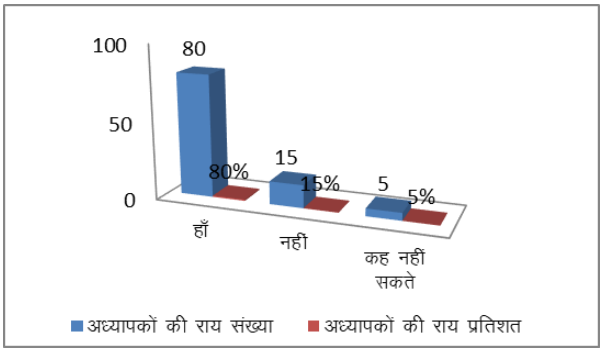

प्र0–2 विद्यालय में पर्याप्त कमरे हैं?

विकल्प	दुगड्डा	
	अध्यापकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	80	80%
नहीं	15	15%
कह नहीं सकते	5	5%

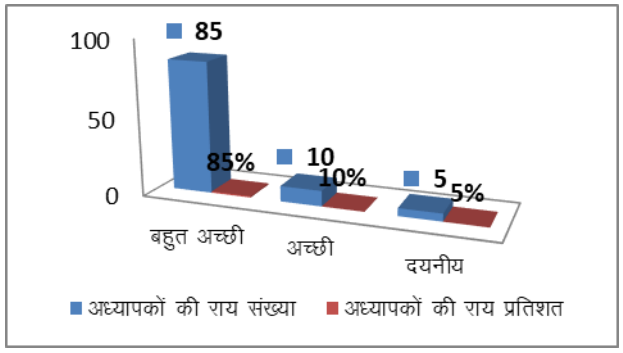

प्र0–3 विद्यालय में कम्प्यूटर की व्यवस्था है?

विकल्प	दुगड्डा	
	अध्यापकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	85	85%
नहीं	10	10%
कह नहीं सकते	5	5%

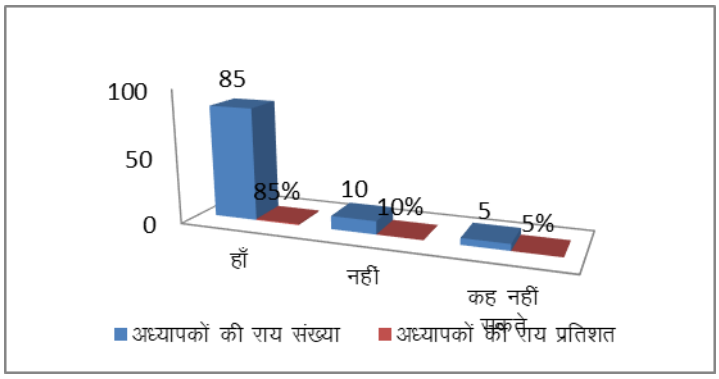

विकास खण्ड क्षेत्र–दुगड्डा

अभिभावकों के सर्वेक्षण द्वारा शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालयों को प्राप्त बुनियादी

सुविधाओं की वर्तमान स्थिति

प्र01–विद्यालय में शिक्षक अभिभावक संघ की बैठक होती है।

विकल्प	दुगड्डा	
	अभिभावकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
नियमित	75	75%
कभी–कभी	20	20%
कभी नहीं	5	5%

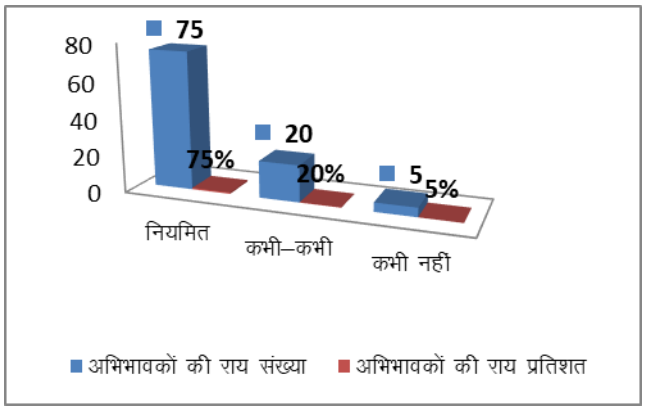

प्र02– क्या आप विद्यालय में अपने बालक बालिकाओं की उपलब्धि से सन्तुष्ट हैं।

विकल्प	दुगड्डा	
	अभिभावकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	85	85%
नहीं	10	10%
कह नहीं सकते	5	5%

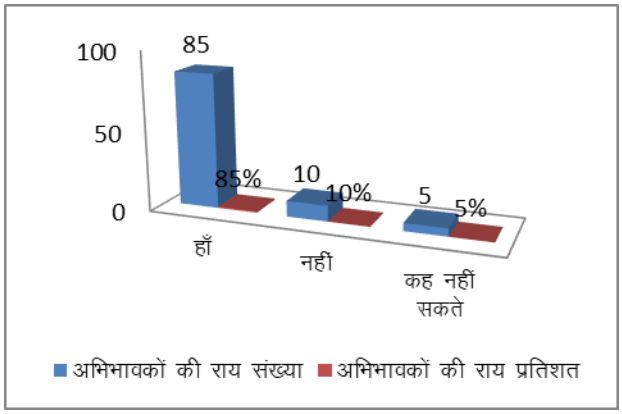

प्र03– क्या विद्यालय में बालक–बालिकाओं की समस्या का समाधान होता है।

विकल्प	दुगड्डा	
	अभिभावकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	85	85%
नहीं	10	10%
कह नहीं सकते	5	5%

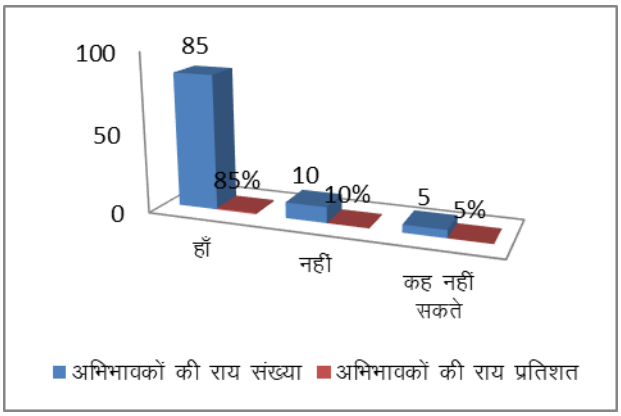

विकास खण्ड क्षेत्र–जयहरीखाल

अध्यापकों के सर्वेक्षण द्वारा शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालयों को प्राप्त बुनियादी सुविधाओं की वर्तमान स्थिति

प्र0–4 विद्यालय में छात्र–छात्राओं के लिए इन्टरनेट की व्यवस्था है?

	दुगड्डा	
विकल्प	अध्यापकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	50	50%
नहीं	45	45%
कह नहीं सकते	5	5%

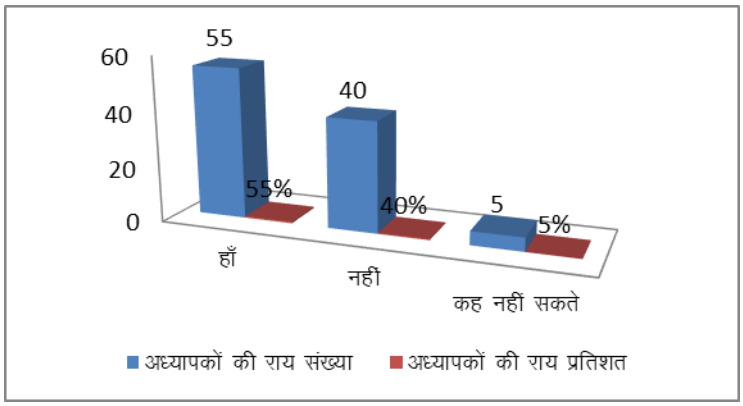

प्र05 विद्यालय में छात्रों के लिए पुस्तकालय की व्यवस्था है?

	दुगड्डा	
विकल्प	अध्यापकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	60	60%
नहीं	35	35%
कह नहीं सकते	5	5%

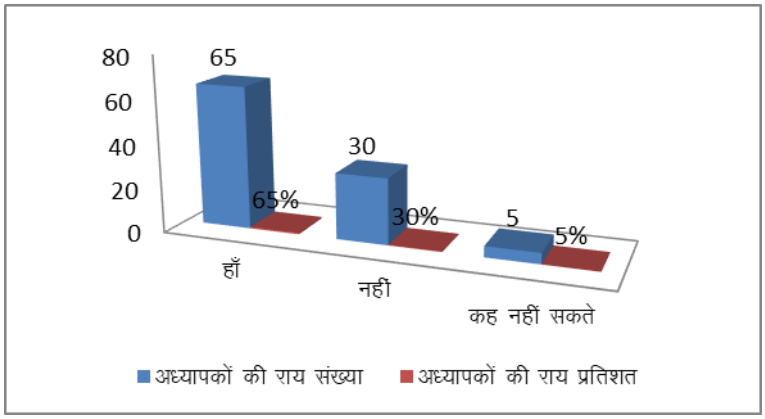

प्र06 सर्वशिक्षा अभियान के द्वारा नामांकन स्तर में सुधार है?

	दुगड्डा	
विकल्प	अध्यापकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	80	80%
नहीं	15	15%
कह नहीं सकते	5	5%

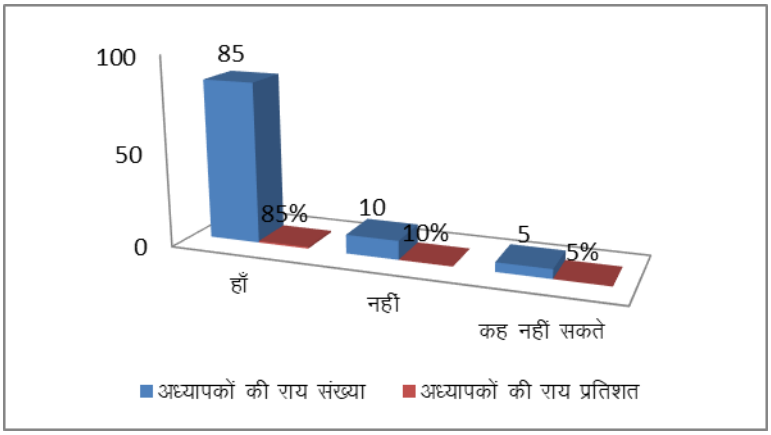

विकास खण्ड क्षेत्र–जयहरीखाल

अभिभावकों के सर्वेक्षण द्वारा शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालयों को प्राप्त बुनियादी सुविधाओं की वर्तमान स्थिति

प्र04– सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत किताबें वेशभूषा प्राप्त होती है?

विकल्प	दुगड्डा	
	अभिभावकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	85	85%
नहीं	10	10%
कह नहीं सकते	5	5%

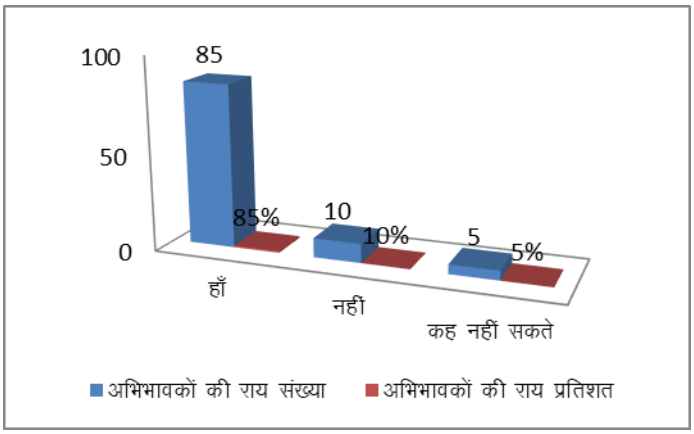

प्र05 वर्तमान में अध्यापकों की संख्या पर्याप्त है।

विकल्प	दुगड्डा	
	अभिभावकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	90	90%
नहीं	10	10%
कह नहीं सकते	0	0%

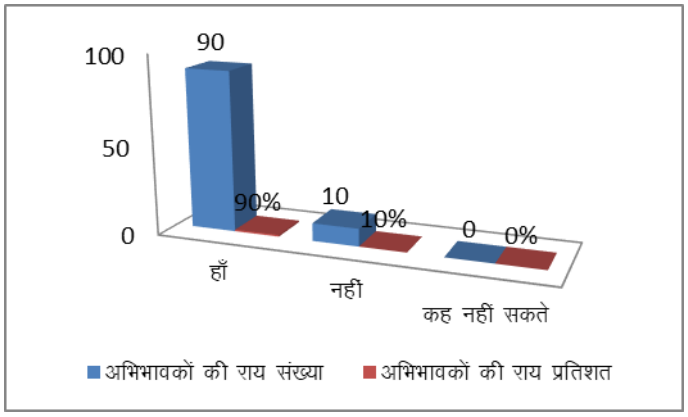

प्र06–विद्यालय में अधिकारियों का निरीक्षण होता है।

विकल्प	दुगड्डा	
	अभिभावकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	40	40%
नहीं	55	55%
कह नहीं सकते	5	5%

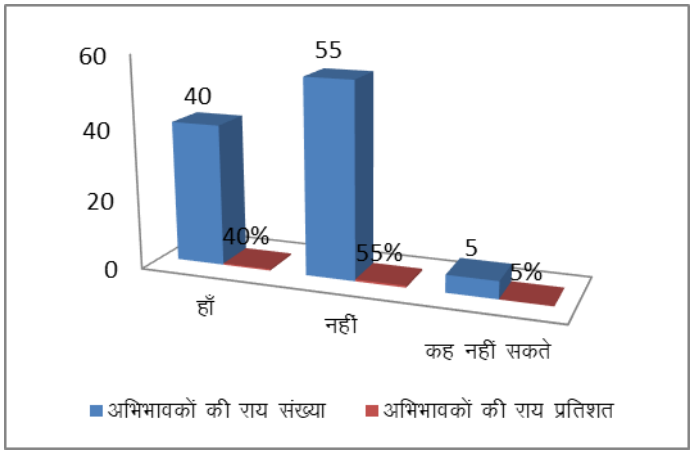

विकास खण्ड क्षेत्र–नैनीडाण्डा

अध्यापकों के सर्वेक्षण द्वारा शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालयों को प्राप्त बुनियादी सुविधाओं की वर्तमान स्थिति

प्र07. विद्यालय में अधिकारियों का निरीक्षण होता है।

विकल्प	दुगड्डा	
	अध्यापकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
नियमित	75	75%
कभी–कभी	20	20%
कभी नहीं	5	5%

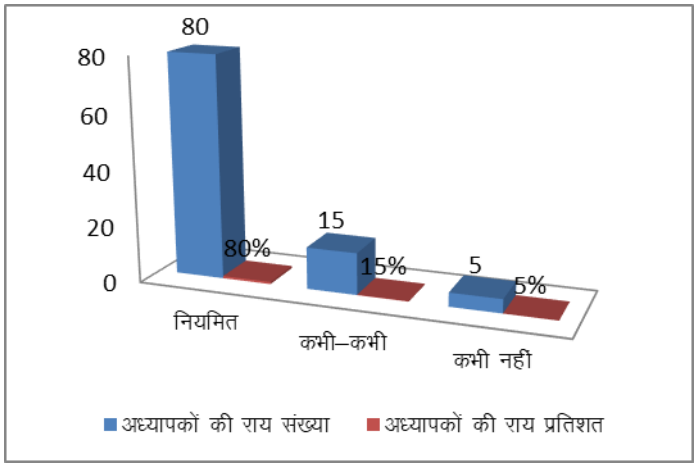

प्र08. विद्यालय में पाठय सहगामी क्रियायें होती है?

विकल्प	दुगड्डा	
	अध्यापकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
नियमित	55	55%
कभी–कभी	40	40%
कभी नहीं	5	5%

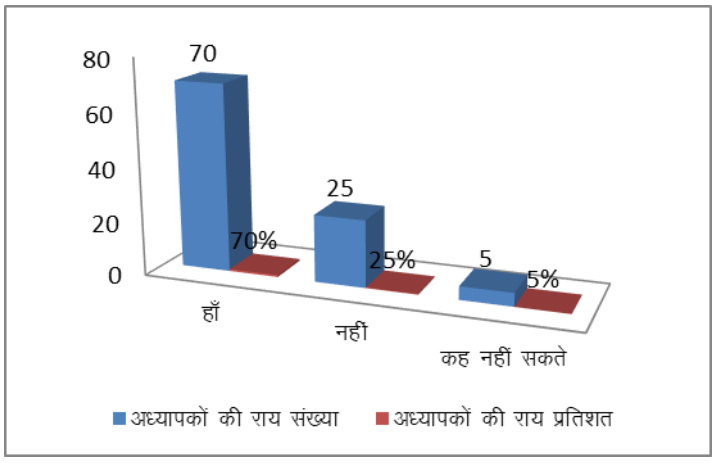

प्र9. विद्यालय में स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त होता है?

विकल्प	दुगड्डा	
	अध्यापकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	65	65%
नहीं	30	30%
कह नहीं सकते	5	5%

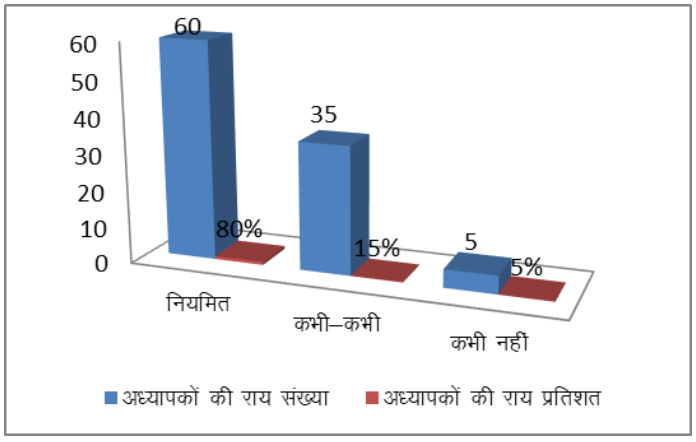

विकास खण्ड क्षेत्र–नैनीडाण्डा

अभिभावकों के सर्वेक्षण द्वारा शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालयों को प्राप्त बुनियादी सुविधाओं की वर्तमान स्थिति

प्र07. विद्यालय में पाठ्य सहगामी क्रियाये होती हैं

विकल्प	दुगड्डा	
	अभिभावकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
नियमित	65	65%
कभी–कभी	30	30%
कभी नहीं	5	5%

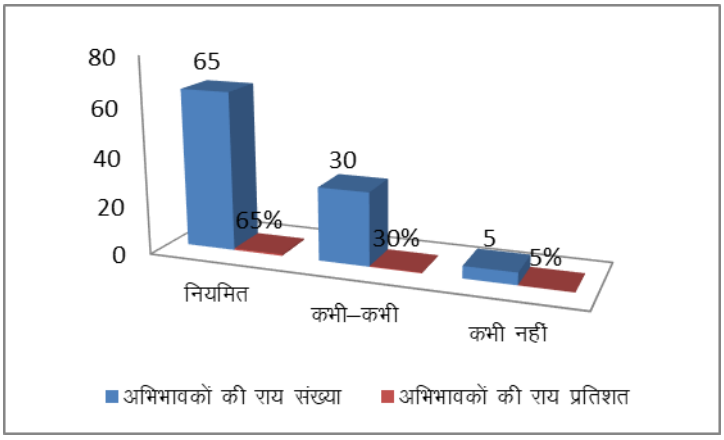

प्र8. विद्यालय में अध्यापकों का सहयोग प्राप्त होता है?

विकल्प	दुगड्डा	
	अभिभावकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	70	70%
नहीं	25	25%
कह नहीं सकते	5	5%

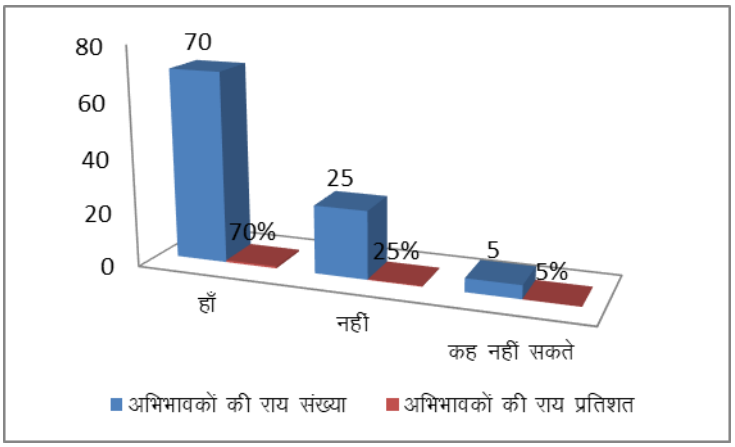

प्र9. विद्यालय में आपके बालक–बालिकायें सुरक्षित महसूस करते हैं।

विकल्प	दुगड्डा	
	अभिभावकों की राय	
	संख्या	प्रतिशत
हाँ	90	90%
नहीं	5	5%
कह नहीं सकते	5	5%

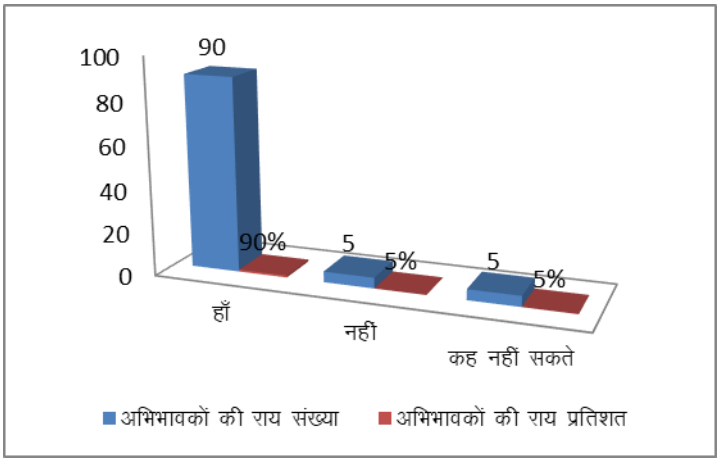

14. **निष्कर्ष**.

प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनपद पौड़ी के अन्तर्गत दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र में राज्य सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनान्तर्गत धनरायिों का वर्षवार वितरण से माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति का अन्य विकास खण्ड क्षेत्रों की स्थिति में सार्थक अन्तर पाया गया है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनपद पौड़ी के अन्तर्गत दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र में अध्यापकों एवं अभिभावकों के सर्वेक्षण में पाया गया है कि दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्रों के विद्यालयों की स्थिति अन्य विकास खण्ड क्षेत्रों से प्राप्त विद्यालयों में बुनियादी सुविधाओं की स्थिति संतोषजनक एवं अच्छी है।

15. **सुझाव**.

प्रस्तुत शोध अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर माध्यमिक स्तर की षिक्षा के विकास हेतु राज्य सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनान्तर्गत धनराशियों का वर्षवार विश्लेषणात्मक अध्ययन के संदर्भ में निम्न सुझाव प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

यह परिणाम विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों/प्रधानाचार्यों को अपने विद्यालयों की गुणवता सुधारने के लिए राज्य सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं का अधिक से अधिक लाभ उठाने का संकेत प्रदान करता है।

प्रस्तु अध्ययन का निष्कर्ष प्राप्त विद्यालयों के हित धारकों को प्रेरित करता है कि वे इन विद्यालयों के विद्यार्थियों को सरकार द्वारा संचालित की जा रही विभिन्न योजनाओं का लाभ उठाने के लिए प्रेरित करें ताकि सभी विद्यार्थियों को इनका लाभ मिल सके।

विद्यालय की बुनियादी सुविधाओं के अध्ययन में 100 अध्यापकों व 100 अभिभावकों के सर्वेक्षण में पाया गया कि दुगड्डा विकास खण्ड क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति अधिक संतोषजनक एवं उत्तम है।

16. सन्दर्भ

1. दास 1971, ए स्टडी ऑफ दि डेवलमेंट ऑफ सेकेण्ड्री एजुकेशन असम यूनिवर्सिटी।

2.भार्गव 1981, हिस्ट्र ऑफ सेकेण्ड्री एजूकेशन इन उत्तर प्रदेश आगरा यूनिवर्सिटी।

3.राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986

4.मुदालियर आयोग (माध्यमिक शिक्षा आयोग) 1952-53

5.उपाध्याय 1968, ए स्टडी ऑफ दि डेवलपमेंट ऑफ सेकेण्ड्री एजूकेशन मध्यप्रदेश, सागर यूनिवर्सिटी। एन0सी0ई0आर0टी नई दिल्ली।

6.www.shodhganga.inflibnet.ac.in

बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि पर अनुदेशनात्मक आव्यूह एवं निवास पृष्ठभूमि के प्रभाव अध्ययन

-राजीव सांगवान
शोधार्थि (शिक्षा शास्त्र)
श्री वैक्टेष्वरा विश्वविद्यालय
गजरौला,अमरोहा, यू.पी.

-डॉ. लाजमीत कौर
शोध निर्देशिका,
श्री वैक्टेश्वरा विश्वविद्यालय गजरौला,
अमरोहा, यू.पी

सार

प्रस्तुत शोध पत्र ''बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि पर अनुदेशनात्मक आव्यूह एवं निवास पृष्ठभूमि के प्रभाव का अध्ययन'' सर्वेक्षण प्रकृति का है, शोध हेतु न्यादर्श का चयन इन्दौर के दो बी.एड. शिक्षा संस्थानों का चयन यादृ च्छिक विधि से किया गया दोनों शिक्षा संस्थानों के 140 प्रशिक्षणार्थियों का चयन किया गया, एक शिक्षा संस्थान को प्रायोगिक समूह (86) एवं दूसरे शिक्षा सस्थान को नियंत्रित समूह (54) के रूप में चयन किया गया, दोनों समूहों में ग्रामीण पृष्ठभूमि के 65 प्रशिक्षणार्थी एवं शहरी पृष्ठभूमि के 75 प्रशिक्षणार्थी थे। शोधकर्ता द्वारा निर्मित पर्यावरण शिक्षा उपलब्धि परी क्षण से प्रदत्त संकलन तथा विश्लेषण हेतु द्विमार्गीय मार्गीय सहप्रसरण विश्लेषण (Two way ANCOVA) का उपयोग किया गया। शोध निष्कर्ष में पाया गया कि (1) प्रयोगात्मक समूह के प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि नियंत्रित समूह के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में सार्थक रूप से उच्च पायी गई (2) ग्रामीण पृष्ठभूमि एवं शहरी पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि के मानों में सार्थक अन्तर नहीं था। (3) अनुदेशनात्मक आव्यूह दोनों निवास पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि बढ़ाने में सहायक है एवं नियंत्रित समूह के ग्रामीण पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थी, शहरी पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों की अपेक्षा अधिक उपलब्धि अर्जित करते हैं।

मुख्य शब्दावली–बी.एड. प्रशिक्षणार्थी, पर्यावरण शिक्षा, अनुदेशनात्मक आव्यूह

प्रस्तावना :–

पर्यावरण शिक्षा समाज के विकास एवं प्रगति के लिए महत्वपूर्ण है। ऐसे समय में जब पूरा विश्व पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृ तिक आपदा, भूमण्डलीय तापन, हरित गृह प्रभाव, जलवायु परिवर्तन एवं कोरोना जैसी समस्याओं से प्रभावित है, जिससे पृथ्वी पर मनुष्य का जीवित रहना असम्भव हो गया है। ऐसी स्थिति में पर्यावरण शिक्षा की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है। पर्यावरण शिक्षा द्वारा पर्यावरण को सुरक्षित किया जा सकता है।

औचित्य :–

वर्तमान में बढ़ता औद्योगीकरण और अंधाधुंध प्राकृतिक संसाधनो के दोहन ने अनेकों पर्यावरण समस्याओं को जन्म दिया है। अतः समस्याओं के समाधान और इसके प्रति जागरूकता के लिए हमें पर्यावरण शिक्षा पर विशेषध्यान देना होगा। चूंकि व्यक्ति के आस–पास के पर्यावरण का उसकी शिक्षा पर प्रभाव भी पड़ता है, अतः प्रश्न यह उठता है कि क्या ग्रामीण एवं शहरी निवास पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि भिन्न–भिन्न है या समान है? क्या दोनों समूहों के लिए शिक्षण हेतु अध्ययन विधि समान होना चाहिए या भिन्न भिन्न होना चाहिए। प्रत्येक शिक्षक को ऐसी शिक्षण विधि

ायों, युक्तियों एवं गतिविधियों का शिक्षण में प्रयोग करना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति ज्ञान, जागरूकता एवं सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो सके। जिसके लिए अनुदेशनात्मक आव्यूह प्रभावी हो सकता है। शोधार्थी द्वारा उपलब्धि पर अनुदेशनात्मक आव्यूह की प्रभाविता से संबंधित मिश्रा (2010), शर्मा (2011), कुमार (2012), प्रसाद (2013), शुक्ला (2013), राठौर (2013), पाटीदार (2014), सिंह (2014), अलामी एवं अन्य (2015), राजकुमार (2016), शीजू (2016), श्रीवास्तव (2016), जार्ज (2017), पाटनवाल (2017), त्रिपाठी (2017), कोशी (2018), नैकू (2018), छाबडिया (2019) एवं टोंके (2019) के शोध अध्ययनों की समीक्षा की गई। उपरोक्त शोध अध्ययनों में विभिन्न विषयों पर अनुदेशनात्मक आव्यूह का विकास किया गया एवं उसकी प्रभाविता भी देखी गयी, जो कि विद्यालयीन एवं महाविद्यालयीन स्तर पर किये गए थे, लेकिन बी.एड. स्तर पर पर्यावरण शिक्षा उपलब्धि पर प्रमाविता संबंधित शोध अध्ययन बहुत कम प्राप्त हुए। अतः शोधार्थी द्वारा इस विषय का चयन किया गया जो आज के परिदृश्य में अत्यन्त औचित्यपूर्ण है।

संक्रियात्मक परिभाषा :–

पर्यावरण शिक्षा– प्रस्तुत शोध में पर्यावरण शिक्षा का आशय पर्यावरण के प्रति ज्ञान, जागरूकता एवं सकारात्मक दृ ष्टिकोण विकसित करने की प्रक्रिया से है, जिसमें पर्यावरण एवं मानव के पारस्परिक संबंधों, पर्यावरणीय समस्याओं का हल तथा पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन की शिक्षा दी जाती है।

अनुदेशनात्मक आब्यूह–प्रस्तुत शोध में अनुदेशनात्मक आव्यूह का आशय पर्यावरण शिक्षा के शिक्षण में उपयोग की गयी चयनित स्व–अधिगम सामग्री, वीडियो, अधिन्यास लेखन, सामूहिक परिचर्चा, भूमिका निर्वाह, वाद–विवाद, समिति चर्चा, विचार मंथन, नुक्कड़ नाटक, पोस्टर निर्माण, व्याख्यान सह प्रदर्शनी, प्रश्नमंच, रचनात्मक कार्य, तात्कालिक भाषण एवं केस अध्ययन शिक्षण विधियों एवं गतिविधियों के समन्वित रूप से है, जिससे शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

पर्यावरण शिक्षा उपलब्धि–प्रस्तुत शोध में प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा उपलब्धि से आशय शोधकर्ता द्वारा चयनित प्रकरणों (पर्यावरण शिक्षा एवं पर्यावरण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, जैव विविधता, पर्यावरणीय समस्याएँ, मानव पर्यावरण का निर्माणकर्ता या विनाशकर्ता, मानवीय गतिविधियों का पर्यावरण पर प्रभाव, जलवायु परिवर्तन, चिपको आंदोलन, प्राकृ तिक संसाधन, सामाजिक वानिकी, ऊर्जा के स्रोत, अपशिष्ट प्रबंधन, पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रावधान एवं भोपाल गैस त्रासदी) पर निर्मित पर्यावरण शिक्षा उपलब्धि परीक्षण में प्राप्त प्राप्तांकों से है।

उद्देश्य :–

बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि पर उपचार, निवास पृष्ठभूमि एवं उनकी अन्तक्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना जबकि पर्यावरण शिक्षा में पूर्व उपलब्धि को सहचर लिया गया है।

परिकल्पना :–

बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि पर उपचार, निवास पृष्ठभूमि एवं उनकी अन्तर्क्रिया का सार्थक प्रभाव नहीं है, जबकि पर्यावरण शिक्षा में पूर्व उपलब्धि को सहचर लिया गया है।

परिसीमन :–

1.प्रस्तुत शोध रामपुर के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों पर किया गया।

2. प्रस्तुत शोध में अनुदेशनात्मक आव्यूह का विकास बी.एड पाठ्यक्रम के वैकल्पिक विषय ''पर्यावरण शिक्षा'' पर किया गया।

उदाहरण :–

प्रस्तुत शोध के लिए न्यादर्श एम.जे.पी.रु. विश्वविद्यालय, बरेलीसे सम्बद्ध शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में से रामपुर के दो शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान–रजा कॉलिज रामपुर, तथा हिमालय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, शाहबाद के सत्र 2023–2024 के बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों का चयन यादृच्छिक तकनीक द्वारा किया गया। न्यादर्श का आकार 140 था, जिसमें प्रयोगात्मक समूह में 86 एवं नियंत्रित समूह में 54 प्रशिक्षणार्थी थे।

शोध अभिकल्प :–

प्रस्तुत शोध अध्ययन प्रयोगात्मक प्रकृति का है, जिसके लिए गैर तुल्य नियंत्रित समूह अभिकल्प (स्टैनले एवं कैम्पवेल, 1963) का उपयोग किया गया। इस अभिकल्प का सांकेतिक विवरण निम्न दिया गया है :

O X O

O O

जहाँ

O = परीक्षण

X = उपचार

---- = गैर–समतुल्यता प्रदर्शित करता है।

उपकरण :–

प्रस्तुत शोध में बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा उपलब्धि पर अनुदेशनात्मक आव्यूह की प्रभाविता जानने के लिए शोधकर्ता द्वारा निर्मित पर्यावरण शिक्षा उपलब्धि परीक्षण का प्रयोग किया गया। इस परीक्षण में कुल 60 बहुविकल्पीय प्रश्न थे जिसके लिए 90 मिनट का समय निर्धारित किया गया था।

उपचार :–

शिक्षा अध्ययनशाला, रजा कॉलिज रामपुर, तथा हिमालय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, शाहबाद के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों को प्रयोगात्मक समूह में लेकर 30 दिन तक अनुदेशनात्मक आव्यूह द्वारा तथा शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों को नियंत्रित समूह में लेकर 30 दिन तक परम्परागत विधि द्वारा उपचार दिया गया। अनुदेशनात्मक आव्यूह के अन्तर्गत स्व–अधिगम सामग्री, वीडियो, अधिन्यास लेखन, सामूहिक परिचर्चा, भूमिका निर्वाह, वाद–विवाद,समिति चर्चा विचार मंथन, नुक्कड़ नाटक, पोस्टर निर्माण, व्याख्यान सह प्रदर्शनी, प्रश्न मंच, रचनात्मक कार्य, तात्कालिक भाषण एवं केस अध्ययन गतिविधियों उपयोग किया गया।

प्रदत्त संकलन :–

प्रस्तुत शोध में प्रदत्त संकलन हेतु दो शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों, शिक्षा अध्ययनशाला, रजा कॉलिज रामपुर, तथा हिमालय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, शाहबाद को नियंत्रित समूह के अन्तर्गत लिया गया। दोनों समूहों का पर्यावरण शिक्षा उपलब्धि परीक्षण द्वारा उपचार के पहले पूर्व परीक्षण तथा उपचार के बाद पश्च परीक्षण लिया गया।

प्रदत्त विश्लेषण :–

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य ''बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि पर उपचार, निवास पृष्ठभूमि एवं उनकी अन्तक्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना जबकि पर्यावरण शिक्षा में पूर्व उपलब्धि को सहचर लिया गया हो'', था। यहाँ उपचार के दो समूह प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह थे तथा निवास पृष्ठभूमि के दो समूह ग्रामीण एवं शहरी थे। प्रस्तुत उद्देश्य के लिये प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु द्विमार्गीय सहप्रसरण विश्लेषण (Two Way ANCOVA) का प्रयोग किया गया। अतः प्रदत्तों का विश्लेषण द्विमार्गीय सहप्रसरण विश्लेषण (Two Way ANCOVA) की अवधारणा की पूर्ति के साथ करने हेतु प्रदत्तों की प्रसामान्यता का परीक्षण कोल्मोगोरव स्मिरनोव परीक्षण एवं शेपिरो विल्क परीक्षण द्वारा किया गया, जिसके प्राप्त परिणाम तालिका क्रमांक 1 में दर्शाये गए है

तालिका क्रमांक 1

उपचार वार एवं निवास पृष्ठभूमि वार प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि फलाकों के प्रसामान्यता परीक्षण का सारां''ा

निवास पृष्ठभूमि	उपचार	कोल्मोगोरोव स्मिरनोव			शेपिरो–विल्क		
		Statistic	df	Sig.	Statistic	Df	Sig.
ग्रामीण	प्रयोगात्मक	.097	40	.200	.972	40	.416
	नियंत्रित	.119	25	.200	.960	25	.417
शहरी	प्रयोगात्मक	.125	46	0.70	.961	46	.130
	नियंत्रित	.154	29	.078	.973	29	.634

तालिका क्रमांक 1 से विदित है कि प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह के ग्रामीण एवं शहरी पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में पश्च उपलब्धि के शेपिरो विल्क सांख्यिकी का मान 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है. अतः यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्र चर उपचार एवं निवास पृष्ठभूमि के समस्त स्तरों के प्रदत्तों की प्रसामान्यता की अवधारणा संतुष्ट होती है। अतः द्विमार्गीय एनकोवा की मुख्य अवधारणा कि फलांक प्रसामान्यरूप से वितरित होना चाहिए, परिपूर्ण हो रही है। फलस्वरूप आगे एनकोवा की अन्य अवधारणा प्रसरणों की समांगीयता (Homogeneity of variances) का परिणाम तालिका क्रमांक 2 में प्रस्तुत किया गया है–

तालिका क्रमांक 2

उपचार एवं निवास पृष्ठभूमि समूहों में पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि फलाकों के प्रसरणों की समांगीयता हेतु लेवेन्स परीक्षण का साराश

F	df 1	df 2	Sig.
5.109	3	136	.002

तालिका क्रमांक 2 से विदित होता है कि लेवेन्स साख्यिकी में F= 5.109,p=.002, <.05है. जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना ''उपचार एवं निवास पृष्ठभूमि समूहों के स्तरों के पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि फलाकों के प्रसरणों में कोई सार्थक अंतर नहीं है निरस्त की जाती है। चूँकि द्विमार्गी सह प्रसरण विश्लेषण की अवधारणा ''उपचार एवं निवास पृष्ठभूमि समूहों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि फलाकों के प्रसरणों की समानता की अवधारणा'' परिपूर्ण नहीं हो रही है, इसलिए द्विमार्गी सह प्रसरण विश्लेषण लगाना उचित नहीं है। अतः अप्राचलिक द्विमार्गीय सहप्रसरण विश्लेषण (Non Parametric Two Way ANCOVA: Quade Rank ANCOVA) द्व ारा प्रदत्तों का विश्लेषण किया गया। तालिका क्रमांक 3 में क्वेड रैंक एनकोवा के परिणामों को प्रस्तुत किया गया है। तालिका क्रमांक 3 पर्यावरण शिक्षा में पूर्व उपलब्धि को सहचर लेकर बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि पर उपचार निवास पृष्ठभूमि एवं उनकी अंतर्क्रिया के लिए प्रयुक्त अप्राचलिक द्विमार्गीय सहप्रसरण विश्लेषण (क्वेड रैंक एनकोवा)का सारांश

आश्रित चर– अमानकीकृत अवशिष्ट : पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि

स्त्रोत	स्वतंत्रता की कोटि	वर्गों का योग	वर्गों का माध्य योग	Fमान	सार्थकता स्तर	ईटा वर्ग
उपचार	1	2251.58	2251.58	226.96	0.001	.625
निवासी पृष्ठभूमि	1	33.49	33.49	3.38	.068	.024
उपचार निवास पृष्ठभूमि	1	90.81	90.81	9.15	.003	.063
त्रुटि	136	1349.17	85.92			
योग	139					

तालिका से विदित होता है कि उपचार के लिए समायोजित क्वेड रैंक एनकोवा F का मान 226.96 है, जिसके लिए स्वतंत्रता की कोटि (1.136) पर द्विपुच्छीय सार्थकता का मान 0.001 है जो कि सार्थकता के स्तर 0.05 से कम है अतः सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना कि ''प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के प्रशि क्षणार्थियों की उपलब्धि के अमानकीकृत अवशिष्ट के माध्यमानों में कोई सार्थक अंतर नहीं है, कोनिरस्त किया जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रायोगिक समूह के प्रशिक्षणार्थियों के पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि अमानकीकृत अवशिष्ट माध्य (3.21), नियंत्रित समूह के प्रशिक्षणार्थियों के पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि के अमानकीकृत अवशिष्ट के माध्य (–5.05) की तुलना में सार्थक रूप से अधिक है। अतः स्पष्टतः कहा जा सकता है कि अनुदेशनात्मक आव्यूह, प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि बढ़ाने के लिए सार्थक रूप से प्रभावी है। तालिका से विदित होता है कि निवास पृष्ठभूमि के लिए समायोजित क्वेड रेंक एनकोवा F(1.136) का मान 3.38 है, द्वि–पुच्छीय सार्थकता का मान 0.068 है जो कि सार्थकता के स्तर 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना कि ग्रामीण एवं शहरी पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों की उपलब्धि के अमानकीकृत अवशिष्ट के माध्य मानों में कोई सार्थक अंतर नहीं है'',

को निरस्त नहीं किया जाता है, अतः यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण एवं शहरी पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों के उपलब्धि के अमानकीकृत अवशिष्ट के माध्य मान में सार्थक अंतर नहीं है। तालिंका से यह भी स्पष्ट है कि उपचार एवं निवास पृष्ठभूमि की अंतक्रिया के लिए क्वेड रैंक एनकोवा F(1.136) का मान 9.15 जिसके लिए द्विपुच्छीय सार्थकता का तान 003 है, जो कि सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक है। चूँकि उपचार एवं निवास पृष्ठभूमि की अंतर्क्रिया का प्रशि क्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव है अतः अतक्रिया को ग्राफ 1.0 में प्रस्तुत किया गया है–

ग्राफ 1.0

उपचार एवं निवास पृष्ठभूमि कीअंतर्क्रिया का प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि पर प्रभाव

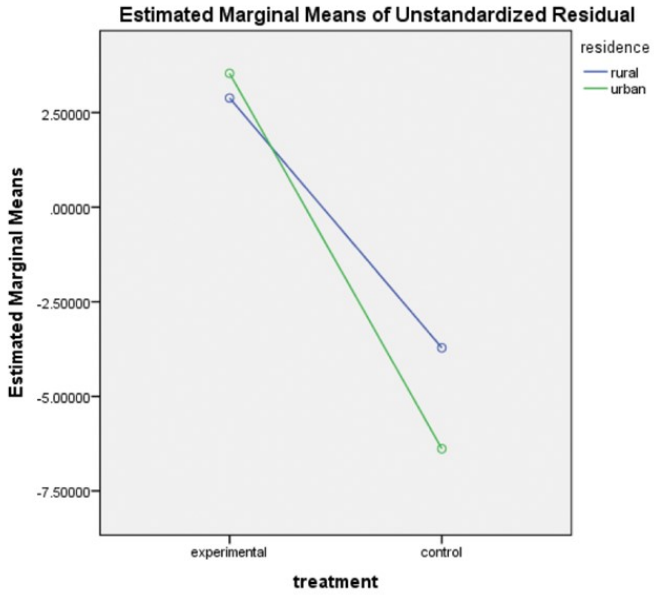

ग्राफ से विदित होता है कि प्रयोगात्मक समूह के दोनों निवास पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों के अमानकीकृत अवशिष्ट के माध्य प्रायः समान रूप से उच्च हैं। परन्तु नियंत्रित समूह में शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षणार्थियों के अमानकीकृत अवशिष्ट के माध्य ग्रामीण के सापेक्ष निम्न है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अनुदेशनात्मकआव्यूह जहाँ दोनों निवास पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों की उपलब्धि बढ़ाने में सहायक है वहीं नियंत्रित समूह में ग्रामीण पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों शहरी पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों की अपेक्षा अधिक उपलब्धि अर्जित करते हैं।

परिणाम :–

1. अनुदेशनात्मक आव्यूह, प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि बढ़ाने के लिए सार्थक रूप से प्रभावी है।
2. प्रशिक्षणार्थियों की पर्यावरण शिक्षा में उपलब्धि, निवास पृष्ठभूमि के प्रभाव से स्वतंत्र पायी गई।
3. अनुदेशनात्मक आव्यूह दोनों निवास पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों की उपलब्धि बढ़ाने में सहायक है एवं नियंत्रित समूह में ग्रामीण पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थी शहरी पृष्ठभूमि के प्रशिक्षणार्थियों की अपेक्षा अधिक उपलब्धि अर्जित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्ता, एस.पी. (2015), अनुसंधान सदर्शिका, शारदा पुस्तक भवन.

2.जॉर्ज, एम. (2017), तार्किक चिंतन कौशल पर आधारित अनुदेशनात्मक आव्यूह की प्रभाविता का माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सीखना गणित के संदर्भ में अध्ययन (अप्रकाशित पी–एच.डी. शोध, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय)

3.**कोशी, आर. (2018)**, मूल्य विकास पर आधारित अनुदेशनात्मक आव्यूह के प्रभाविता का उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की नैतिक बुद्धि एवं नेतृत्व क्षमता के संदर्भ में अध्ययन (अप्रकाशित पी–एच.डी. शोध, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय)

4.**छाबडिया, एस. (2019),** इन्दौर शहर के शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों हेतु पर्यावरणीय शिक्षा पर विकसित अनुदेशनात्मक आव्यूह की प्रभाविता का चयनित संज्ञानात्मक एवं भावात्मक पक्षों से संबंधित चरों के संदर्भ में अध्ययन (अप्रकाशित पी–एच.डी. शोध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय).

5.**टोंके. एम. (2019)**, निर्णयन चिंतन कौशल चर आधारित अनुदेशनात्मक आव्यूह की प्रभाविता का माध्यमिक स्तर केविद्यार्थियों की सामाजिक विज्ञान में उपलब्धि व प्रतिक्रिया के संदर्भ में अध्ययन (अप्रकाशित पी–एच डी. शोध,देवी अहिल्या विश्वविद्यालय)

6.**मंगल, एस.के. (2005),** शैक्षिक तकनीकी के बुनियादी सिद्धांत और प्रबंधन, लाइल बुक डिपो।

7.**मिश्रा, एस. (2010),** पर्यावरण के प्रति जागरूकता एवं पर्यावरण शिक्षा के विकास में जनसंचार साधनों की भूमिका का अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबंध, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय)

8.**प्रसाद, आर. (2013),** चंदौली एवं वाराणसी जनपद के माध्यमिक स्तर के आरक्षित एवं अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन, (अप्रकाशित शोध, उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय),

9.**राजकुमार,(2016),** तकनीकी शिक्षा संस्थानों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, अभिप्रेरणा तथा समायोजन पर प्रभाव का एक अध्ययन (अप्रकाशित पी–एच.डी. शोध, कोटा विश्वविद्यालय).

10.**त्रिपाठी, एस. (2017)**, जौनपुर जिले के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों का उपलब्धि अभिप्रेरण का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसप्लीनरी एजूकेशन एंड रिसर्च, 2(2), पृष्ठ, 19–23.

11.**श्रीवास्तव, ए. (2016),** पर्यावरण शिक्षा के लिए नवीन दृष्टिकोण के लिए केएएएसपी प्राप्ति समग्र दृष्टिकोण का विकास और प्रभावशीलता अध्ययन, उत्कृष्ट प्रकाशन गृह,

12.**शीजू, एस (2016),** गणितीय योग्यता बुद्धि पर आधारित समेकित अनुदेशनात्मक आव्यूह की प्रभाविता का माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यवहारिक विकार के संदर्भ में अध्ययन (अप्रकाशित पी–एच.डी. शोध, अलगप्पा विश्वद्यिालय).

13.**शुक्ला, सी (2013)**, समस्या समाधान एवं प्रचार चिंतन कौशल पर आधारित अनुदेशनात्मक आव्यूह एवं परम्परागत विधि की प्रभाविता का उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की सामाजिक विज्ञान में उपलब्धि एवं प्रतिक्रिया के संदर्भ में अध्ययन (अप्रकाशित पी–एच.डी. शोध देवी अहिल्या विश्वविद्यालय).

14.**सिंह, एन. (2014),** डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के लिये पर्यावरण शिक्षा पर स्व अधिगम सामग्री का विकास करसामग्रीकी प्रभाविता का उपलब्धि एवं प्रतिक्रियाओं के आधार पर अध्ययन (अप्रकाशित एम. फिल, शोध, देवी अहिल्या सामग्री विश्वविद्यालय)

15.Kumar, M.(2012). Effectiveness of ElectronicMedia Based Instructional Strategy to create Environmental Awareness among the secondary school pupils of Kerala.(Unpublished Ph.D. thesis, M. G. University) Strategies and Activities for using local communities as Environmental Education Sites, by Charles E. Roth and Linda G. Lockwood, 1979.

शोधालेख प्रकाशन के मानक

व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

UGC CARE LISTED हिन्दी की स्तरीय पत्रिका 'नागफनी' के जो सदस्य हैं उनका ही आलेख प्रकाशित होगा। जो भी व्यक्ति शोधालेख भेजना चाहते हैं कृपया वें अपने लेख में निम्न बिंदु आवश्यक रूप से रखें जैसे–

1. भूमिका/प्रस्तावना
2. विषय वस्तु/बीज शब्द
3. मुख्य अंश/उद्देश्य
4. परिणाम/निष्कर्ष
5. सन्दर्भ
6. शब्द मर्यादा अधिकतम शब्द 3000 इससे ज्यादा शब्द है तो कार्यकारी संपादक से परामर्श कीजिएगा।
7. सत्यापन एवं सहमति पत्र देने पर ही आलेख के सम्बन्ध में निर्णय होगा।

सत्यापन प्रमाण–पत्र

1. मैं .....सत्यापित करता/करती हूँ की 'नागफनी' के लिए प्रस्तुत शोधालेख शीर्षक.....मौलिक एवं अप्रकाशित है। लेखन संबंधित सारे संदर्भ सत्य हैं। किसी भी अंश के विवादित स्थिति के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार रहूँगा/रहूँगी। साथ ही प्रस्तुत शोधालेख में नागफनी के पीयर रिव्यू कमेटी को संशोधन संपादन और संवर्धन करने की सहमति जताता/जताती हूँ।

2. शोधालेख प्रकाशित–अप्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक मंडल और पीयर रिव्यू कमेटी का है। स्तरीय एवं मौलिकता आदि के परीक्षण के बाद ही शोधालेख की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा, मुझे मान्य होगा। उपरोक्त नियम और शर्तों को मैं स्वीकार करता/करती हूँ।

हस्ताक्षर–
नाम–
मोबाइल नंबर–

व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

STANDARD NORMS FOR AUTHORS

Nagfani, the U.G.C. Care listed journal publishes articles, research papers etc. written by the members of journals only. The manuscripts should contain the following:

1. Abstract with keywords
2. Objectives
3. Conclusions
4. References
5. Word limit is 3000 (For higher limits, please contact the editor)

I_____ certify/undertake to say that the manuscript entitled_____submitted for publication in the NAGFANI issue is an unpublished original work. I know that I will be fully responsible for any controversial situation arising out of the manuscript/article or part of it. I also transfer the rights to edit, review and conserve the manuscript to the peer review committee of NAGFANI.

Signature of the author:
Mobile No:

अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट देखिए http%//naagfani.com

रोमी प्रेस बैढ़न / 9425179103